बंधन और मुक्ति

ऐतिहासिक उपन्यास

मूल लेखक

'दर्शक'

अनुवादक

श्याम् 'सन्यासी'

अनेकान्त मुद्रणालय

मोटा आंकड़िया :. सौराष्ट्र

फरवरी : १६४६
प्रथम संस्करण : ११००

मूल्य : साढ़े चार रुपए

मुद्रक, प्रकाशक : जमनादास माणेकचंद रवाणी
अनेकान्त मुद्रणालय, मोटा आंकड़िया :. सौराष्ट्र

प्रकाशकीय

अन्तरप्रान्तीय और अन्तरराष्ट्रीय कथा-साहित्य की श्रेष्ठतम रचनाओं को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का प्रकाशकों का यह एक अति विनम्र प्रयास है। हिन्दी भाषा के विशाल क्षेत्र से कोसों दूर, सौराष्ट्र के एक छोटे-से कस्बे में अवस्थित होने के कारण प्रकाशक अपनी मर्यादाओं और अक्षमताओं को खूब समझते हैं। इतना होते हुए भी आज के हिन्दी पाठक का विकास, और श्रेष्ठसाहित्य की उसकी मांग, तथा विश्वसाहित्य से परिचित होने की उसकी तीव्र आकांक्षा प्रकाशकों को हिन्दी के प्रकाशन-क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए प्रेरित कर रही हैं। अपने पाठकों के प्रति असीम विश्वास ही प्रकाशकों का एकमात्र सम्बल है। इस विश्वास के भरोसे ही, अपने पाठकों के सहयोग के बल पर ही, प्रकाशक सफल होने की कामना करते हैं।

और, प्रकाशक अपने पाठकों को विश्वास दिलाते हैं कि अपनी पुस्तकों को सस्ती कीमत पर, केवल लागत मूल्य पर, पाठकों के हाथ में पहुंचाने में वह अपनी ओर से कुछ भी उठा न रखेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में—

यहां 'बन्धन और मुक्ति' के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। यों पुस्तक और पाठक के बीच भूमिका के रूप में रास्ता रोककर खड़े होना प्रकाशकों की दृष्टि में, अनधिकार हस्तक्षेप है। फिर भी पुस्तक, लेखक और अनुवादक का परिचय अपने पाठकों को करा देना प्रकाशक अपना कर्तव्य समझते हैं।

'बन्धन और मुक्ति' पिछली शताब्दि में प्रकाशित गुजराती के श्रेष्ठतम उपन्यासों में से एक है। इसमें लेखक ने १८५७ के सिपाही-

विद्रोह की पृष्ठभूमि पर भारतीयदर्शन और विचार-धारा का एक खण्डचित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। रचना-कौशल और लेखक की सफलता असफलता का श्रेष्ठ निर्णायक तो पाठक ही है। होसकता है कि प्रतिपादित विषयों को लेकर मतभेद हों। परन्तु प्रकाशकों के इस मन्तव्य से अधिकांश सहमत होंगे कि लेखक आदि से अन्त तक अपने प्रति ईमानदार रहा है।

'दर्शक' छद्म नाम है और लेखक को छद्म ही रहना पसन्द है। भारतीयदर्शन और इतिहास का जिज्ञासु विद्यार्थी यह 'दर्शक' हमारे स्वाधीनता संग्राम का एक अन्यतम सैनिक रहा है। तत्कालीन फिरंगी नौकरशाही ने उसके '१८५७' नामक नाटक को जप्त कर लिया था। बरसों से 'दर्शक' गुजरात के लब्धप्रतिष्ठ शिक्षाशास्त्री श्री नानाभाई भट्ट के सहयोगी के रूप में काम कर रहे हैं।

और अनुवाद किया है श्री श्यामू सन्यासी ने। हिन्दी के सफल कहानी लेखक और अनुवादक का हिन्दी वालों को ही परिचय देने की तो कोई आवश्यकता नहीं है।

पुस्तक में छापे की भूलें रह गई हैं। अगले प्रकाशनों में ऐसी भूलें न होने देने का हम वादा करते हैं।

— प्रकाशक

क्रम

" Amnesty is to me the most beautiful word in human language"

Victor Hugo.

रै ' न जात एक घरी

सघरी रैन बैठ रही

आये नहि प्रान हरी

मधुर मधुर बंसी धून सोही मनमें नित ही परी

हरि बिना बिरह ताप मन कैसे धीर धरी ।

बन्धन और मुक्ति

कथासूत्र

१

नरसिंगपुर अ...नदी के उस पार अवस्थित एक छोटा-सा राज्य था। उसके उत्तर में बुन्देलखण्ड के जंगल थे। दक्षिण में अ...नदी ही उसकी सीमा थी। पूर्व में इलाहाबाद-कोरा का सुरम्य प्रकृति-प्रदेश और पश्चिम में फिरंगियों का रामगढ़ तालुका आगया था।

अब तो नरसिंगपुर का केवल नाम ही शेष रह गया है। उसका वैभव और उसकी गगन-चुम्बी अट्टालिकाएं कभी की धराशायी हो चुकी हैं। जहाँ पहले बस्ती थी वहाँ करील की कुछ झाड़ियां उग आई हैं और एक भयावना, निर्जन दूह खड़ा है। जहाँ सायंकाल को सान्ध्य-आरती की शंख-ध्वनि और घण्टे-घण्टियों का मधुर कलनाद गूँजा करता था वहाँ सियारों का रोना सुन पड़ता है। और ऐसा लगता है कि इस भयावनी निर्जनता से डर कर नदी भी वहाँ से मील भर दूर हट गई है।

लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकालीन बरसों में एक दिन सबेरे यह स्थान जनता के उग्र कोलाहल से मुखरित हो रहा था। नदी-किनारे पर स्थित पशुपतिनाथ के मन्दिर के आगे घुड़सवार सैनिकों की एक टुकड़ी दो कैदियों को घेर कर खड़ी थी। कैदियों में एक गौर वर्ण का अजान-बाहु, महाप्रतापी वृद्ध था। उसके सिर के बाल चांदी की तरह सफेद थे। दर्शकों में स्वामी की इच्छानुसार भय या स्नेह उत्पन्न कर सकने में समर्थ बड़ी और पानीदार उसकी आंखें थीं। उसका कमर के ऊपर का शरीर

नग्न था। उसके वृषभ-स्कन्ध से लटकता हुआ यज्ञोपवीत हिमालय से उतरती हुई अधोमुखी गंगा की पावनधारा के समान शोभा पा रहा था। इस समय वृद्ध की दृष्टि पनिहारिनों और ग्राम-वधूटियों के मधुर स्वर से गूंज रहे सरितातट, लोललहरियों से अठखेलियां करतीं और इन्द्रधनुष की जाली बुनती प्रातःकालीन सूर्य-किरणों और नीलनभ में फरफराती पशुपतिनाथ की पताका की ओर लगी थी। इस मंगलदृश्य में काव्यानन्द की अनुभूति और अनन्त सौन्दर्य के दर्शन कर वृद्ध के नेत्र विहँस उठते थे।

वृद्ध की अंगुली पकड़े बारह-तेरह वर्ष की एक कुमारी खड़ी थी। आसमानी रंग की घघरिया पर लाल-गुलाबी रंग की चुनरी ओढ़े वृद्ध की अंगुली पकड़े वह इस तरह खड़ी थी मानों विशाल बरगद की शाखा से नरम कोंपलों वाली जटा झूल रही हो। उस कन्या के चेहरे पर अपार कुतूहल था। आस-पास संगीनधारी सैनिक खड़े थे; लेकिन वह उनकी ओर से सर्वथा उदासीन मन्दिर के सिंहद्वार पर जमा लोगों की भीड़ की ओर टक लगाये देख रही थी। दूसरा कैदी युवक था। उसने बेशकीमत जरी की पोशाक पहिन रखी थी, जो यहां-वहां से फट गई थी। उसके कमरबंद में तलवार नहीं थी, परन्तु उसका जड़ाऊ होना यह बतला रहा था कि युवक का सम्बंध निश्चय ही राजकुल से है। उसके बाएँ पांव में सोने का एक कड़ा भी था।

उसके चेहरे पर निर्भयता और हार्दिक सचाई का अनोखा नूर था। उसकी ओजस्विता और चेहरे का बांकपन यह घोषणा कर रहे थे कि दुनिया में न तो वह किसी से डरता है और न किसी से लज्जित होने का ही कोई कारण उसके लिये है। दुनिया की कलङ्क-कालिमा का तिल सा दाग भी अभी उसके हृदय-पट पर लग नहीं पाया था और इसीलिये उसका चेहरा इतना सरल और स्नेहपूर्ण था। अपना सिर ऊंचा किये वह सिपाहियों के बीच इस शान से खड़ा था कि उसके विजेताओं के सिर शर्म से नीचे झुक गये थे और उनमें से किसी की हिम्मत उससे आंख मिलाने की नहीं हो रही थी।

दोनों बन्दियों के हाथ बँधे हुये थे ।

जो नागरिक पान-फूल लेकर महादेव के दर्शनों के लिये आये थे वे इस समय सिंहद्वार के छज्जे पर खड़े होकर दोनों बन्दियों पर पुष्पवर्षा कर रहे थे और 'अर्जुनदेव की जय' के नारे लगा रहे थे। जब 'अर्जुनदेव की जय' का नारा गूँजता तो युवक अपने दोनों बँधे हुए हाथों को उठाकर नमस्कार करता और मुस्करा देता था। लेकिन वृद्ध का इस पुष्पवर्षा और जय-जयकार की ओर जरा भी ध्यान नहीं था। वह तो प्रातःकालीन प्रकृति-शोभा के पर्यवेक्षण में ही तल्लीन हो गया था।

सिपाहियों के रंग-ढंग से ऐसा लग रहा था मानों वे किसी की प्रतीक्षा में हों। इसी बीच ऊपर से किसी की आवाज सुनाई दी-महारानीजी पधार रही हैं।

यह सुन वृद्ध ने युवक से कहा-क्यों न पशुपतिनाथ के दर्शन करते चलें? और सैनिकों के नायक बूढ़े सिख सरदार से कहा-हम भीतर जाकर दर्शन करना चाहते हैं। रास्ता दो?

नायक का संकेत पाते ही सिपाही हट गये। बन्दियों ने मन्दिर के सिंह-द्वार में प्रवेश किया। कन्या उसी तरह वृद्ध बन्दी की अंगुली पकड़े रही।

अन्दर कदम धरते ही उन्होंने चाँदी के थाल को झनझाकर नीचे गिरते हुए सुना। दोनों ने ऊपर दृष्टि की तो महारानी देवकी को अपने सामने मूर्ति की तरह स्थिर खड़े पाया। गुरुवर्य वासुदेव और अपने देवर अर्जुनदेव को ऐसी स्थिति में देखने की कल्पना तो महारानी ने स्वप्न में भी नहीं की [illegible]ी।

वह [illegible] बोलें या आगे बढ़ें उससे पूर्व ही अर्जुनदेव ने भाभी के पाँवों में अपना [illegible] टेक दिया और अपने बँधे हुए हाथों को दिखाकर बोला-भाभीजी, [illegible]ा रज लेने में असमर्थ हूँ क्षमा करें।

[illegible]बिताने [illegible] आँखों से आँसू बह चले। बरसों पहले जब वह नववधू बनकर [illegible]ाथ ही आई थी और उसने राजगढ़ के विशाल प्रांगण में पाँव धरा

था तो उसका पहला परिचय दस बरस के ऊधमी पर भोले और प्रिय बालक अर्जुनदेव से ही हुआ था। मैके में जिन छोटे-छोटे भाई-बहिनों को छोड़ आई थी उनके अभाव की पूर्ति कर देवकी के मुर्झाये मन को फिर से हरा करने वाला यह नन्हां भाई ही था। आज उसी अर्जुनदेव को बन्दी अवस्था में देखकर देवकी की वह बरसों पुरानी स्मृति ताज़ा हो गई और उसके लिये अपने उमड़ते आँसुओं को रोक रखना मुश्किल हो गया।

कितनी बार उन दोनों ने सारे राजमहल को भाई-बहिन की ही तरह अपनी बाल-क्रीड़ाओं और किलकारियों से गुँजाया था! कितनी बार शतरंज और चौपड़ के खेल में एक दूसरे को मात दी थी! कितनी बार देवकी ने झूठ-मूठ के दांव खेलकर अपने भोले देवर को छकाया था और खिझाया था। अपनी ससुराल के उस विशाल पर संगी-साथी शून्य राज-महल में उसका दुःख-सुख बँटाने वाला, व्रत-उत्सव और रात्रि जागरण में उसका साथ देने वाला यदि कोई था तो अपने सगे भाई से भी अधिक यह छोटा देवर ही देवकी का अपना था।

देवकी के पति तो थे राजा! शिकार, शराब और गाने-बजाने की मजलिसों से ही उन्हें फुर्सत नहीं मिलती थी। उन रंग-रलियों में गृहिणी की याद ही उन्हें कहाँ से आती! शादी उन्होंने इसलिये नहीं की थी कि दास-दासियों का अभाव था। शादी तो उन्होंने इसलिये की थी कि राजा के एक रानी भी होना चाहिये। फिर मरते समय राजमाता ने आज्ञा भी दी थी कि महारानी का कक्ष खाली नहीं रहना चाहिये!

ससुराल में आने के बाद ही देवकी जान पाई कि [illegible] नववधू को सब कोई अँधेरे राजमहल का उजाला कहते हैं वह [illegible] आक-र्षण का केन्द्र नहीं थी। जो न्यायमन्दिर राजाओं [illegible] होना चाहिये वहाँ भी राजा का मन नहीं लगता। उनका [illegible] रक्खा था शतरंज की बाजी ने, शराब की प्याली ने और [illegible] ने।

शासन सत्ता और राजकाज दो गौरांग महाप्रभुओं के हाथ में थे। सेनापति पद पर भी एक फिरंगी ही आसीन था। और देश का राजा बेसुध होकर अपने क्रीड़ाभवन में आमोद-प्रमोद करता था। सांझ-सबेरे गरीब-गाजों को या गणिकाओं और संगीत के उस्तादों को शाल-दुशालों की भेंट देता था। रात आधी से अधिक बीत जाती, दीये की बाती पर गुल चढ़ जाता आखों की पलकें मन-मन भारी हो जातीं फिर भी महाराजा की सवारी अन्तःपुर के शयनकक्ष में नहीं पहुँच पाती थी। देवकी को उनके दर्शन दुर्लभ थे।

और उन दुखदाई दिनों में सिर्फ दो ही व्यक्ति उसका सहारा थे। एक तो अर्जुनदेव, जिसने अपनी बालसुलभ चपलताओं और निर्दोष क्रीड़ाओं से उसका दुःख हलका किया था: और दूसरे उसके गुरुवर्य वासुदेव। जब देवकी का जन्म हुआ था तो इन्हीं गुरुवर्य वासुदेव ने उसके पलने के पास खड़े होकर उसे सर्वप्रथम वेदमंत्र सुनाये थे; इन्हीं गुरुवर्य से उसने विद्याध्ययन किया था; इन्हीं गुरुदेव और अग्नि को साक्षी बनाकर उसने पति का हाथ पकड़ा था और माता-पिता से प्रार्थना कर इन्हीं गुरुदेव को वह आग्रहपूर्वक अपने साथ अपनी ससुराल ले आई थी।

अवसर मिलने पर देवकी अपने पति को इन मोह-बन्धनों से छुड़ाने का प्रयत्न करती थी, उन्हें समझाती थी। लेकिन महाराजाधिराज श्रीवर्धनदेव उसकी बातों को हँसकर उड़ा देते थे। देवकी के ज्यादा जोर देने पर कह देते-तुम्हें अभी महाप्रतापी कम्पनी सरकार के रौब-दाब का पता नहीं है इसीलिये ऐसा कहती है। कम्पनी सरकार से झगड़कर हमारा राज्य टिक नहीं सकता। सरकार बहादुर ने जो अफसर नियुक्त किये हैं वे जब राज काज चला ही रहे हैं तो, तुम्हीं बतला, मैं अब सिवा रंग-रेलियों के और करूं भी क्या? इस छोटी सी जिन्दगी के थोड़े से दिन मौज-शौक में बिताने की अपेक्षा व्यर्थ की चिन्ताओं और परेशानियों में बिताने से लाभ ही क्या?

देवकी जानती थी कि यह वाणी वीरता की नहीं कायरता की है। लेकिन उसके पति यह सब बड़ी ही सरलता पूर्वक और हँसते हुए कह डालते थे; और उस बेचारी की समझ ही में नहीं आता था कि वह पति से नाराज़ कैसे हो? इसलिये छाती पर पत्थर रखकर पति की रंग-रेलियों को देखते और सहते रहने के सिवा उसके सामने दूसरा कोई मार्ग ही नहीं रह गया था।

लेकिन जब दुःख असहनीय हो जाता, अर्जुन की हँसी-खुशी भी जब सीसे की तरह भारी हो गये उस दुःख को हलका करने में जब असमर्थ हो जाती तो वह बेचारी वासुदेव की शरण में दौड़ी जाती। उनके चरणों में लोटकर वह अनाथ की तरह रो उठती और सिसकती हुई कहती—नहीं सहा जाता बबा, अब तो यह नहीं सहा जाता।

और वह मधुर मधुर मुस्कराते उसका माथा सहलाते वत्सलता पूर्वक कहते—बाहरी पगली देवकी राजरानी होकर ऐसी भी क्या दुर्बलता?

और वह रोते हुए उत्तर देती—बबा मैंने ऐसा कौन सा पाप किया था जो राजरानी बनाई गई?

वासुदेव हँसकर पूछते—तो राजरानी का गुरु बनने के लिये मुझे तो एक-दो नहीं लाखों-करोड़ों पाप करना पड़े होंगे! है न?

और इतना कहकर देवकी के दुःख को हलका करने के लिये गुरुजी उसे कोई ऐसा पौराणिक आख्यान सुनाने लगते जिसके आगे देवकी के अपने निजी दुःख की कोई बिसात ही न रह जाती। सुनते-सुनते उसे ऐसा लगता मानो वह अनिवर्चनीय कथा रहस्य वर्तमान के दुःख का अवगुण्ठन ओढ़े उसकी प्रतीक्षा कर रहा हो।

लेकिन दुर्दैव ने एक दिन देवकी के ये दोनों सहारे भी छीन लिये।

एक दिन बिन बादल की गाज गिरी। कलकत्ता से गोरे लाट का एक फर्मान महाराजाधिराज श्रीवर्धनदेव के नाम आया। उसमें लिखा था.--

'तुम्हारी रियासत में दो अंग्रेज अफसरों का खून हुआ है। तुम्हारे शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध में तुम्हारी रियाया की हजारों शिकायतें हमारे पास आई हैं। जवाब दो कि क्यों न तुम्हें इस सारी बदहतनामी के लिये जवाबदार समझा जाय? और यदि तुम जवाबदार पाये गये तो कारण बतलाओ कि क्यों न रियासत तुम से छीन ली जाय?"

राजा ने फरमान को दो-एकबार पढ़कर कहा—इसे जॉनसन साहब के पास ले जाओ।

'जॉनसन साहब ने मुझे आप के ही पास इसका उत्तर लेने के लिये भेजा है।

'मेरे पास? मेरे पास इसका क्या जवाब है? सारा इन्तजाम तो उन्हीं के हाथ में है! जा, उन्हें बुला ला।'

इतना कहकर महाराजाधिराज ने संगीत की मजलिस बर्खास्त कर दी और हुक्के की नली मुँह में लेकर सोचने लगे।

श्रीवर्धनदेव के पिता ने अंग्रेजों के साथ जो संधि की थी उसकी शर्तों के अनुसार नरसिंगपुर राज्य की सुरक्षा के लिए अंग्रेजों ने राज्य के खर्च से एक फौजी टुकड़ी तैनात की थी। स्वर्गीय महाराजा सन्धि की शर्तों के अनुसार उस सैनिक टुकड़ी का खर्च जमा नहीं करा सके थे इसलिये श्रीवर्धनदेव ने अपने राज्यारोहण के बाद रियासत का रामगढ़ तालुका ही फौजी खर्च के लिये दे दिया था। कुछ वर्षों बाद अंग्रेजों को रुपये की जरूरत पड़ी तो उन्होंने स्वर्गीय महाराजा के वक्त के बकाया रुपये मांगे; लेकिन खजाने में उतनी रकम नहीं थी। इसलिये बदइन्तजामी का आरोप लगाकर अच्छी तरह इन्तजाम करने के लिये मैत्री की शर्तों के अनुसार तीन गोरे अफसर रियासत की खास-खास जगहों पर नियुक्त किये गए। वह अच्छा इन्तजाम रियाया को इतना पसन्द आया कि तीन में से दो गोरे अफसर मार डाले गये। अफसरों के मारे जाने पर कलकत्ता के बड़े लाट ने पूछा कि इस बदइन्तजामी के लिये सारी रियासत ही क्यों न जब्त की जाय?

समस्या का हल सोचते-सोचते महाराजा मन ही मन बड़बड़ाये-इन तीनों अफसरों को ही क्यों न हटा दिया जाय ? जो कुछ हुआ और हो रहा है उसके लिए मेरी तो कोई जवाबदारी ही नहीं है। सारी जवाबदारी तो अंग्रेजों द्वारा नियुक्त किये गये उन तीन अफसरों की है। सारा राज्य उन्हीं की मुट्ठी में है। हुकूमत भी वे ही करते हैं! फिर मुझे क्यों परेशान किया जा रहा है? मुझसे सवाल पूछने की जरूरत? निकाल बाहर करो उन तीनों अंग्रेज अफसरों को!'

यह विचार आते ही महाराजा खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्हें बड़ा अचरज हुआ कि इतनी सादी-सी बात भी लाट साहब की समझ में न आई! सारा दोष तो है इन अफसरों का!

वह अपने इन्हीं विचारों में तल्लीन थे। इसलिए कब जॉनसन आया और सलाम कर खड़ा हो गया इसका उन्हें पता तक न चला।

'हुजूर ने क्यों याद फरमाया है?'

'लाट साहब को लिख दो कि रियासत में जो कुछ हुआ उसके लिए न तो मैं जिम्मेवार हूँ और न मेरी रियाया ही। उसकी सारी जिम्मेवारी उन तीन अफसरों पर है जिन्हें कम्पनी सरकार ने रियासत का इन्तजाम करने के लिये नियुक्त किया है। लिहाजा उन्हीं को यहाँ से हटाना चाहिये।'

'हुजूर ने क्या फरमाया?'

श्रीवर्धनदेव ने अपनी बात फिर से दुहरा दी।

'ऐसा लिखने से तो गवर्नर जनरल की तौहीन होगी।'

'अच्छा तो जिस तरह तौहीन न हो वैसे लिखो।'

'लेकिन हुजूर वाला, गलती तो हमारी ही है।'

'हमारी? क्या मतलब है?'

'अपनी। अपनी रियासत की। सन्धि की शर्तों में हमने अंग्रेजों की जानो माल की हिफाजत करने का वादा किया है। रियासत में दो अंग्रेजों का खून होने से वे शर्तें भंग हुई हैं।

'तो इसके लिए जवाबदार कौन हुआ ? मैं या तुम ? तुमने इन्तजाम अच्छी तरह नहीं किया उसकी सजा मैं क्यों भुगतूं !'

'आपका फरमाना दुरुस्त है। लेकिन आखिर हम भी तो हुजूर के ही नौकर हैं। हुजूर को हमारे काम की देखभाल करते रहना चाहिये। क्योंकि राज्य में भला-बुरा जो भी कुछ होता है उसकी आखरी जवाबदारी राजा होने के नाते हुजूर पर ही आती है।'

'इन्सान की तरह एक बात कहो। दोरुखी बातें मुझे पसन्द नहीं। मैं रियासत का इन्तजाम करने में नाकाबिल हूँ इसीलिए सारा इन्तजाम तुम्हें सौंपना पड़ा। अब तुमने जो गुनाह किया है उसका नतीजा भी मैं भोगूँ! मेरी रियासत छीनने के लिए ही तुम लोगों ने यह षडयन्त्र रचा है क्यों ?'

'हुजूर, मैं तो सिपाही आदमी हूँ। कूटनीति के दाव-पेंच मेरी समझ में नहीं आते। हम तो हुकुम बजाना जानते हैं। गवर्नरजनरल का हुक्म है कि यदि हुजूर ने चौबीस घण्टे के अन्दर इसका जवाब नहीं दिया तो मैं फौज की मदद से रियासत अपने अधिकार में कर लूँ।'

'रियासत तुम अपने कब्जे में लोगे ? यह तुम मुझे कह रहे हो, जानसन ? मेरे अपने नौकर ?'

'हुजूर भूलते हैं। मैं आपका नौकर नहीं हूँ; राजकाज चलाने में आपका सलाहकार हूँ।'

इस बातचीत का कोई विशेष परिणाम नहीं निकला। और दूसरे दिन गोरी फौज का पहरा राजमहल पर बैठा दिया गया। प्रजाजनों ने डुग्गी पीटने वाले से सुना कि रियासत की हद में दो अंग्रेजों का खून हो जाने से कम्पनी सरकार ने सारी रियासत जब्त करली है। रियासत भर में सिर्फ दो ही व्यक्ति ऐसे निकले, जिन्होंने इस परिस्थिति के आगे सिर झुकाना अस्वीकार किया। एक थे वासुदेव और दूसरा था अर्जुनदेव। सोलह वर्ष के अर्जुनदेव ने तलवार खींचकर अपने बड़े भाई से निवेदन किया—महाराज,

आज्ञा कीजिए। फिर देखना है यह फिरंगी जानसन अपनी जान कैसे बचाता है?

वासुदेव ने भी कहा—महाराजा, आप अभीतक धोखे में रहे। विदेशियों का विश्वास किया। लेकिन परिणाम देखिये। जो मैत्री यावत् चन्द्रदिवाकरौ स्थायी रहने को थी वह कच्चे धागे की तरह टूट गई।

लेकिन श्री वर्धनदेव ने लड़ने से इन्कार कर दिया। उसने कहा—विद्रोही बनकर महाप्रतापी कम्पनी सरकार का अपराधी नहीं बनना चाहता। मैंने गवर्नरजनरल को लिखा है। पत्र पढ़कर वह समझ जाएँगे। खूनखराबी करके मैं अपनी बाजी नहीं बिगाड़ूंगा।

और राजमहल की रक्षक सेना को आदेश दिया गया कि वे गोरी फौज का प्रतिरोध न करें। कहीं भिन्डत न हो जाय इस डर से उनके हथियार छीन लिये गये। लाठियाँ तक न रहने दी गईं। कम्पनी सरकार की निगाह में बागी जो नहीं बनना था! लेकिन श्रीवर्धनदेव की ये सब सावधानियाँ और गवर्नरजनरल के प्रति उनका असीम विश्वास कुछ भी काम न आये। रियासत उनके साथ से निकल ही गई। हाँ, बिना प्रतिरोध के आत्मसमर्पण करने का एक लाभ अवश्य हुआ। राजमहल पर श्रीवर्धन-देव का अधिकार बना रहा और उन्हें पेन्शन मिल गई। बाकी सात जिलों की रियासत पर कम्पनी सरकार का अधिकार होगया।

* * *

लेकिन वासुदेव और अर्जुन उसी दिन से जो लापता हुए सो आज दिखाई पड़े। और सो भी बन्दी वेश में! नंगे सिर और हथकड़ियों में जकड़े हुए। युद्धक्षेत्र में बृहस्पति और इन्द्र की तरह शोभा पारहे वासुदेव और अर्जुन को देवकी देखती ही रह गई। फिर बड़ी कठिनाई से रुंधे हुए कण्ठ से अर्जुन को आशीर्वाद दिया—कार्तिकेय की तरह विजयी हो, भैया।

इतना कहकर अपने बारह वर्ष के कुमार राजशेखर को, जिसे अंगुली पकड़ाये थी, वासुदेव के चरणों में झुकाती हुई बोली—दौहित्र को आशीर्वाद

दो बाबा। यह कहते समय उसकी आँखों में आँसू और ओठों पर हँसी थिरक रही थी।

राजशेखर की पीठ थपथपाते और अर्जुनदेव की ओर देखते हुए वासुदेव ने कहा—हमारा नाम उजागर करेगा।

'यहीं पशुपतिनाथ के सन्मुख हमने प्रण किया था।' मन्दिर की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए अर्जुन ने कहा।

'और यहीं पशुपति के सामने हमारे प्रण की पूर्णाहुति होगी।'

दोनों ने साष्टांग दण्डवत कर शिवलिंग को प्रणाम किया। फिर गुम्बद में खुदी हुई ताण्डवनृत्य की विविध भंगिमाओं वाली मूर्तियों को देखने लगे। देवकी मन्दिर के कोने में रखी एक चौकी के पास खड़ी हो गई। राजशेखर वासुदेव के साथवाली कुमारी का हाथ पकड़े उससे बातें करने लगा। तीन साल पहले वह भी उसे अकेला छोड़ वासुदेव के साथ चली गई थी। गारद के सिपाही बूट पहिने हुए होने के कारण पड़साल के नीचे ही खड़े थे।

थोड़ी देर मौन रहने के बाद वासुदेव ने कहा—देवकी, तुम्हें एक थाती सौंपना है।

'आज्ञा कीजिये।'

उन्होंने बालिका का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—अपनी सुभगा तुम्हें सौंपता हूं। यह मुझ गरीब ब्राह्मण का रत्न है। मन में तो था कि इसे गार्गी—वाचक्नवी की भाँति ब्रह्मवादिनी बनाऊंगा। लेकिन अपने मन किछु और है कर्ता के किछु और!

थोड़ा गला साफकर वह आगे बोले—ऐसा लगता है कि देवाधिदेव महादेव के यहाँ मेरा लेन-देन चुकता होने का समय अब आगया है। दूसरे, यह भी दीखता है कि सुभगा का जन्म वेदपाठ और शास्त्र के अध्ययन के लिए नहीं हुआ है। उसका कंठ वेद के स्वरों का उच्चारण ही नहीं कर

पाता । उससे तो रह-रहकर युद्ध-घोष की भीषण गर्जना उठती है। इन तीन सालों में उस बेचारी ने मुझसे सिवा इसके और सीखा ही क्या है? विधि का विधान देखो कि तपोवन में मृग शावकों को दूर्वादल खिलाते हुए यमदेवता की बाट जोहनेवाले मुझ ब्राह्मण को बुढ़ापे में तलवार बाँधकर अश्वारोही बनना पड़ा । जैसी प्रभु की इच्छा !

यह सुन अर्जुन ने कहा—भाभी, गुरुदेव ने तलवार सिर्फ बाँधी ही है। कभी भूलकर भी किसी पर वार नहीं किया । बेतवा के किनारे जनरल डेनियल के साथ घमासान लड़ाई हुई । हर क़दम पर मौत मुँह बाये फिर रही थी लेकिन एकबार भी गुरुजी की तलवार म्यान के बाहर नहीं निकली ।

'फिर भी गुरुदेव घायल नहीं हुए ?'

'ऐसा तो नहीं है। दो-एकबार घायल भी हुए । लेकिन तब भी तलवार से प्रतिकार करने के बदले इनकी वाणी वेदोच्चार ही करती रही।'

वासुदेव ने चहलक़दमी करते हुए पूछा-महाराजाधिराज की तबियत कैसी है ?

'कोई खास फायदा नहीं हुआ है । वह जल्दी स्वस्थ हों इसलिए पशुपतिनाथ का अभिषेक करने आई हूँ । पर आपके पकड़े जाने की खबर सुनकर तो उनकी तबियत और भी बिगड़ गई है ।'

सिपाही ने आकर कहा—नीचे साहब आगये हैं ।

अर्जुन ने सीढ़ियाँ उतरते हुए कहा—भैया को मेरा प्रणाम कहना और यह भी कह देना कि अर्जुन ने वीरगति पाई है।

'इसे तेरे हवाले कर चला । बेटी सुभगा, आज से यही तेरी माँ, बड़ी बहिन या जो तू उचित समझे, है ।' वासुदेवने कहा ।

'और पिताजी आप ?'

'मैं फिर कभी, कहीं मिलूँगा। तुझे तो मैंने सिखाया ही है कि मृत्यु... इतना कहकर उन्होंने सुभगा की पीठपर थपकी दी। बड़े प्रेम से उसके

माथे पर हाथ फेरा और सीढ़ियाँ उतर गये। बालिका अपने पिता के पीछे एक क़दम आगे बढ़ी और रुक गई। फिर देवकी की ओर मुड़कर उसने पूछा—पिताजी को जेलखाने ले जा रहे हैं?

'हाँ।' देवकी ने आँसू पोंछते हुए उत्तर दिया।

'मुझे वहाँ नहीं ले जाएंगे? पिताजी के कपड़े कौन धो देगा?'

'शाम को हम दोनों वहाँ चलेंगी।' देवकी ने कहा।

'तू भी साथ आयेगा न?' सुभगा ने राजशेखर की ओर देखकर पूछा।

'हाँ-हाँ! जरूर चलूँगा। मैंने जेल देखी है।' राजशेखर ने उत्साह-पूर्वक जवाब दिया।

जब तीनों नीचे उतर कर आये सिपाही दोनों कैदियों को लेकर चले गये थे।

लोक-बाग आपस में बातें कर रहे थे—

'ब्राह्मण के बेटे को फाँसी दी जायेगी!'

'अरे, अरे, धरती रसातल में चली जायेगी!'

'बस्ती ऊजड़ हो जायेगी।'

'अनाज का एक भी दाना नहीं उगेगा।'

'धरती बाँझ हो जायेगी। ब्रह्महत्या कोई मामूली बात है! बाप रे!'

२

कौन थे यह वासुदेव ?

नरसिंगपुर की जनता तो उन्हें पिछले तीन साल से ही जानने लगी थी। कम्पनी सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर जनरल डेनियल तथा जानसन जैसे अंग्रेज सेनापतियों को सात-सात बार पराजित करने वाले सूरमा के रूप में उनकी ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। सभी जानते थे कि अठारहों हथियारों से सुसज्जित रहने पर भी उन्होंने कभी उनका उपयोग नहीं किया। घायलों की सार-संभाल करना और मरनेवाले वीरों के सिरहाने बैठकर उन्हें गीता या तुलसीकृत रामायण के पाठ सुनाना ही उनका खास काम था। जो उनकी गुफा में हो आये थे उनका कहना था कि वहां रणनीति की चर्चा के बदले दिन-रात कथा-वार्ता और उपनिषदों की चर्चा चलती रहती थी। इतना होते हुए भी वह रुद्र की तरह भयङ्कर और झंझावात की तरह प्रलयङ्कर समझे जाते थे। कम्पनी सरकार के सैनिक उनका नाम भय और सम्मान के साथ लेते थे। युद्ध बंदियों की उन्होंने कभी हत्या नहीं की थी। वह उनके साथ बड़ा अच्छा व्यवहार करते और उनके घावों की चिकित्सा कर उन्हें मुक्त कर देते थे। इस बात का अनुभव तो स्वयं जनरल डेनियल को भी था।

नरसिंगपुर में उनकी शूरता, उदारता और उनके अनोखे व्यवहार की अनेकों कथाएं प्रचलित थीं; पर उनकी एक प्रतिज्ञा को तो रियासत का बच्चा-बच्चा तक जानता था। और वह प्रतिज्ञा थी फिरंगियों की हुकूमत को हिन्दुस्तान की धरती पर से नेस्तनाबूद कर देना।

लेकिन वासुदेव के सम्बंध में इतनी ही जानकारी काफी नहीं होगी। सामान्य जनता में एक विद्रोही जननेता के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने के पहले से राज्य के हाकिम-अमले उन्हें महारानी देवकी और अर्जुनदेव के शिक्षक और गुरु के रूप में जानते थे। लेकिन उससे पहले का इतिहास कोई नहीं जानता।

कुछ व्यक्ति हैं जो कार्तिकेय की भाँति चिर युवा होते हैं। दूसरे कुछ व्यक्ति हैं, जो भीष्म पितामह की भाँति सदा बुजुर्ग ही दीखते हैं। साल पर साल बीतते जाते हैं, परन्तु ऐसे व्यक्तियों के दिखावे में किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं हो पाता।

वासुदेव भी ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। कभी किसी ने उनमें कोई परिवर्तन होते नहीं देखा। पास-पड़ोस के बड़े-बूढ़ों का भी यही कहना था कि उन्होंने वासुदेव को सदा से ऐसा ही वृद्ध पाया है। वही सफेद लम्बे बाल, कपाल में द्वितीया के चाँद की तरह भस्म त्रिपुण्ड; सवेरे की ताजगी-सा पीन-पुष्ट शरीर; अनोखे गौरव से देदीप्यमान मुखमण्डल और सिंह जैसी मस्त तथा रोबिली चाल।

वासुदेव को देखने वाले मन ही मन प्रश्न करते; क्या किसी दिन ये सफेद बाल काले भी थे या नहीं? इनमें तैल-फुलेल भी लगता था या नहीं? कोई सौभाग्यवती अपनी अंगुलियों से इन केशों को सहलाती भी थी या नहीं? काठ खण्ड-सी इस चौड़ी छाती के अन्दर धड़कते हुए उस रहस्यमय अन्तःप्रदेश की कोई स्वामिनी भी थी या नहीं? अरे, कभी किसी प्रमदा ने अपनी नशीली आँखों का जादू इन आँखों पर भी किया था या नहीं? परन्तु उसे कोई उत्तर नहीं मिल पाता था।

लोग आश्चर्य से तर्क-वितर्क करते; क्या कभी वासुदेव बच्चा भी रहा था, या सदा से वृद्ध ही है? अरे, कभी इसने घुटनों के बल रेंग-रेंग कर अपनी तोतली वाणी से और शैशव की किलकारियों से किसी का घर गुँजाया भी था या नहीं? कभी किसी भाग्यशालिनी माँ को दूध-माखन के

लिए, या जल्दी खाना देने के लिए रोकर, ज़िद करके, टाँग पकड़कर परेशान भी किया था या नहीं ? परन्तु इन प्रश्नों का भी उन्हें कोई उत्तर नहीं मिल पाता था। ऐसा लगता था मानों इस सदा-वृद्ध का भूतकाल है ही नहीं। मानों भूतकाल की ओर ले जानेवाले दरवाज़े पर उसने एक बड़ा-सा अलीगढ़ी ताला लगाकर पटिया टाँग दिया है—आगे जाने की इजाजत नहीं है।

लेकिन वास्तव में ऐसा तो नहीं था। वासुदेव के भी मां-बाप भाई-बहिन रहे ही होंगे। हृदय के बन्द कपाटों को कोई लाजवन्ती कभी खटखटा ही गई होगी। परन्तु उसे कोई नहीं जानता। जनता उन्हें जानती है केवल आज़ादी के दीवाने के रूप में—विप्लव के अधिनायक के रूप में।

सुदूर उत्तर में तराई के जंगलों और हिमालय की चोटियों के बीच सुरक्षित नेपाल राज के राजनीति कुशल महामंत्री राणा जंगबहादुर उनके पास सलाह-मश्विरे के लिए आते हैं। सुदूर दक्षिण पथ में असंगत मराठी-संस्कृति के प्रतिनिधि-सा रंगा बापूजी भी आता है। और आते हैं सिखों की महारानी जिन्दल, रणकुशल तांत्या टोपे, अग्नि स्फुलिंग-सी प्रातः-स्मरणीया महारानी लक्ष्मीबाई और उन्नीसवीं शताब्दी में फिरंगियों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा करने वाले भारतीय स्वतन्त्रता के सभी सेनानी। दूर-दूर से वे वासुदेव के पास आते हैं सलाह माँगने और आदेश लेने। और उनसे अग्नि का एक कण, प्रकाश की एक किरण लेकर भारत की महान जनता में विकीर्ण करने चले जाते हैं।

वासुदेव ने स्वतंत्रतादेवी के इष्ट को प्राप्त करने के लिए भारत के कोने कोने की खाक छानी थी। वह भारतीय संस्कृति के केन्द्रस्थान मठों में गये। पाठशालाओं और गुरुकुलों में भटके। महलों और झोंपड़ियों के चक्कर लगाये। घने जंगलों, दुर्गम पहाड़ों और निर्जन मरुस्थलों को पार किया लेकिन मन की मुराद पूरी नहीं हुई। गुरु के दर्शन नहीं हुए। तब उन्होंने देश छोड़ परदेस का रास्ता लिया। और बड़े परिश्रम के बाद यूरोप के एक

विशाल नगर के अन्धेरे तहखाने में उन्हें चिर अपेक्षित गुरु मिला और उस गुरु ने उन्हें स्वतन्त्रता का मन्त्र दिया।

इस समय वासुदेव जेल की कोठरी में बैठे उस इतालवी देशभक्त का चेहरा याद करने में लगे थे। सिगरेट के धुएँ के बादलों में लाल दाढ़ी वाला दुःख और चिन्ताओं से दुबला हो रहा वह चेहरा उनके सामने आया। वह चेहरा आत्मविश्वास और नूतन ज्ञान की प्रतीति से देदीप्यमान था। दार्शनिक के चिन्तन, शहीद के कृत निश्चय, शिशु के भोलेपन और अवधूत की मस्ती का अनोखा मिश्रण उस चेहरे पर दिखाई दे रहा था। क्षणभर के लिए चेहरा धुएँ के बादल में छिप गया। पैगम्बर की तरह सामर्थ्यवान उसकी वाणी थी और इतालवी उच्चारण वाली अंग्रेज़ी बड़ी प्यारी लग रही थी।

'सच में तुम हिन्दुस्तानी हो? मुझे तो विश्वास नहीं होता। कहीं धोखा तो नहीं दे रहे हो? मैं तो समझता था कि हिन्दुस्तानी चूहों की तरह होंगे या ज्यादा से ज्यादा बालिश्त-भर ऊँचे होंगे। लेकिन देख रहा हूँ कि तुम पूरे पंचहत्थे जवान हो। नहीं, तुम हिन्दुस्तानी नहीं हो सकते।'

अब उस स्वर में व्यंग और चुटकी का पुट आगया था—यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ऐसे एक दो नहीं लाखों-करोड़ों पंचहत्थे हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज़ों ने कैसे गुलाम बनाया और आज भी बना रखा है? ऐसों को गुलाम रखना असंभव है।

मुँह से धुएँ का बादल छोड़ते हुए उसकी मैत्रीपूर्ण और सलज्ज आँखें वेदना से विह्वल होगईं। वह आगे बोला—गुलामी से बढ़कर मनुष्य की आत्मा के लिए और कोई अपमान नहीं है।' उस भयङ्कर अपमान को सहकर तुम मुझे अपनी आध्यात्मिक संस्कृति का परिचय देने आये हो! मुझे ऐसी आध्यात्मिकता नहीं चाहिये। जाओ! अपने देश को लौट जाओ! सबसे पहले दासता के इस कलुष को धो डालो। आँखें खोलकर देखो। परमात्मा ने हरेक देश के निवासी को एक चेहरा (व्यक्तित्व) दिया है। जो उस चेहरे

को विकृत करता है वह परमात्मा के समक्ष अपराधी है। इतालवी चेहरे को आस्ट्रियन चेहरा बनाने का प्रयत्न प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। ऐसा करने वाला अपराधी है। लेकिन जो बिना प्रतिरोध के इस प्रयत्न को सह लेता है, अपना व्यक्तित्व छिन जाने देता है वह उससे भी बड़ा अपराधी है। उसके अपराध का तो कोई हिसाब ही नहीं रह जाता। कायरता हत्या से भी बड़ा पाप है. शरण जाने वाला विजेता से भी अधिक इस धरती के लिए भारस्वरूप होता है। जाओ, सबसे पहले इस पाप का प्रायश्चित करो। घुटने टेककर जीने की अपेक्षा स्वाभिमान से सिर ऊँचा रखकर जीने की आध्यात्मिकता पहले सीखकर तब आओ।

इटली के राष्ट्रनायक मेज़िनी ने नेपाल के राजमंत्री को जो नया उपदेश दिया था उसी को वह अलख जगाकर सारे देश को सुना रहा था।

'आखिर, इसका परिणाम क्या हुआ?' वासुदेव ने अपने मन के साथ तर्क किया। और तभी पड़ोस की कोठरी में हो रही बातचीत की ओर उनका ध्यान गया।

'आप मुझे रेज़िडेन्ट के पास ले जाना चाहते हैं? आपका खयाल है कि मैं माफी मांग लूँगा? घिघिया कर जीवन-दान मागूँगा? यदि आप ऐसा सोचते हैं तो भारी भूल कर रहे हैं। भीख से अधिक दयनीय और निन्दास्पद इस दुनिया में और कुछ नहीं है और विश्वासघात या वचनभंग से अधिक घृणास्पद पाप भी दूसरा नहीं है।' वह अर्जुन की स्वाभिमान से भरी हुई वाणी थी।

'लेकिन अर्जुन, मैं माफ़ी माँगने के लिए कहाँ कह रहा हूँ? तू सिर्फ अपनी ग़लती मंजूर करले, बस!'

'कौनसी ग़लती भैया? विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह करने की ग़लती? यदि आप बीमार न होते तो मैं यही कहता कि आप पागल हो गये हैं। घर का मालिक घर में सेंध लगाकर घुस आनेवाले को निकाल बाहर करे तो क्या उसे ग़लती कहेंगे?'

'हाँ, ग़लती ही तो है। महाप्रतापी कम्पनी सरकार का सामना करना ग़लती नहीं तो और क्या है? सिंह हिरन को खा जाता है। बाज चिड़ियों को चपेट लेता है। छिपकली कीड़े-मकोड़ों को चट कर जाती है। यही क़ुदरत का नियम है। सनातन से चली आ रही व्यवस्था है। इस शाश्वत नियम का विरोध करना ग़लती नहीं तो और क्या है?'

'भाई साहब, ज़रा एक माँ से कहिये तो सही कि वह अपनी गोद का बालक किसी हत्यारे के सुपुर्द करदे। देखना, वह क्या जवाब देती है? ग़रीब गाय भी अपने बछड़े की हिफ़ाजत के लिए सींग सामने करती है। मुर्गी तक अपने बच्चों को अपने डैनों के नीचे छिपाकर चोंच और पँजों से दुश्मन का सामना करती है। फिर हम तो मनुष्य हैं और यहाँ सवाल हमारी आज़ादी का है। आप ही बतलाइए कि मनुष्य होते हुए हम अपनी इस शस्य-श्यामला धरती पर, विपुल जलराशि का भाण्डार गंगा-जमुना-सी नदियों पर, हिमालय-से पहाड़ों पर, फलों से लद रहे वन-वनान्तरों पर, रत्नगर्भा खदानों पर, प्रेम और वात्सल्य से गूँज रहे अपने घर-द्वारों पर, बिना किसी प्रतिरोध के दुश्मन को कैसे अधिकार कर लेने दें? कहिये भाई साहब, जिस भारतीय संस्कृति का ध्येय बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय है, जो धर्म हमारे लिए परम-सुख का कारण है उसका विनाश बिना हाथ-पांव हिलाये हम कैसे हो जाने दें? इनकी रक्षा के लिए दुश्मन के वार को छाती पर झेलना यदि ग़लती है तो मैंने अवश्य ग़लती की है। तब अवश्य मैं अपराधी हूँ। और मुझे अपने उस अपराध पर नाज है। जाकर कह दीजिए अपने उस रेज़ीडेन्ट से कि अर्जुन ने आज़ाद होने का अपराध किया है और शरीर में प्राण रहने तक वह यही अपराध करता रहेगा। इतना ही नहीं उसकी अन्तिम अभिलाषा भी यही है कि इस जन्म के बाद भी ऐसा ही अपराध करने के लिए वह बार-बार जन्म ले और मरे। मुझे मौत का ज़रा भी डर नहीं है। फाँसी तो ठीक, आपका वह रेसीडेन्ट मुझे तोप के मुँह से बांधकर ही क्यों न उड़ादे मेरे चेहरे पर एक शिकन तक नहीं पड़ने की

ज़रा वह भी तो देखलें कि हिन्दुस्तानी युवक अपने देश की स्वाधीनता के लिए किस शान से मरना जानते हैं।

ये शब्द सुनते-सुनते वासुदेव रोमांचित हो उठे। आज उनकी सारे जीवन की तपस्या, उनकी दी हुई शिक्षा सफल हो रही थी। हजारों लाखों में एक तो ऐसा निकला जो मौत के सामने खड़ा उसे निर्भीकता से ललकार रहा था।, ज्ञान के भण्डार यम देवता को जीवन्मुक्ति का रहस्य सिखला रहा था। परन्तु दूसरे ही क्षण वह उदास हो गये। यह तो कल ही इस नश्वर शरीर को छोड़कर विदा हो जायगा। इसके बाद इस विद्या का, इस परम्परा का उत्तराधिकारी कौन होगा?

तभी उन्होंने अर्जुन का स्वर फिर सुना। वह कह रहा था-और भाभी साहिबा से कह दीजियेगा कि राजशेखर को इन फिरंगियों की छाया से भी बचाएँ। ये हैजे के कीड़े हैं: कोढ़ी की तरह दूर से ही इनकी छूत लगती है।

राजशेखर! हाँ राजशेखर है तो योग्य। उन्होंने उसके चेहरे का ध्यान किया। ठीक अपने काका की प्रतिमूर्ति ही लगता था। वैसा ही गोरा, दृढ़निश्चयी और दैदीप्यमान मुखमण्डल और स्वाभिमान से उन्नत मस्तक।

उसी के साथ उन्होंने सुभगा को देखा। चंचल और ऊधमी सुभगा। एक बाल-सरिता की तरह निरन्तर गतिशीला। दुर्गम पहाड़ों को काटकर रास्ता बनाती हुई, घाटियों और बीहड़ वनों को पार करती हुई बंजरभूमि को उर्वरा बनाती हुई, मरुस्थल में फूल खिलाती हुई, सबको सफल, सजल करती हुई बहुस्रोता और नवजीवन दायिनी सरिता सी सुभगा।

उन्होंने प्रसन्न मन से कहा—नहीं, कुछ भी व्यर्थ नहीं होता!

और उन्होंने सुना—पिताजी, दतौन लाई हूँ।

राजशेखर और सुभगा उनसे मिलने आये थे।

'सुभगा बेटी, तू आई है?'

बालिका ने कोठरी की छड़ों के पास हरा दतौन रख दिया और हँसती हुई बोली—हाँ पिताजी, मैं आई हूँ। कपड़े बदल लीजिये। ये धुले हुए कपड़े लाई हूँ इन्हें पहन लीजिये।

'और माताजी ने आपके लिए दूध भेजा है।' राजशेखर ने चाँदी का लोटा देहली पर रखते हुए कहा और पूछा- काकाजी कहाँ हैं?

'पड़ौस की कोठरी में।'

राजशेखर दौड़कर उधर चला गया। अपने काका के साथ उसकी गाढ़ी मैत्री थी। अर्जुन ने सात सालतक उसे अपनी गोद में खिलाया था। घोड़ा बनकर उसे कन्धे पर बैठाया था। कभी कदास शैतानी करने पर कान भी उमेठे थे। छोटा-सा धनुष बनाकर उसे और सुभगा को तीर चलाना सिखलाया था। परिश्रमपूर्वक तलवार और बनेटी के हाथ सिखलाये थे। रात-रात जागकर कहानियाँ सुनाई थीं। राजशेखर को माँ की सोहबत से अधिक अपने काका की सोहबत पसन्द थी। लेकिन आज तीन साल होने आये उसके काका अचानक कहीं चले गये थे। उसकी संगिनी सुभगा भी उसे अकेला छोड़कर उन्हीं के साथ चली गई थी। महल में वह अकेला रह गया था। महारानी देवकी को तो अपने बीमार पति की सेवा-टहल से ही फुर्सत नहीं मिलती थी। इसलिए राजशेखर अकेला बगीचे में जा बैठता और वहाँ उड़ने वाले पक्षियों को देख-देखकर सोचा करता--काश भगवान ने उसे भी पक्षी बनाया होता। वह पंख फड़फड़ाता हुआ अपने काका के पास उड़ जाता और उनके कन्धे पर बैठा रहता। उनके संदेशे इधर-से उधर पहुँचा आता और रात में चैन से कहानियाँ सुनता।

कभी-कभी उसे राजमहल के नौकरों या ड्योढ़ी के पहरेदारों के मुँह अपने काका के अतुल पराक्रम की खबर मिल जाती थी कि कैसे उन्होंने रियासत के कौन्सिलर जानसन को उसकी सेना सहित उलटे पाँव भगाया था या जनरल डानियल को उदारतापूर्वक मुक्त कर दिया। उसी समय उसकी

शिराओं में लहू का वेग तेज हो जाता था और वह अपनी माता के पास आकर कहता था--अम्माँ ! मुझे भी काकाजी के पास भेज दो ।

आज पूरे तीन साल बाद काका-भतीजे एक दूसरे से मिल रहे थे ।

'तुम काकाजी से मिलने आये हो, क्यों ? गुरुदेव को प्रणाम कर आये या नहीं ?'

महाराजा श्रीवर्धन ने अर्जुन की कोठरी से बाहर निकलते हुए पूछा । फिर सुभगा को सामने देखकर स्नेहपूर्वक उसके माथे पर हाथ रखा और बोले-साक्षात् सरस्वती का अवतार है ।

इतना कह वह वासुदेव की कोठरी के समीप आगये और पूछा—क्या यह आपकी कन्या है ? परन्तु आप तो कभी गृहस्थ बने ही नहीं !

'मेरी ही समझ लीजिये, महाराज ! गृहस्थ तो था परन्तु बिना गृहिणी का । घाघरा नदी के तट पर मेरा आश्रम था । आश्रम की पाठशाला में दोसौ के लगभग विद्यार्थी पढ़ते थे । वहीं मेरे एक मित्र से मुझे यह पुत्री भेंट में मिली थी । आज इसे देवकी को सौंपे जा रहा हूँ । जीवन में हमेशा ममता-मोह के बन्धनों से भागता फिरा हूँ । परन्तु आज इसे छोड़ते हुए अन्दर ही अन्दर बड़ी वेदना हो रही है । लगता है जैसे कोई हृदय को रस्सी की तरह उमेठ रहा हो । भरत के मोह की बात आज समझ में आ रही है । ममता सच ही शब्द-वेधी बाण की तरह है !'

श्रीवर्धन आश्चर्यचकित होकर सुन रहे थे । वासुदेव का यह रूप उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था । बोले—जानसन साहब ने तो आपके लिए फाँसी का फन्दा तैयार कर रखा है ।

'हम भी तैयार बैठे हैं । आत्मा इस नश्वर देह को छोड़ने के लिए उतावली हो रही है ।'

नायक ने आकर कोठरी का दरवाजा खोल दिया । वासुदेव बाहर निकल आये । श्रीवर्धन ने झुककर उनकी चरण-रज ली ।

राजशेखर और सुभगा अर्जुन की कोठरी के आगे खड़े थे। वह उन्हें बेतवा के किनारे हुए युद्ध की कहानी सुना रहा था।

वार्डर ने उसकी कोठरी का दर्वाज़ा भी खोल दिया। वह भी बाहर निकल आया और सुभगा तथा राजशेखर की अंगुलियाँ पकड़े वहाँ आया जहाँ वासुदेव और श्रीवर्धन खड़े थे।

सूरज आसमान में चार बांस ऊँचा चढ़ आया था। परन्तु अभीतक वातावरण में शीतलता बनी हुई थी।

अर्जुन ने कहा--यह हमारा अन्तिम सूर्योदय है।

और वासुदेव ने दोनों बच्चों की ओर देखते हुए कहा--यही अभिलाषा है कि सूर्य को उदय होते हुए देखकर प्राण छोड़ें।

३

उस दिन अदालत में अपार भीड़ थी। व्यापारियों, विद्यार्थियों, देसी-पलटन के सैनिकों, राजपुरुषों, राजदूतों आदि से सारी अदालत खचाखच भर गई थी। एक कोने में थोड़े से अंग्रेज-स्त्री-पुरुष भी बैठे थे। उनमें नाल-दुर्ग की गोरी पलटन का कमान्डर डेनियल विशेषरूप से उल्लेखनीय है। न्यायाधीश की कुर्सी के पास महाराजा श्रीवर्धन के लिए एक मखमल की गद्दे-दार कुर्सी रखी गई थी। अदालत के चारों ओर गुरखे सिपाहियों के कड़े चौकी-पहरे का बन्दोबस्त किया गया था। कैदियों के कठघरे में दोनों बन्दी बैठे हुए थे। उनके पाँवों के पास एक लड़का और एक लड़की एक दूसरे का हाथ पकड़े धीमे स्वर में बातें कर रहे थे।

न्यायाधीश आकर अपने स्थान पर बैठ गया। बीमारी के कारण दुर्बल हो रहे महाराज श्रीवर्धन भी आ गये। कौन्सिलर जानसन और पोलक भी आकर जनरल डेनियल के समीप बैठ गये।

इसके बाद अदालत की कारवाई शुरू हुई। आरम्भ में दोनों कैदियों को उनका अपराध पढ़कर सुनाया गया। उन पर खून डकैती और सशस्त्र-विद्रोह के संगीन आरोप लगाये गये थे।

दोनों ने खड़े होकर अपने ऊपर लगाये गये आरोपों को स्वीकार किया। फिर अर्जुन ने ऊँचे स्वर में कहा—मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सरकार हमें छोड़ने वाली नहीं है। फिर भी अदालत को यह जतला देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि यदि जीवित छोड़ा भी गया तो जबतक हमारे शान्त

और अतिथि-प्रिय देश पर मग़रूरी के साथ राज्य करनेवाले सभी फिरंगियों को मौत के घाट नहीं उतार दूँगा, चैन से नहीं बैठूंगा। यह इसलिये कह रहा हूँ कि अदालत मेरा न्याय करते समय किसी तरह के भ्रम में न रहे।

फिर वासुदेव से कहा गया कि यदि वह अपने विषय में कुछ कहना चाहते हों तो कह सकते हैं। यह सुनकर उन्होंने साफ-सुथरी अंग्रेजी में घन-गम्भीर स्वर में बोलना शुरू कि।।

'मैं मौत के किनारे खड़ा हूँ। बरसों से जो बात मेरे मन में थी उसे मरने के पहले सार्वजनिकरूप से प्रगट करने का यह जो अवसर मुझे दिया गया है उसके लिए मैं अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। आप लोगों को आश्चर्य होता होगा कि एक ब्राह्मण अपने यज्ञ, हवन, वेदों का अध्ययन अध्यापन, श्रुति, स्मृति और उपनिषदों का पठन-पाठन छोड़कर शस्त्रधारी क्यों बना? ऐसी कौनसी बात थी जिसने मुझ अयाचक ब्राह्मण को अपना शान्त और निरुपद्रवी जीवन छोड़कर हिंसा और विद्रोह के पथ का पथिक बनाया? जो अंग्रेज़ अफ़सर यहाँ बैठे हुए हैं मैं उनकी जानकारी के लिए यह बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण को ईश्वराधन के सिवा काम करने की मनाही है।

'मेरा जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता अग्निहोत्री थे। हमारी बाँस की कुटिया अहर्निश वेद-ध्वनि से गूँजती रहती थी। बचपन से मैंने भी यही अभिलाषा की थी कि अपने पूर्वजों की तरह वेदपाठ करते-करते जीवन-यापन करूँ और हमेशा के लिए आँखें मूँद लूँ। लेकिन भविष्य में कुछ और ही लिखा था। मेरे एक कान में वेद के स्वर गूँज रहे थे और दूसरे कान में देशवासियों की दुःख और निराशापूर्ण चीखें गूँजने लगीं। और उन विश्वव्यापी चीखों में वेद का स्वर डूब गया।

'मैं घाघरा तट का रहनेवाला हूँ। तुम लोगों ने जिस तरह अयोध्या के हमारे प्रदेश पर अधिकार किया वह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। तुम्हारे

लोभ की कोई सीमा नहीं है। तुम्हारे अभिमान का कहीं अन्त नहीं है। और तुम्हारी धन-पिपासा सर्वभक्षी ज्वाला के समान है, उसमें जितना ही डाला जाता है वह उतनी ही अधिक भड़कती है।'

हमारे देश में तुम अकिंचन व्यापारी बनकर आये। छल-बल से तुम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, इलाहाबाद, बनारस, सतारा और पूना के स्वामी बन बैठे। पर तुम्हें सन्तोष न हुआ। तुमने अपनी विष-दृष्टि नागपुर, झांसी, अयोध्या आदि बचे हुए स्वतंत्र राज्यों पर डालना शुरू की। हमारी समृद्धि, हमारी स्वतंत्रता तुम्हें फूटी आँखों भी नहीं सुहाई।

लेकिन इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। मैं जानता हूँ कि जिस देश में फूट होती है, क्षुद्र स्वार्थों को लेकर आपसी झगड़े होते हैं वह देश रसातल को चला जता है, उसकी आज़ादी दूसरे देशों द्वारा रौंदी जाती है।

लेकिन मुझे आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि जब हम जाग्रत हुए, भूल से जिसे गँवा बैठे थे उसे माँगने खड़े हुए तो तुमने हमें बाग़ी कहकर गोलियों का निशाना बनाया। अच्छा ही है! तुम न तो हमारे देश के हो और न हमारे देशवासियों के साथ तुम्हारा खून का रिश्ता ही है। तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध मालिक और ग़ुलाम का है। लेकिन यह मत भूल जाओ कि जिसे तुम ग़ुलाम समझते हो वही इस देश के सच्चे स्वामी हैं और तुम यहाँ केवल अतिथि बनकर ही रह सकते हो।

हम तुम्हारे विरुद्ध हथियार उठाते हैं। क्यों? सिर्फ यह कहने के लिए कि तुम अपने असली स्थान, अतिथि के स्थान पर आ जाओ! तब हम तुम्हारा स्वागत करेंगे। जो कुछ हमारे पास होगा तुम्हें देंगे। लेकिन अगर हमारे पूर्वजों की इस धरती पर अधिकार जमाकर तुम स्वामी बनना चाहोगे तो डटकर तुम्हारा सामना करेंगे। हल, मूसल, बाँस, पत्थर, मोथरी तलवारें जो हमारे हाथ लगेंगी वे ही लेकर तुमसे लड़ेंगे।

यह सादी बात भी तुम्हारी समझ में नहीं आपाती क्योंकि तुम्हारे स्वार्थ बाधक होते हैं। लेकिन मैं तुम्हें तुम्हारे पैग़म्बर के ही शब्दों में

कहता हूँ–Give unto caesar what is caesar's (जो कुछ सीज़र का है, वह उसे वापिस कर दो)।

'यहाँ कहा गया है कि मैंने किसी के खून से अपने हाथ नहीं रँगे। यह सच है। लेकिन खून करने वाले की अपेक्षा उसे प्रेरित करने वाले का अपराध कहीं ज्यादा होता है। मैंने युद्ध-क्षेत्र में भी सशस्त्र प्रतिकार नहीं किया। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं बाग़ी नहीं हूँ या मेरी बग़ावत कच्ची-पोची है। जो नहीं जानते वे सुनलें कि अग्निहोत्री का पुत्र होने के कारण आत्मरक्षा के लिए भी किसी प्राणी की हिंसा करने तक का अधिकार अग्निदेव ने मुझसे छीन लिया है।

'बाक़ी मृत्यु का डर दिखलाकर अन्याय को न्याय साबित करने का प्रयत्न सूरज को चिथड़ों से ढँकने-जैसा हास्यास्पद प्रयास है। डर दिखलाकर तुम शरीर को वश में कर सकते हो, देह को मार सकते हो लेकिन आत्मा को कैसे मार सकोगे? उसकी स्वतंत्र गति को कैसे रोक सकोगे?

'मेरे मन मृत्यु माला के दो मनकों को आपस में बाँधने वाले सूत के धागे के समान है। तुम उस मृत्यु का निमित्त बन रहे हो। मुझे उसके लिए न हर्ष है न शोक। परमात्मा से मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि इन मनकों और धागे का अन्त कर जब हम मेरु के समीप पहुँचें तो सबके सब तरह के क्लेशों का अन्त हो जाय।'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वासुदेव ने बोलना शुरू किया–

'मैं यूरोप में भी खूब घूमा हूँ। फ्रान्सिसी जनता की क्रान्तिकारी भावना, तुम्हारा अनुशासन और व्यावसायिक निपुणता और इतालवियों का रोमांचकारी प्राकृतिक सौन्दर्य मैंने अपनी आँखों देखा है। वहाँ मुझे हमारे सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों और विचारकों की कौम के विचारक भी मिले हैं। इतना ही नहीं हमें नया सबक़ सिखाने वाले राष्ट्रनायक और जननेता भी मैंने देखे हैं। सच तो यह है कि अपने सुषुप्त राष्ट्र की आत्मा को जगाने की दीक्षा मुझे मेरे शास्त्रों से नहीं बल्कि यूरोप के ही एक महात्मा से प्राप्त हुई

है। वह तुम्हारा ही बन्धु था। उसकी पुण्य स्मृति में मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ और जीवन से विदा लेने के पूर्व नम्रतापूर्वक तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ। जब तुम्हारा देश रोमन साम्राज्य की बर्बरता के नीचे कराह रहा था तब वहाँ किसी ने विद्रोह किया था या नहीं? नरपुंगव क्रॉमवेल ने स्वेच्छाचारी चार्ल्स का शिरच्छेद किया था या नहीं? तुम उन वीरों को गोलियों से बींधते हो या उनके चित्र और प्रतिमाएँ सुरक्षित रख उनकी पूजा करते हो?

'फिर हमारे ही साथ यह उलटी नीति क्यों बरती जा रही है? ईसा के अनुयायी सत्य का गला क्यों घोंट रहे हैं? ज़रा ठण्डे दिल से इस पर विचार करना।

'इस अदालत में मेरे देश के कर्ता-धर्ता भी विराजमान हैं। मैं उन्हें क्या कहूँ? सिर्फ यही कहूँगा कि ईश्वर की अदालत में अकेला आततायी ही अपराधी नहीं है बल्कि कायरतापूर्वक उसके अत्याचारों को सहकर आत्मा का अपमान करनेवाला भी वहाँ अपराधी ठहरता है।

'हम अपने आपको धार्मिक कहते हैं। लेकिन कायर का कोई धर्म नहीं होता। गुलाम का कोई धर्म नहीं है। धर्म और अश्रद्धा, धर्म और कायरता में सात जन्म का बैर है। यदि धर्म हमारे जीवन को ऊँचा नहीं उठाता, महान नहीं बनाता, हमें व्यापक दृष्टि नहीं देता, हमें तेजस्वी नहीं बनाता तो समझ लो वह धर्म नहीं है। जिस धर्म से जीवन पूर्णता प्राप्त नहीं करता वह धर्म अपूर्ण है। पुराणकालीन ऋषियों की तरह चिन्तन और मनन द्वारा उस धर्म को शुद्ध करने की आवश्यकता है।

'मैंने बरसों धर्म का चिन्तन और अनुशीलन किया है और अन्त में मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि आज की परिस्थिति में समानता पर आधारित राष्ट्र-धर्म ही हमारा त्राण कर सकता है। इस सत्य को चाहे आज समझो चाहे कल पर इसे आत्मसात् किये बिना त्राण नहीं है।'

इतना कहकर वह बैठ गये।

४

फाँसी की सजा सुनकर जैसे ही वासुदेव कालकोठरी में आये उनसे मिलने आने वालों का ताँता लग गया। महाराणा जंगबहादुर का छोटा भाई आकर उनकी चरण-रज ले गया। महाराजा श्रीवर्धन भी आये और साष्टाङ्ग दण्डवत कर बोले—मैं भी मौत के किनारे आ लगा हूँ। आपतो मृत्युञ्जय हैं फिर भी इस बात का शूल तो रह ही गया कि आपको बचा नहीं सका। यदि बचा सकता तो जीवन सफल हो जाता। परन्तु जानसन टस से मस न हुआ।

'आप उसके पास गये ही क्यों?'

'मैं तो जानता था कि यदि वह प्राणदान दे तो भी आप उसे स्वीकार नहीं करेंगे; परन्तु देवकी का आग्रह था।'

'जानसन ने क्या कहा?'

'उसने कहा, महाराज, आप और आपके पिता कम्पनी सरकार के वफादार दोस्त रहे हैं। आज भी वह दोस्ती कायम है। आपने हमेशा अंग्रेज़ सरकार के साथ भलाई का सलूक किया है। इसलिए आपके मुँह से एक राजद्रोही के प्राण बचाने की प्रार्थना सुनकर मुझे बड़ा दुःख होता है। क्या कम्पनी सरक.र की न्याय प्रियता में अब आपका विश्वास नहीं रह गया है? मैंने कहा...' श्रीवर्धन आगे बोल न सके।

परन्तु वासुदेव ने सस्मित वाक्य पूरा किया—आपने कहा होगा कि विश्वास तो अभी शेष है।

'यह तो नहीं, पर ने कहा, कि जिसने एक भी अंग्रेज़ का खून नहीं किया उसे व्यर्थ ही क्यों मृत्युदण्ड दे रहे हो? तो वह बोला, महाराजा, आपकी और कोई बात होती तो मैं कदापि नहीं टालता; परन्तु वासुदेव को छोड़कर कम्पनी के लिए खतरा मोल लेना नहीं चाहता। मैंने फिर कहा, साहब, वह मेरे कुलगुरु हैं। पूज्यनीय ब्राह्मण हैं। अपने ही आँगन में उन्हें फाँसी चढ़ते देखना मेरे लिये मुश्किल होगा। उसने पूछा कि क्या आप धमकी दे रहे हैं? मैंने जवाब दिया धमकी तो नहीं दे रहा। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में एक भला काम करने की इच्छा है। उसने कहा, कम्पनी सरकार के हाथ काफी लम्बे हैं। अब मैं बर्दाश्त न कर सका। बोला, यह मुझे याद दिलाने की ज़रूरत नहीं। आप को मालूम होना चाहिये कि मैं अपने सगे भाई तक की सिफारिश नहीं कर रहा हूँ। वह राजपूत बच्चा है। मरकर स्वर्ग जायगा। लेकिन ब्राह्मण के शरीर को चाण्डाल ने छुआ तो...'

वासुदेव ने प्रशंसा भरी दृष्टि से महाराज को देखते हुए कहा—महाराज, यह वीरता थोड़े समय पहले दिखलाई होती। खैर, लेकिन आपने अर्जुन को बचाने की कोशिश क्यों नहीं की?

'क्यों करता? वह तो एक शहीद की मौत मर रहा है। आरज़ू-मिन्नत कर मैं उसके महत्व में बट्टा नहीं लगाना चाहता।'

'मेरे लिए यह खयाल क्यों नहीं किया?'

'मैं तो आपके लिए भी नहीं कहना चाहता था। परन्तु देवकी का आग्रह था।

'देवकी को यहाँ भेज दीजियेगा।'

श्रीवर्धन प्रणाम कर चले गये। थोड़ी देर बाद सिपाही ने आकर खबर दी कि जनरल साहब आ रहे हैं।

वासुदेव उठकर अभी आसन बिछा ही रहे थे कि जनरल डेनियल ने आकर प्रणाम किया और नीचे ही बैठ गये। उनके साथ बारह-तेरह सालकी भूरे बालों वाली एक बालिका थी।

'यहाँ आसन पर बैठिये।'

'आप नीचे बैठें और मैं ऊपर बैठूँ, यह नहीं हो सकता।'

'आप मेरे अतिथि जो हैं।'

'लेकिन आप तो पूजनीय हैं और मेरे जीवनदाता भी हैं।'

जनरल का संकेत सालभर पहले की घटना से था। उस समय वह कर्नल ही थे और नरसिंगपुर राज्य की कौन्सिल के सदस्य भी थे। गण्डकी की लड़ाई में अर्जुन ने उन्हें पराजित कर पकड़ लिया था। उस समय वासुदेव नालदुर्ग में थे। यह खबर सुनते ही दौड़े आये। जनरल डेनियल की सेवा-सुश्रूषा कर उन्हें चङ्गा किया और छोड़ दिया।

'जबतक आप ऊपर नहीं बैठेंगे मैं खड़ा ही रहूँगा। अतिथि के सिवा आप अफ़सर भी हैं और मैं कैदी हूँ।'

'कैदी तो आप नरसिंगपुर राज्य की कौन्सिल के हैं। मेरा अब नरसिंगपुर से कोई सम्बंध नहीं रहा। इन दिनों नालदुर्ग की छावनी में हूँ। इसलिये मेरे मन तो आप पूजनीय और मेरे जीवनदाता ही हैं।'

यह कहकर जनरल आसन के एक कोने पर बैठ गया और वासुदेव से भी बैठने की प्रार्थना की।

'यह कौन है।'

'मेरी बेटी है। एमिली नाम है। आपके दर्शन कराने के लिए ले आया हूँ।'

फिर गम्भीर होकर बोला—मैं आपको अन्तिम प्रणाम करने और दो एक शंकाओं का समाधान करने के लिए आया हूँ। अन्त तक आपने किसी का खून नहीं बहाया; और यही आपके योग्य भी है।

'मैं इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ जनरल! भले ही मैंने अपने हाथ से किसी का खून न बहाया हो; लेकिन दूसरों को बहाने दिया है। उन्हें प्रेरणा दी है और योजनाएँ भी बनाई हैं।'

जनरल ने पशोपेश में पड़कर पूछा—यही तो मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यदि आप दूसरों को सशस्त्र विद्रोह के लिए प्रेरित कर सकते हैं तो स्वयं क्यों नहीं शस्त्र चला सकते? जो पाप दूसरों को करने दे सकते हैं, करने की आज्ञा दे सकते हैं उससे स्वयं क्यों भागे फिरते हैं?

'भागता कहाँ हूँ जनरल? सारी जिम्मेवारी तो अपने ही ऊपर ले लेता हूँ। सशस्त्र विद्रोह का नेता अर्जुन हो चाहे लक्ष्मण उसका जनक तो मैं ही हूँ। और इसलिए उनके सारे कामों की अन्तिम जिम्मेवारी भी तो मेरी ही है।'

'इतना सब होते हुए भी एक बात मेरी समझ में नहीं आ पाती। युद्ध-क्षेत्र में आपने किसी पर हथियार तो नहीं ही उठाया, लेकिन साथ ही दुश्मन के किसी वार से भी अपनी रक्षा करने का, दूर हटकर अपने को बचाने का प्रयत्न तक नहीं किया। यह तो सच है न?'

'पूर्ण सत्य तो नहीं है परन्तु बिलकुल असत्य भी नहीं है। हम ब्राह्मणों को जन्म के पहले दिन से जन्म-घुट्टी के साथ ही एक बात सिखाई जाती है। और वह यह कि यह शरीर नाशवान है। आज नहीं तो कल इसे मरना है। पैदा होना, बढ़ना, सड़ना और अन्त में नष्ट हो जाना शरीर का धर्म ही है। इसलिए इस क्षणभंगुर शरीर का मोह मत करो। इसे बचाने के लिए किसी को कष्ट मत दो। किसी को चोट मत पहुँचाओ। इसकी रक्षा का सारा भार इसके स्रष्टा ईश्वर पर छोड़ दो। वह इसकी रक्षा करेगा। जबतक आवश्यक होगा, बचा रखेगा और आवश्यकता पूरी हो जाने पर इसे नष्ट कर देगा। लेकिन जनरल, यह विचार परम्परा सामाजिक नहीं है। वैयक्तिक और आध्यात्मिक जीवन की आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार अग्निहोत्री ब्राह्मण का यह

विश्वास होता है कि इस शरीर का स्वामी ईश्वर है। इसे जीवित रखना या मारना उसकी इच्छा पर निर्भर करता है। इसलिए वैयक्तिक सुख-दुःख का प्रतिकार न करना उसका स्वाभाविक धर्म बन जाता है।'

'क्या इसका यह मतलब नहीं होता कि वह अपने शरीर से कुछ न करे?'

'नहीं, ऐसा तो नहीं है। ईश्वर जो कुछ करने की प्रेरणा दे वह करना चाहिये। वह न तो शरीर के बश में रहे और न राज-आज्ञा के बश में। उसका कर्तव्य है ईश्वर के बश में रहने का। सब कुछ उस परमपिता पर छोड़ दे। जीवन के अन्तिम क्षणों में भी मोहाविष्ट न हो, अस्थिर न हो और उस समय भी इस चराचर जगत् में सबसे प्रिय और निकट का यह जो शरीर है उसे बचाने का प्रयत्न न करे। यह तो आप भी मानते हैं न कि शरीर की रक्षा और शरीर के प्रति लगाव प्राणिमात्र की स्वाभाविक और स्वयंभू चेतना है? इस चेतना के परिणामस्वरूप ही औसत प्राणी अकाल, युद्ध, महामारी या दुर्घटनाओं में सब कुछ भूलकर इस शरीर से इस तरह चिपटते हैं कि सारी संस्कृति, सारी ज्ञान-परम्परा ही व्यर्थ हो जाती है। असल में सच्चे सुख और जीवन की यथार्थ सफलता का अनुभव तभी होता है जब इस क्षण-भंगुर देह के प्रति लगाव नष्ट हो जाता है। यह अनुभव सहजसाध्य नहीं होता। ब्राह्मण इस दुष्कर अनुभव की प्राप्ति के लिए, देह के प्रति समस्त मोह-ममता को छोड़ने के लिए, सदैव प्रयत्नशील रहता है और यही कारण है कि गोले-गोलियों की बौछार में भी वह अपने आपको ईश्वर के हाथों छोड़कर निर्भय विचरता है। बात आपकी समझ में आगई न?'

'तो फाँसी चढ़ते हुए भी आपको किसी तरह की वेदना न होगी?'

'मुझे यानी किसे? मेरे शरीर के अन्दर जो नित्य, अविनाशी आत्मतत्व है उसे लक्ष्यकर कहूँ तो कहना पड़ेगा कि शरीर के प्रति जितनी उसकी ममता होगी उतना दुःख तो अवश्य होगा। बाकी शरीर में तो अहर्निश परिवर्तन होता रहता है। फाँसी के पहले, फाँसी के वक्त और फाँसी

के बाद भी परिवर्तन होता ही रहेगा। अगर आत्मा पूर्णरूपेण ईश्वरनिष्ठ होगी तो उसके लिए यह मृत्यु भी अर्थपूर्ण हो जायेगी। इसे विधि का विधान समझकर यात्रा-पथ के दुर्लभ साथी की भाँति इसके हाथ में हाथ डालकर आत्मा परलोकगामी होगी।'

'यदि ईश्वर ही सब कुछ करता है तो फिर आप यह सब क्यों करते हैं?'

'मुझे भी सुझाने वाला तो ईश्वर ही है। कोलाहल-शून्य निस्तब्ध रातों में, निर्जन वनों और सूने नदी किनारों पर मैंने अपने मन में अनुभव किया है कि फाँसी के पटिये पर चढ़कर ही मैं भगवान के दरबार में पहुँचूँगा। इसी में मेरे जीवन की सार्थकता है।'

'और ये जो दूसरे आपके साथ हैं?'

'लेकिन वे ब्राह्मण नहीं हैं। ब्राह्मण बनने की अभिलाषा भी नहीं है। इसलिए उनका और मेरा धर्म भी एक नहीं है। वे अपने धर्म का पालन करते हैं और मैं अपने धर्म का। आततायी को दण्ड देना क्षत्रिय का धर्म है। आर्तजनों की रक्षा के लिए शस्त्र धारण करना उसका कर्तव्य है। अर्जुन अपने उसी क्षात्रधर्म का पालन कर रहा है।'

'यानी उनका और आपका ईश्वर अलग-अलग हुआ। दोनों का एक ही ईश्वर, एक ही धर्म नहीं है। ऐसा क्यों?'

'क्योंकि हम सबकी निष्ठा अलग-अलग है। किसी की निष्ठा फिरंगियों से घृणा करने में है तो किसी की निष्ठा धर्म-युद्ध में; किसी की निष्ठा जातिय-युद्ध में है तो किसी की निष्ठा व्यक्तिगत द्वेष में। पर मेरी अपनी निष्ठा ईश्वर में है। उनके मन में शंकाएँ हैं। भय, उद्वेग, आशा और निराशा है। जीत की खुशी और हार का दुःख उन्हें होता है। मैं इन सबसे अलिप्त हूँ। मेरे मन में सदा सर्वदा आनन्द का राज्य है और हर जगह मुझे अपने ईश्वर के दर्शन होते हैं। मेरी बुद्धि श्रद्धा से चालित है। वहाँ न शंका है

न कुशंका। राग-द्वेष से परे जो परमानन्द है, जो वैराग्य है उसकी सतत अनुभूति में करता हूँ, जनरल! वहाँ किसी तरह का पशोपेश नहीं है। सब सन्ताप, सब पीड़ाएँ, सब कलह वहाँ शान्त हो गये हैं। उस स्थिति को प्राप्त होने के बाद सब कुछ ईश्वरमय दिखलाई देने लगता है। स्त्री, पुत्र, परिवार, देश-काल, बन्धु-बान्धव सभी होते हैं लेकिन उस परमपिता की प्रसादी के रूप में। और प्रसादी के रूप में क्यों, उसी के एक अंश के रूप में। वहाँ माया ही ईश्वररूप हो जाती है। आपने भी कभी इसका अनुभव किया है जनरल?'

जनरल ने दीनतापूर्वक कहा—नहीं, मुझे तो कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ।

'हो भी कैसे? आपने अपनी जीवन-यात्रा इस उद्देश से आरम्भ ही कहाँ की है? आपकी यात्रा का उद्देश तो कुछ और ही है। दूसरों को अपनी कीर्ति से चौंधिया देने की आकांक्षा ही आपका लक्ष्य है। सृष्टि के केन्द्र-बिन्दु में अपने आपको स्थापित कर आप चले हैं जगन्नाथ की यात्रा करने। प्रकाश को सात तालों में बन्दकर आप दुर्गम विजन अन्धकारपूर्ण पंकिल पथ पर चल रहे हैं। अपने आपको सबसे श्रेष्ठ साबित करने की, सबसे पहली पंक्ति में खड़ा करने की होड़ जो लगा रखी है आप लोगों ने।

जनरल काफी देर चुप रहा, फिर बोला—संभवतः आज की सन्ध्या आपके जीवन की अन्तिम सन्ध्या है। मैं आपका ज्यादा समय तो नहीं ले रहा हूँ?

'नहीं जनरल! मैं मन ही मन परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था कि अपने मन की बात किसी सज्जन अंग्रेज़ को सुनाता जाऊँ। भगवान ने तुम्हें भेज दिया। तुमसे अधिक भला अंग्रेज़ और कौन मिलता?'

फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद जनरल ने पूछा—क्या आप यह नहीं मानते कि इस समय जो शान्ति और व्यवस्था है उसका अधिकांश श्रेय कम्पनी सरकार को है?

'कैसी शान्ति ? शान्ति दो तरह की होती है । एक पारस्परिक समझ से उद्भूत आन्तरिक शान्ति और दूसरी बन्दूक और तलवार के ज़ोर से जबर्दस्ती लादी हुई शान्ति । जनता की आत्मरक्षा की सामर्थ्य की दृष्टि से दूसरे प्रकार की शान्ति की अपेक्षा शान्ति का न होना ही ज्यादा अच्छा है । यह खयाल बिलकुल झूठ है कि आप लोगों के आने से पहले हमारे देश में अशान्ति थी; लूट-मार और हत्याओं का बोलबाला था । उस समय भी भारतवर्ष के लाखों-करोड़ों परिवार शान्तिपूर्वक अपनी घर-गिरस्ती चलाते और सुख से रहते थे । कई आक्रान्ता आये और चले गये । लेकिन खेती उसी तरह होती रही । नये-नये मन्दिर और मठों का निर्माण होता रहा । विद्यालय और विहार बनते रहे । किसी ने उसमें विघ्न नहीं डाला । सर्वसाधारण जनता का जीवन उसी अबाधित गति से चलता रहा । हर शाम को लाखों मन्दिरों से सुख और शान्ति की ध्वनि प्रार्थना के स्वर में गूँजा करती थी ।

सर्वत्र सुखीनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

'रोज सबेरे जलाशय ग्राम-नारियों के मधुर-कण्ठ से गूँज उठता था । तब न कोई अधिक अमीर था, न कोई भूखों ही मरता था । यदि पूरी शान्ति नहीं थी तो सर्वव्यापी मूढ़ता भी नहीं ही थी । छल-प्रपंच और विलास-व्यभिचार सिर्फ सम्पन्न दरबारियों तक ही सीमित था । साधारण जनता तो अपने खेतों, जंगलों, पशु-शालाओं और चरागाहों में वंशी की धुन और एकतारे की तान के साथ जीवन की गत मिलाकर सुखचैन से जी रही थी । संक्षेप में यह कि उस समय यहाँ सही अर्थों में जीवन था ।

'लेकिन आज सर्वसाधारण जनता का वह सुख छिन गया है । आज भी पनिहारिनें पानी भरने जाती हैं परन्तु उनके चेहरे मुरझाये हुए हैं; कपड़े फटे हुए हैं; नूर उड़ गया है । मन्दिर और देवस्थान धराशायी हो रहे हैं । गोचरभूमि के अभाव में गायें ठाँठ हो गई हैं । जिन ग्राम-पाठशालाओं में

देश की सन्तान अपनी संस्कृति का अध्ययन करती थी वे ऊजड़ हो गई हैं। हमारे हरे-भरे खेतों में कम्पनी सरकार की विषैली दृष्टि पड़ते ही धूल उड़ने लगी और अकाल का ताण्डव शुरू हो गया है। हमारा व्यवसाय और कला-कौशल चौपट हो गये। जन्मभूमि के लिए केसरिया बाना पहिननेवाले, शरणागत प्रतिपालक हमारे क्षत्रिय अपना धर्म भूल गये हैं। दूसरों की गुलामी स्वीकार कर वे जननी और जन्मभूमि से प्रेम करना भूल गये हैं। जनता के प्रति अपना उत्तरदायित्व उन्होंने भुला दिया है। जनता में उनका विश्वास नहीं रह गया। सारा विश्वास जाकर केन्द्रित हो गया है कम्पनी सरकार की कुर्सी पर, कलकत्ता की सरकारी तिजोरी पर।

'मैं यह नहीं कहता कि इस सारी बर्बादी की जिम्मेवारी सिर्फ आपही लोगों की है। हमारे विनाश का कारण हमारी अपनी मूलभूत कमजोरियाँ भी हैं। यदि नींव ही खोखली न हो गई होती तो बाहर के एक ही धक्के से सारी इमारत इस तरह गिर न पड़ती। मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारे यहाँ का शासकवर्ग अपना कर्तव्य भूलकर विलासी हो गया है। क्षुद्र स्वार्थों और आपसी लड़ाई-झगड़ों से ही उसे अवकाश नहीं मिल पाता। प्रजातंत्र के अभाव में सर्वसाधारण जनता अपने शासकों पर किसी तरह का अंकुश नहीं रख सकी। जिस अँग का उपयोग नहीं करते वह निर्जीव हो जाता है। ठीक उसी तरह राजनीति समझने और राजकाज चलाने की जनसाधारण की शक्ति प्रजातंत्रवाद के अभाव में नष्ट हो गई है। और यही कारण है कि आप लोग इतने बड़े देश पर इतनी आसानी से अपना अधिकार कर सके और सारे देश को अपना गुलाम बनाने में समर्थ हो गये। हमारी सामाजिक विषमता भी हमारी पराजय का कारण हो सकती है। और हम अपनी गलतियों का परिणाम भुगत रहे हैं। परन्तु तुम गलती क्यों करते हो? जान-बूझकर अन्याय क्यों कर रहे हो? दुनिया तो हमें मूर्ख कहकर क्षमा कर देगी। हम पर दया दिखलाएगी। लेकिन तुम जो जनवाद और स्वाधीनता के पुजारी बनते हो परमात्मा के दरबार में इस छल-कपट का क्या जवाब दोगे?'

इतना कहकर वह चुप हो गये और प्रश्नसूचक मुद्रा में जनरल की ओर देखा।

'परमात्मा निश्चय ही हमारे इस पाप की कड़ी सजा देगा।' जनरल ने धीमे स्वर में उत्तर दिया और नमस्कार कर खड़ा हो गया।

वासुदेव ने उसे विदा करते हुए कहा—मैं आपका कोई सत्कार नहीं कर सका, इसका अफसोस बना ही रहेगा।

५

दुनिया की आँखों से ओझल रात के घने अँधियारे में ही अर्जुन को फाँसी चढ़ाने का निश्चय किया गया था। गोरे अफ़सर यह नहीं चाहते थे कि सूर्य की किरनें उसकी यशोगाथा को लोक-लोकान्तर में प्रसारित करें। शाम को ही उसे सूचना दे दी गई थी कि आधीरात में उसे मौत को गले लगाना होगा। वह तैयार रहे। साथ ही यह भी रियायत दी गई थी कि वह जिस किसी से अन्तिम भेंट करना चाहे उसे बुलवा सकता है।

यह खबर सुनते ही राजशेखर को लेकर देवकी दौड़ी आई। न तो कोई खास बात-चीत करना थी और न कोई गुप्त सन्देश ही देना था। रह-रहकर दोनों एक दूसरे की ओर देख लेते थे; लेकिन आँखें मिलते ही देवकी के आँसू उमड़ आते थे। आज वह अपने जीवन की हँसी-खुशी, अपने जीवन के सहारे, अपने सर्वस्व को विदा देने आई थी।

जब राजशेखर का जन्म भी नहीं हुआ था तब यही अर्जुन उसके मातृस्नेह और वात्सल्य का केन्द्र था। पहली सन्तान के प्रति माँ का जो स्नेह होता है वही स्नेह देवकी का अर्जुन के प्रति था। दोनो ने एक साथ एक ही गुरु के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन किया था। दोनो ने एक साथ गुरु से दीक्षा ली थी। हँसी-हँसी में अनेकों बार एक दूसरे से होड़ बदी थी। देवकी ने अनेकों बार अपने हाथ से इमरती, गुलकन्द, और तरह-तरह के पाक बनाकर खिलाये थे। स्नेहपूर्वक इन पक्वान्नों को खिलाते समय कभी-कभी धौल-धप्पे खिलाने की धमकियाँ भी दी थीं।

रोना तो अर्जुन कभी जानता ही नहीं था। लेकिन देवकी के हिस्से कभी कदास आँसु आही पड़ते थे। उस समय उसका यही उत्पाती देवर अपनी अर्थशून्य पर स्नेह और सहानुभूति पूर्ण वाणी से भाभी को हँसाने का प्रयत्न करता था। भाभी के उमड़ते हुए आंसुओं को रोकने के लिए वह कई तरह के नाच-तमाशे करता, गाता-बजाता, नट-विद्या दिखलाता हाथी-घोड़े की नकलें करता, दास-दासियों की बेवकूफियों के किस्से सुनाता, बचपन में पढ़ाने वाले पंडित महाशय को किस तरह परेशान किया था सो सुनाता। इतना सब करने पर भी यदि देवकी के मुँह पर हँसी नहीं दिखलाई पड़ती तो वह कोई ऐसी चीज़ खाने की ज़िद ले बैठता जिसे पूरा करने में देवकी को जमीन आसमान एक कर देना पड़ता था। और अपने देवर को मनाने के उस प्रयत्न में वह अपना दु:ख-दर्द भूल जाती थी। यदि वह उसकी बात नहीं रखती तो उस बे माँ के उत्पाती बालक को छाती से लगाने वाला था ही कौन? बाप भी मर ही चुका था। भाई होकर भी नहीं होने के समान था। गुरु थे परन्तु उन्हें ज्ञान-ध्यान की गम्भीर बातों से ही फुर्सत नहीं मिलती थी। बच्चे के दिल को कौन समझता? उसके खाने-पीने, पहिनने-ओढ़ने की सारी फिक्र देवकी के ही सिर थी। इसलिए वह उसकी हर ज़िद को पूरा करती थी। यदि वह आसमान का चाँद भी माँग लेता तो उसके लिए भी देवकी आकाश-पाताल एक कर सकती थी। और उस समय देवकी की विह्वलता, नाराज़ी और दौड़-धूप देखकर अर्जुन मन ही मन उस बालक की तरह हँसता था जो माँ को झूठ-मूठ परेशान करने के लिये अल्मारी के पीछे छिप जाता है और माँ को सारे घर में परेशान होकर ढूँढ़ते देख चुपचाप हँसता है।

अब तो किसी मीठे सपने की दुःख भरी कसक की तरह उन सुनहले दिनों की सिर्फ याद ही शेष बची थी। वह याद न तो बीते दिनों को लौटा सकती थी और न वर्तमान को ही दूर कर सकती थी। उस याद से रह-रहकर हृदय में एक टीस-सी उठती थी। माँ-जाये छोटे भाई-सा वह अर्जुन

सामने बैठा था। लेकिन हँसी-खुशी के उन विगत दिनों की स्मृति आज मन को प्रसन्न करने में असमर्थ थी। दोनों एक दूसरे के सामने गुम-सुम बैठे थे। अर्जुन घड़ी के ठोके सुनकर सहज ही चौंक उठता था।

'भाई साहब नहीं आये?'

'वह तो उठ भी नहीं सकते। दूसरे, उन्होंने कहा है कि कौनसा मुँह लेकर जाऊँ? स्वर्ग में जब पिताजी पूछेंगे कि छोटे भाई को पहले ही भेज दिया तो उन्हें क्या जवाब दूँगा।'

फिर काफी देर तक मौन रहा।

'भाभी, अभी तो तुम्हें शेखर को भी चढ़ाना पड़ेगा। अकेले मेरी भेंट से काम बनेगा नहीं। फिर इस तरह रोती क्यों हो?'

'तुम नहीं समझ सकोगे, भैया! शेखर को तो मैं आज भी हँसते-हँसते वेदी पर चढ़ा सकती हूँ। आँख से आँसू की एक भी बूँद नहीं गिराऊँगी। पर तुम आज की मेरी अन्तर की व्यथा को नहीं समझ सकोगे!' और थोड़ी देर मौन रहकर बोली-भगवान ही जानता है कि मेरे आँसू क्यों उमड़े चले आ रहे हैं?

वॉर्डर के जूतों की आवाज़ सुनाई दी।

पास की कोठरी की ओर जाने के लिए अपनी कोठरी का दर्वाज़ा खोलते हुए अर्जुन ने कहा—वे लोग आरहे हैं। जाऊँ गुरुदेव को प्रणाम कर आऊँ।

और वहाँ जाकर उसने आवाज़ दी—भाभी, ज़रा यहाँ तो आना।

वहाँ जाकर देवकी ने वासुदेव को पद्मासन लगाये ध्यानावस्थित मुद्रा में दिवाल से टिककर बैठे देखा। उनका चेहरा प्रसन्नता से खिल रहा था। ऐसा लगता था मानो किसी मनोहर दृश्य को देखते ही देखते उन्होंने समाधि लगाली हो।

दर्वाज़ा खुलवाकर दोनों अन्दर गये और उनकी चरण-रज माथे पर लगाई। उनकी देखादेखी पहरेदारों ने भी वासुदेव को प्रणाम किया।

* * *

अर्जुन खट्-खट् करता हुआ फाँसी की टिखटी पर इस निर्भीकता से चढ़ गया मानों राजमहल की सीढ़ियाँ ही चढ़ रहा हो। उसने पास खड़े जल्लाद को दूर हटा दिया और स्वयं अपने हाथों से फांसी का फन्दा गले में डाल लिया। फिर जिस दिशा में वासुदेव की कोठरी थी उस ओर मुँह कर दोनों हाथ जोड़े और पटिये को लात मार नीचे गड़हे में झूल गया।

पास ही खड़ी देवकी ने राजशेखर से कहा—बेटा, काकाजी को प्रणाम कर।

फिर गोरे अंग्रेज़ों को सुनाकर ज़ोर से बोली—मेरा धन गया, धाम गया, राजपाट सब लुट गया; पर मैं मुँह से कुछ नहीं बोली। सब कुछ चुपचाप छाती पर पत्थर रखे सहती रही। मैं एक दुर्बल और असहाय नारी हूँ। विशेष तो कुछ कर नहीं सकती पर द्रुपद-सुता की लाज रखनेवाले हे गोपी वल्लभ! तुझे साक्षी बनाकर सिर्फ इतना ही कहती हूँ कि आज से अर्जुन भैया का दिखलाया हुआ पथ ही मेरा पथ है और अपने राजशेखर को भी मैं उसी पथ पर चलाऊँगी।

उसके रुआँसे स्वर ने एक तीखी और वेदनामय चीख का रूप धारण कर-लिया था। एक ऐसी चीख जो सुनने वाले की छाती के आर-पार निकल जाती है। एक ऐसी चीख जो उस शेरनी के गले से निकलती है जिसने अपना बच्चा गँवा दिया है या ऐसी माता के गले से निकलती है जिसके सद्यः प्रसुत बालक को प्रसूतिग्रह से ही कोई उठा ले गया है और जिसके आंचल दूध भरजाने के कारण पीड़ा से फटे जा रहे हैं।

* * *

महाराज श्रीवर्धन ने उस दिन से खाट नहीं छोड़ी। उन्होंने जानसन को बुलाकर कहा—अब मेरा अन्तिम समय निकट आगया है।

'हुजूर फिक्र क्यों करते हैं? कम्पनी सरकार ने महारानी साहिबा और कुंवर साहब का जिम्मा अपने सिर लेलिया है। उन्हें किसी तरह की तकलीफ नहीं होने दी जायगी।'

'मैं कम्पनी सरकार का अत्यन्त आभारी हूँ।' यह कहकर उन्होंने प्राण छोड़ दिये।

६

महाराजा का स्वर्गवास हुए सातेक दिन हुए होंगे। देवकी शोक-सूचक सफेद वस्त्र पहिने अन्तःपुर के एक अन्धेरे कमरे में बैठी थी। राजशेखर उसके घुटने के पास बैठा पूछ रहा था—माँ, मैं और सुभगा घोड़ों पर बैठकर घूमने जाएँ?

लेकिन माँ का मन न जाने कहाँ घूम रहा था। पिछले सात दिनों में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिन्होंने इस युवती रानी को एक सप्ताह में ही अधेड़ बना दिया था। जबतक उसके पति जीवित थे किसी ने अन्तःपुर में प्रवेश नहीं किया था। जो आते बाहर के रंगमहल से ही लौट जाते थे। अन्तःपुर में महारानी की हुकूमत चलती थी।

लेकिन पति की मृत्यु के बाद दो ही दिन में उसे पता चल गया कि अन्तःपुर तो दूर उसकी हुकूमत कमरे के दरवाज़े तक भी नहीं रही। दो दिन पहले की बात है। ड्योढ़ी के अरब दरबान उससे छुट्टी माँगने आये।

'हुजूर को सलाम बजाने आये हैं।'

'क्यों, क्या बात हुई?' उसने चिक की आड़ में बैठे-बैठे पूछा।

'इन्हें बर्खास्त कर दिया गया है। जाने से पहले आपको मुजरा करने आये हैं।'

'लालभाई जमादार की बारक को किसने बर्खास्त किया है?'

'हुजूर, ग़रीब परवर, जानसन साहब ने हमें बर्खास्त कर दिया है।' अरब दरबानों ने झुककर सलाम करते हुए अपनी गुहार सुनाई।

'जानसन साहब कौन होता है मेरे मामलों में दखल देनेवाला? तुम उसके नहीं मेरे नौकर हो।'

'खुदा हुजूर बाला को लम्बी उम्र बख्शे। हमने भी यही अर्ज किया था लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। साहब ने फरमाया कि चले जाओ। तलब नहीं मिलेगी।'

'पर जमादार, तनखा मैं दूँगी या वह? जाओ संभालो अपनी डेवढ़ी।'

'शुक्र खुदा का।'

अरब दरबान ड्योढ़ी पर लौट आये और बर्छियाँ दिखलाकर गोरे सिपाहियों को भगा दिया।

अन्तःपुर के दास-दासी इस घटना पर अभी हँस-बोल ही रहे थे कि दरबान ने आकर खबर दी—जानसन साहब मिलना चाहते हैं।

देवकी ने अन्दर से जवाब दिलवाया—कहदे कि महारानी साहिबा अभी नहाकर पूजा में बैठी हैं। पूजा समाप्त होने पर मिलेंगी।

पूजा समाप्त होने से पहले दरबान तीन चक्कर लगा गया।

जानसन के आते ही चिक के अन्दर से सवाल पूछा गया—आप अन्तःपुर के तौर-तरीके जानते हैं या नहीं? पूजाघर के दरवाजे पर सन्देशा दौड़ाने की ऐसी कौनसी जरूरत आपड़ी थी?

इन पिछले सात दिनों में महारानी के स्वर में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया था। बोलती थी तो ऐसा लगता था मानों तलवार की धार झन-झना रही हो। जानसन को यह स्वर काफी अपमानजनक लगा।

वह बोला—आपको तकलीफ हुई उसकी माफी चाहता हूँ। लेकिन कम्पनी सरकार ने मुझे आपका संरक्षक नियुक्त किया है। और उस हैसियत से मैं जब चाहूँ आपसे मिल सकता हूँ।

'तो क्या आपकी कम्पनी सरकार स्वर्गीय महाराजा के अन्त:पुर की भी सरकार है ?'

'सरकार नहीं, रक्षक कहिये महारानीजी! राजकुमार की नाबालिग अवस्था में सारी व्यवस्था कम्पनी सरकार के ही जिम्मे है।'

'नाबालिग राजकुमार है, मैं तो नहीं हूँ। यह मत भूल जाओ कि मैं स्वर्गीय महाराजा की अर्धाङ्गना हूँ। आगे से इस तरह का अपमान वर्दाश्त नहीं करूँगी।'

'महारानीजी, आप किसी ऐरे-गैरे के साथ नहीं महाप्रतापी कम्पनी सरकार के एक बड़े अफ़सर के साथ बात कर रही हैं।'

'तुम्हें यह भी मालूम है कि तुम अपनी महारानी से बोल रहे हो?'

यह बात कुछ इस तेज़ी के साथ कही गई थी कि जानसन घड़ीभर के लिए हका-बका रह गया। उसकी समझ में नहीं आया कि अग्निशिखा जैसी इस स्त्री के साथ वाद विवाद करना कहाँ तक उचित होगा? थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने धीमे किन्तु विनय रहित स्वर में कहा—मैं एक बात पूछने आया था।

'क्या?'

'अरब दरबानों ने मेरे सिपाहियों को किसके हुक्म से निकाल बाहर किया है?'

'मैं खुद तुमसे इस बात का जवाब तलब करती हूँ कि मेरे अरब दरबानों को बर्खास्त करने का हुक्म किसने दिया था?'

चिक के अन्दर से किन्हीं दासियों की हँसी का दबा हुआ स्वर सुनाई दिया। जानसन ने क्रोधपूर्ण स्वर में चिल्लाकर कहा—मेरे हुक्म से। मैंने उन्हें बर्खास्त किया है। महल का खर्च कम करने के लिए मैंने उन्हें निकाल दिया है। कम्पनी सरकार ने आपके और नाबालिग राजकुमार के

खर्च के लिए एक हजार रुपए मासिक देना तै किया है। आज जो अनाप-शनाप खर्च हो रहा है उसे कम करने के लिए मुझे यह क़दम उठाना पड़ा है।

'एक हजार रुपए मासिक? और तै किसने किया है? कम्पनी सरकार ने? और जो मैं उसे लेने से इन्कार कर दूँ?'

'तो वह रक़म आपके नाम से जमा होती रहेगी और आपको मुफ़लिसी में दिन बिताने होंगे।' और धीरे से बोला—और अरब दरबानों को तो बर्ख़ास्त करना ही पड़ेगा।

'जानसन, यह कमरा छोड़कर इसी समय चले जाओ। माधवी, ज़रा साहब को दरवाजे के बहार तो कर देना, भला।'

चिक के पीछे से अग्नि-स्फुलिंग की तरह आज्ञा हुई और चाँदी की छड़ी वाली एक दासी आकर साहब के आगे हो गई।

'अच्छा महारानीजी, अभी जाकर आपके अरब दरबानों को गिरफ्तार करता हूँ। देखूँ, मुझे कौन रोकता है? और उसने वहीं दरवाजे के बीच खड़े-खड़े आवाज़ दी—सोहनसिंह!

एक बूढ़ा सिख जमादार अन्दर दौड़ा आया।

'ठहरो जरा।' देवकी चिक के अन्दर से झपट कर बाहर निकली। जानसन घबराकर दो क़दम पीछे हट गया। उसने महारानी के सौन्दर्य के सम्बन्ध में अनेकों बातें सुनरखी थीं। आज उसे प्रत्यक्ष देखकर वह क्षण-भर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़-सा रह गया।

रानी के शरीर पर वैधव्यसूचक सफेद कपड़े थे। गले में रुद्राक्ष के छोटे-छोटे मनकों की माला थी। एक हाथ की कलाई में तुलसी का गजरा बँधा था। सिर के बाल रूखे और अस्त व्यस्त थे। उनमें अभी कंघी नहीं की गई थी। संगमरमर की मूर्ति-सा सुन्दर चेहरा इस समय फीका था। और गर्दन का वह बाँकपन तो बड़े-बड़े सत्ताधीशों के मान का भी मर्दन

करने वाला था। उन्नत सिर की भंगिमा कह रही थी कि वह किसी के सामने झुकना नहीं जानता: न झुका था, न झुकेगा। रानी के सारे व्यक्तित्व में एक ऐसा तेज था जो आस-पास के सभी लोगों को सहज ही अभिभूत करलेता था।

'यदि तुमने उन्हें गिरफ्तार किया तो मैं स्वर्गीय महाराजा का शिरस्त्राण धारणकर अपनी दासियों सहित लड़ाई छेड़ दूँगी।' उसकी आँखों से बिजलियाँ छूट रही थीं। जानसन डर गया। उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक विलासी राजा की रानी इतनी तेजस्विनी होगी। धीमे स्वर में बोला—लेकिन उन लोगों ने मेरे सैनिकों का अपमान जो किया है।'

'मेरी आज्ञा पाकर किया है। गिरफ्तार करना हो तो मुझे करो।'

'लेकिन उन्हें बर्खास्त तो करना ही होगा। रियासत उनका खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकती। दूसरे, उनकी कोई ज़रूरत भी नहीं है।'

अच्छी बात है। लेकिन वे एक ही शर्त पर बर्खास्त किये जासकते हैं।'

कौनसी शर्त ?

भविष्य में तुम इस महल के अन्दर क़दम नहीं रख सकोगे। मुझे चिक से बाहर आने के लिए विवशकर तुमने वह अधिकार गँवा दिया है।

'जैसी आपकी मर्ज़ी।' और जानसन नमस्कार कर चलता बना।

'माधवी, सालेभाई सलाम करने आएँ तो उन्हें तीन-तीन महीने की तनखा इनाम में देकर मेरी ओर से दुःख प्रगट करना। फिर देवकी फुर्ती से अन्दर चली गई और धरती पर लोट-लोट कर रोने लगी। असीम दुःख से उसकी छाती फट रही थी। धीरज का बाँध टूट गया था।

आज उसका, एक राजकुल वधू का एक गोरे नौकर ने अपमान किया था। दुःख की मारी वह महारानी सद्यः विधवा थी। इस समय और तो और सूर्य को भी वह अपना मुंह नहीं दिखला सकती थी। परन्तु उस

बेअदब, घमण्डी और बदजबान फिरंगी अफसर ने अपनी हिमाकत के कारण उसे चिक से बाहर आने के लिए मजबूर कर दिया था। उस समय कुल-देवता पशुपतिनाथ कहाँ सो गये थे? क्यों न उन्होंने उसपर वज्र गिरा दिया? क्यों न उस समय धरती फट गई? अब उस लोक में वह पति को क्या जवाब देगी?

लेकिन थोड़ी देर शान्त होने के बाद उसके विचारों ने पलटा खाया। वह सोचने लगी–इसमें बुरा ही क्या है? मैंने जो कुछ किया उचित ही किया। वासुदेव की शिष्या और राजरानी के योग्य ही मेरा व्यवहार था।

लेकिन उस व्यवहार का मूल्य ही क्या था? एक पागल के प्रलाप की तरह, हवा में तलवार का वार करने की तरह क्या वह निरर्थक नहीं हुआ। उसके अरब दरबान बर्खास्त कर ही दिये गये। यही है उसके पद का गौरव? महारानी का महत्व? यही है उसकी सार्थकता? उसका जन्मजात अभिमान गहरी चोट खाकर सिसक उठा। वह उसी तरह बिलख-बिलख कर रोती रही, रोती ही रही।

अगर राजशेखर आकर उसे झकझोर न डालता तो वह न जाने कब तक यों ही रोती रहती। उसके फूल-से सुकुमार चेहरे को देखकर उसे खयाल आया कि उसका अपना जीवन तो अपने बेटे के लिए था। वह उसकी माँ थी। अपने लाल को बड़ा करके, अपने पूर्वजों के महान गौरव का उसे भान कराने और उसकी रक्षा करने के लिए उसे ऐसे कितने ही छोटे-बड़े अपमान छाती पर पत्थर रखकर सहना होंगे। यह खयाल आते ही उसने राजशेखर को कसकर अपनी छाती से लगा लिया। उसे अपनी आँचल की ओट कर लिया और महल के चारों कोनों में इस तरह भय-विह्वल होकर देखा मानों उसे किसी की नजर से बचा रही हो।

* * *

चार दिन बाद तो इससे भी ज्यादा दुःखदाई और अपमानजनक घटना घटी। देवकी महारानी के गौरव के उपयुक्त पूरे राजसी ठाट-बाट के साथ

उनका श्राद्ध करना चाहती थी। एक-एक स्वर्ण मुद्रा सहित ब्राह्मणों को एक हजार गायों का गोदान, निकट और दूर के सभी सम्बन्धियों को रेशम और जरी का शिरोपाव, एक सहस्र कुँवारी कन्याओं को गंगा-जमुनी पोशाक और राज्य की ओर से पशुओं के लिए गोचर-भूमि निकालना चाहती थी। साथ ही स्वर्गीय महाराजा की आत्मा की शान्ति के लिए राजकुमार के हाथों गया में पिण्डदान करवाकर वहाँ एक धर्मशाला बँधवाने का भी उसने निश्चय किया था। इस सब खर्च के लिए उसने सरकारी खजाने से रुपये माँगे थे। इसमें अनुचित कुछ भी नहीं था। राज घराने में सदा से ऐसा ही होता आया था। अन्तिम संस्कार और श्राद्ध आदि में इसी तरह दान-दक्षिणा के लिए सरकारी तिजौरी से रुपये आते थे। देवकी श्राद्ध की तैयारियों में गले तक डूब गई थी। उसे दम मारने की भी फुर्सत नहीं थी।

उस दिन की घटना के बाद जानसन तो महल में नहीं आता था। अन्तःपुर की रक्षा का भार उन दिनों सोहनसिंह नामक एक बूढ़े सिख जमादार पर था। महारानी और जानसन के बीच वही कड़ी का काम देता था। दोनों के सन्देशे एक दूसरे के पास पहुँचाना उसी के जिम्मे था। रुपये की माँग किये जाने पर जानसन ने उसके द्वारा कहला भेजा कि सरकारी खजाने में इतने रुपये नहीं हैं। महारानी ने जो तखमीना बनाया था उसका दसवाँ हिस्सा भी बर्दाश्त करने की हैसियत उस समय रियासत की नहीं थी।

देवकी तो स्तब्ध ही रह गई। सारी तैयारियाँ करीब-करीब हो चुकी थीं दूर-दूर से ब्राह्मण और गरीब-गुरबों का आना भी शुरू हो चुका था। और उससे कहा जा रहा था कि कुल तखमीने का दसवाँ हिस्सा भी खर्च करना मुश्किल है!

'अपने साहब से जाकर कहो कि सारी तैयारियाँ होगई हैं। व्यापारियों से माल खरीदा जा चुका है। हलवाइयों को सामान बनाने का हुक्म दिया जा चुका है गौएँ भी आगई हैं। श्राद्ध के कुल जमा दो ही दिन तो शेष

बचे हैं। अब खर्च कैसे कम किया जाय और इससे स्वर्गीय महाराज की आत्मा को कितना कष्ट पहुँचेगा? तुम्हीं बतलाओ।'

'महारानीजी, साहब बहादुर ने सब कुछ सोच-विचार कर ही यह बात कहला भेजी है। उनकी राय में तो इस तरह अनाप-शनाप खर्च करने की कोई ज़रूरत नहीं है। और मैं तो सिर्फ हुकुम बजाने वाला हूँ। मैं क्या कहूँ?'

'अरे भाई, तुम्हारे देश में भी राजा-महाराजा मरते हैं या नहीं? उनका अन्तिम संस्कार होता है या नहीं? उनकी यादगार में समाधियाँ बनाई जाती हैं या नहीं? महाराजा रणजीतसिंह की समाधि बनी हुई है या नहीं?'

सोहनसिंह ने सिर झुकाकर कहा—जी हाँ।

'इन कामों में बेशुमार पैसा लगता है या नहीं?'

'जी हाँ।'

'तुम्हारे साहब के देश में भी अमीर-उमरों की शादी के वक्त जल्सों आदि में लाखों खर्च किये जाते हैं या नहीं?'

'जी हाँ, किये तो जाते हैं।'

'फिर यहीं क्यों विघ्न डाला जा रहा है। क्यों उनकी आत्मा की मुक्ति में अड़ङ्गे लगाये जा रहे हैं? उन्हें इस लोक में सुखी नहीं होने दिया। अब परलोक में तो उन्हें सुखी होने दो। उनका यह लोक तो बिगाड़ा ही परलोक भी क्यों बिगाड़ रहे हो?' थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह फिर बोली—जाओ, अपने साहब से कहदो कि खर्च का जो तखमीना बना है उसमें से एक कानी कौड़ी भी कम करने की गुँजाइश नहीं है। और खजाना कम्पनी सरकार का नहीं, स्वर्गीय महाराजा का है।

बूढ़ा जमादार चुपचाप चला गया। वह बड़ा ही विनय़शील और मित-भाषी था। देवकी ने देख लिया था कि उसपर गुस्सा होना बेकार है।

थोड़ी देर बाद लौट आकर उसने जानसन का सन्देशा कह सुनाया—

'आपने खर्च का जो हिसाब बतलाया है उसका जोड़ लगाने पर तो कुल रक़म आपके तखमीने की सिर्फ एकतिहाई ही होती है। इसलिये सरकारी खजाने से आपके तखमीने की सिर्फ एकतिहाई रक़म खर्च की जा सकेगी। उससे अधिक नहीं। यदि अधिक खर्च करना हो तो महारानी अपने पास से खर्च करें। महारानी के पास जो हीरे-जवाहरात हैं उनसे अपने पति की आत्मा की शान्ति के लिए दान-पुण्य करने का उन्हें पूरा अधिकार है।'

'मुझे एकतिहाई रक़म भी नहीं चाहिये। मेरे पति इस रियासत के मालिक थे ही नहीं। वह तो हमारा और उनका भ्रम ही था, जो आज टूट गया। लेकिन वह मेरे पति तो थे न? उनका श्राद्ध मैं अपने खर्च से ही कर लूँगी। जाकर कहदो अपने साहब से।'

सोहनसिंह ने रुकते-रुकते कहा—महारानी साहिबा, मेरी वजह से आपको तकलीफ पहुँचती है; लेकिन क्या करूँ, मजबूर हूँ! मैं तो सिपाही आदमी ठहरा। हुक्म बजाना मेरा काम है। न तो मेरे हाथ में कोई हुकूमत है और न भला-बुरा समझने की अक्ल ही। इसलिए माफ किया जाऊँ।

और इतना कहकर वह धीरे-धीरे वहाँ से चला गया।

* * *

महाराजा का श्राद्ध बड़ी धूमधाम के साथ पूरा हुआ। देवकी ने सारा खर्च अपने पास से ही किया था। जानसन ने जो रक़म भेजी थी उसे तो बिना छुए ही वापिस कर दिया था। श्राद्ध के तीसरे दिन वह राजशेखर को गोद में लिये अपने कमरे में बैठी थी, उसी समय माधवी ने आकर खबर दी—रानी माँ, जमादार सोहनसिंह तोशाखाने की चाभी माँग रहा है।

बाहर सोहनसिंह इस डर से काँपता हुआ खड़ा था कि अभी रानी की करारी फटकार सुनने को मिलेगी। लेकिन वैसा कुछ भी नहीं हुआ। अन्दर धीमे-धीमे बातचीत हो रही थी—

'रानी माँ, वह तोशा-खानें की चाभी माँग रहा है"

'सो मैं जानती थी माधवी !'

'तो चाभी देना ही होगी ?'

'और रास्ता ही क्या है? न दूँ तो क्या करूँ? अरबी दरबानों को पहले ही निकाल दिया। दास-दासियों को भी एक-एक कर छुट्टी देदी। अब रह गये हैं तू, मैं, शेखर और सुभगा। दो-चार हीरे-जवाहरातों के लिए हमारे कट मरने से लाभ ही क्या होगा? यदि मरना ही है तो अर्जुन भैया की तरह मरेंगे! फेंकदे चाभी। इनके पापों का घड़ा जितना जल्दी भरे उतना ही अच्छा।'

'गया में जो धर्मशाला बँध रही है उसका खर्च अभी माणकचन्द को चुकता करना है। उतनी लागत के आभूषण तो निकाल ही लेना चाहिये। उसने तो काम भी शुरू करवा दिया होगा।'

'बात तो ठीक है। अच्छा, जमादार को भीतर बुला।'

सोहनसिंह अन्दर आया और सलाम बजाकर खड़ा होगया।

'ये अलाम-सलाम के ढोंग रहने दो। मैं इससे तंग आगई हूँ। अब तुम्हारी निगाह मेरे गहनों पर पड़ी है। सोना देखकर अंग्रेज़ों के मुँह में पानी न भर आये तो उनके बापदादों ने लुटेरों का पेशा ही क्या किया! अच्छी बात है, ले जाना चाहते हो तो ले जाओ। पर देखो, अन्दर मेरा हीरा जड़ा नौलखा हार है। वह मुझे देते जाना।'

'महारानी साहिबा, मैं मजबूर हूँ। कुछ भी नहीं कर सकूँगा। साहब का हुक्म है कि गहनों की पूरी सूची बनाकर उन्हें सीलबन्द करके बड़े साहब के हवाले करदूँ। महाराजा साहब के श्राद्ध में आपने जिस तरह पैसा खर्च किया उसे देखकर साहब को आपके भविष्य के बारे में फिक्र हो उठी है। इसलिए पंचनामा कर तोशा-खाने पर कब्जा करने का उन्होंने मुझे हुक्म दिया है।'

'तो क्या मुझे उसमें से एक हार भी नहीं मिल सकता?'

'मैं मजबूर हूँ, महारानी साहिबा।'

'तुम जानते हो, मैं हार क्यों माँग रही हूँ?'

सोहनसिंह ने सिर हिलाकर अपनी अनभिज्ञता प्रगट की।

'तो सुनो! मैं गया में अपने स्वर्गवासी महाराजा की स्मृति में एक धर्मशाला बँधवा रही हूँ। उसीके खर्च के लिए मुझे वह हार चाहिये। तोशा-खाना के तमाम गहनों पर मेरा अधिकार है। एक दिन मेरे पति ने मुझे वह प्रेम भेंट दी थी। लेकिन मैं उनके लिए झगड़ा नहीं करना चाहती। अब उनके बाद मेरे लिए उन गहनों का उपयोग ही क्या है? जी का जञ्जाल ही हैं। लेकिन वह नौलखा हार तो तुम्हें देना ही पड़ेगा। धर्मशाला अधूरी रह गई तो सिवा आत्महत्या के मेरे सामने और कोई रास्ता नहीं रह जायगा। इतना समझ लो।'

आप बड़े साहब का हुक्म मँगवा लीजिये।'

'उसका हुक्म? अपने ही गहनों के लिए उसके हुक्म की ज़रूरत होगी? सोहनसिंह, मैं तुम्हें चाभी इसी शर्त पर दे सकती हूँ कि मुझे मेरा नौलखा हार तुम दे जाओगे।'

'यह नहीं हो सकता, महारानी साहिबा।'

'नहीं हो सकता? तो तुम्हें चाभी भी नहीं मिल सकती।'

'मुझे क्यों मुसीबत में डाल रही हैं? यदि चाभी सीधे-से नहीं मिलेगी तो मुझे अपने सिपाहियों की मदद से उसपर कब्जा करना होगा।'

और एकदम बिजली की तरह कड़कती हुई आवाज़ सुनाई दी—ज़रा मेरी छुरी तो देना, शेखर!

धूँ-धूँ कर जलती हुई ज्वाला की तरह देवकी उठकर खड़ी होगई। उसके हाथ में छुरी का फल लपलपा रहा था। उसके इस रणचण्डी वेश को देखकर सोहनसिंह के हाथ-पाँव फूल गये।

'कहाँ हैं तुम्हारे सिपाही ? देखूँ, कैसे लेते हो चाभी ?' उसने अंगारे बरसाती हुई अपनी आँखें जमादार के चेहरे पर गड़ादीं। बूढ़े सोहनसिंह की जबान ही ऐंठ गई।

माधवी से चाभियों का गुच्छा लेकर देवकी ने कहा—देखूँ, कौन रोकता है मुझे वहाँ जाने से ?

और उसने जैसे ही क़दम आगे बढ़ाया सोहनसिंह ने दरवाज़ा रोककर सूखे गले से कहा—आप वहाँ नहीं जा सकतीं।

'कौन होता है तू मुझे रोकने वाला ? क्यों अपनी जान गँवाता है ? हट जा सामने से।' देवकी ने उसकी छाती पर छुरी की नोक अड़ाते हुए कहा।

सोहनसिंह को पसीना हो आया। उसने हाँफते हुए कहा—मैं कम्पनी का सिपाही हूँ। आपका हार लाने का वचन देता हूँ।

उसका साहस और सरलता देखकर देवकी का गुस्सा कापूर की तरह उड़ गया। उसने मन्द मुस्कान के साथ कहा—अच्छी बात है। तो तुम चाभियाँ ले जा सकते हो। थोड़ा आराम करलो तब तोशाखाना खोलना।

चाभी लेकर सोहनसिंह जाने लगा तो देवकी ने उसे रोककर पूछा—तुम्हारे कोई लड़का है ?

'जी हाँ ?'

'और लड़कियाँ ?'

'तीन हैं।'

'और पत्नी ?'

'सत्श्री अकाल की कृपा है।'

'तो फिर मेरे हाथों मरकर उन सबको अनाथ क्यों कर रहे थे ? माधवी, इन्हें पानी पिला।'

सोहनसिंह देहली पर बैठकर पानी पीने लगा और देवकी ने उससे आगे पूछा—सरदारजी, फौज में कितने साल से हो?

'चालीसेक बरस से।'

'तुम अपने आप को कम्पनी के सिपाही कहते हो न?

उसने खड़े होकर जवाब दिया—जी हुजूर, मैं अंग्रेज़ बहादुर का नमक खाता हूँ।

'क्यों जी, हमारे यहाँ के खेतों में जो अनाज होता है उसे क्या ये अंग्रेज़ पैदा करते हैं?'

'जी नहीं।'

'फिर कौन पैदा करता है?'

'हमारे यहाँ के किसान।'

'किसानों की इच्छा होते ही अनाज पैदा हो जाता है या किसी पर निर्भर करता है?'

'पानी तो बरसना ही चाहिये।'

'और क्या वह पानी कम्पनी सरकार के हुक्म से बरसता है?'

'नहीं महारानीजी, सत्श्री अकाल की कृपा से बरसता है।'

'तो शायद अनाज तुम्हारी कम्पनी सरकार की कृपा से पकता होगा?'

'नहीं, अनाज भी सत्श्री अकाल की कृपा से ही पकता है।'

'तो अनाज देनेवाला कौन हुआ? भगवान या कम्पनी सरकार? अच्छा यह बतलाओ कि तुम्हें पैदा किसने किया? कम्पनी सरकार ने तो नहीं ही किया न?'

'जी नहीं, मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म दिया है।'

'तो फिर तुम कम्पनी सरकार के कैसे होगये, न तो उसने पैदा किया न वह खाने का अनाज ही देती है।'

'लेकिन हिन्दुस्तान की धरती के मालिक तो वही हैं।'

'अच्छा, तो धरती कम्पनी सरकार ने बनाई है, क्यों? देवकी ने बड़ी अचरज भरी वाणी में पूछा—उनके देश में जिस तरह कपड़े के कारखाने हैं वैसे ही धरती बनाने के कारखाने भी होंगे। कारखानों में धरती बनाकर उसे जहाजों में भर-भर कर ये यहाँ ले आये और यहाँ का देश बना दिया, क्यों?'

सोहनसिंह ने हँसकर कहा—जी नहीं, धरती तो ईश्वर ने अनादिकाल से बना रखी है।

'क्यों बनाई है?'

'आदमी के बसने के लिए।'

'अच्छा सोहनसिंह, अब एक बात सुनो! किसी धनिक ने एक धर्मशाला बनवाई। अनेकों मुसाफिर आते और उसमें रात बिताकर चले जाते। एक दिन एक बदमाश वहाँ रात बिताने के बहाने आया और उसने उस पर अधिकार ही जमा लिया। दूसरे जो वहाँ टिके थे उन्हें निकाल बाहर किया। अब मुसाफिरों को सारी रात धर्मशाला के बाहर कड़ी सर्दी में ठिठुरते हुए बिताना पड़ती है, परन्तु वह बदमाश उन्हें अन्दर घुसने ही नहीं देता। जो उसकी गुलामी मंजूर करते हैं, उसके पाँव दबाने को तैयार रहते हैं, उसके पशुओं को दाना-चारा खिलाने की हामी भरते हैं, और उसके दरवाज़े पर पहरा देकर दूसरों को अन्दर जाने से रोकना स्वीकार करते हैं उन्हें एक कोने में जगह दे देता है। तुम्हीं बतलाओ यह कहाँ तक ठीक है? और उसका यह दावा कि वह धर्मशाला का मालिक है, कहाँ तक सही है?'

'यह तो बिलकुल ग़लत है।'

'हरियाले मैदान में भोले-भाले हरिणों का एक निरुपद्रवी झुण्ड चर रहा हो और कहीं से एक रक्तपिपासु बाघ आकर उनपर टूट पड़े और अपने पंजों से हरिणों को लहू-लुहान करदे तो उसे तुम क्या कहोगे ?

'भयङ्कर और घृणास्पद।'

'सोहनसिंह, तुम बूढ़े और मेरे पिता की जगह हो।'

'नहीं महारानी जी, मैं तो आपका नौकर हूँ।' सोहनसिंह ने विनयपूर्वक उत्तर दिया।

'यही तुम्हारी भूल है, सोहनसिंह। तुम किसी के नौकर नहीं हो। एक ईश्वर को छोड़ और किसीके ताबेदार नहीं हो। यह भूल जाओ कि तुम अंग्रेज़ों का नमक खा रहे हो।'

और देवकी उसे छोड़कर अन्दर चली गई।

सोहनसिंह

१

जानसन ने तोशा-खाने से आये हीरे-जवाहरातों के बक्स खोलकर देखे तो उसकी आँखें कपाल में चढ़ गईं। सफेद हीरे, लाल मोती, हरे रंग के पन्ने, आसमानी रंग वाले पुखराज और लँका तथा ईरान के रंग-बिरंगे मोती तारों की तरह चमक रहे थे।

इङ्गलैण्ड में उसने भी दूसरों की तरह हिन्दुस्तान के राजा–नबाबों के ऐश्वर्य और अपार सम्पत्ति के सम्बन्ध में कई किस्से सुने थे। हीरे-पन्नों से लदी बेग़में, स्वर्ण खचित अम्बारियाँ और मन को मस्त कर देने वाले रंग-महलों का आकर्षण कितने ही अंग्रेज़ों को कम्पनी का अफ़सर बनाकर हिन्दुस्तान में खींच लाया था।

आज पहली मर्तबा वह अपनी आँखों से उस ऐश्वर्य की एक झांकी देख रहा था। हरएक गहने को अच्छी तरह उलट-पलट और घूर-घूर कर देखते हुए उसने पूछा–सबकी 'लिस्ट्' बनाली है न सोहनसिंह?

'जी हाँ।'

'महारानी से यह भी कह दिया है न कि जब नाबालिग राजकुमार को गादी सौंपी जायेगी उस समय, राज्य का कर्ज चुकाने के बाद जो कुछ शेष बचेगा, लौटा दिया जायेगा?'

'जी हाँ।'

वह फिर उन दागिनों की सूची के साथ मिलान करने में तल्लीन हो गया।

'मेरी एक प्रार्थना है, साहब।'

'बोलो।'

'महारानीजी ने इनमें से एक हार माँगा है। गया में स्वर्गीय महाराजा की यादगार में वह जो धर्मशाला बना रही हैं उसके खर्च का भुगतान करने के लिए उन्हें अपने इस नौलखे हार की ज़रूरत होगी।' नर्मदा की लहरों पर उछलने वाले फेनिल बुद्बुदों की तरह जो श्वेत धवलहार जानसन के हाथों में हिल रहा था उसकी ओर अंगुली-निर्देश करते हुए सोहनसिंह बोला।

वह हार दूसरे आभूषणों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान नहीं था। वहाँ दूसरे और भी कई मूल्यवान गहने थे। परन्तु चूँकि रानी ने वह हार माँगा था इसलिए जानसन ने उसे सबसे अधिक क़ीमती समझ लिया।

'महारानी से कहदो कि उन्हें यह हार नहीं मिल सकता।'

सोहनसिंह ने आश्चर्यचकित होकर कहा—वह धर्मशाला जो बँधवा रही हैं।

'बँधवा रही होंगी। रियासत उनकी फिजूलखर्ची कहाँतक बर्दाश्त करेगी? कल तो वह सारा राज्य ही किसीको सौंप देंगी। यह तो नहीं चल सकता।'

'लेकिन यह हार तो उनकी अपनी मिल्कियत है।'

साहब ने आश्चर्यचकित होकर ऊपर देखा। फिर फौजी अफ़सर की रोबिली वाणी में कहा—सोहनसिंह, कम्पनी सरकार ने तुम्हें महारानी की वकालत करने के लिए नौकर नहीं रखा है। जाओ यहाँ से।

बूढ़ा सिख तनकर खड़ा हो गया और तीखे स्वर में बोला—लेकिन साहब, कम्पनी सरकार ने किसी निराश्रिता नारी का स्त्री-धन छीनने के लिए भी हमें नौकर नहीं रखा है। साहब, यह हार तो उन्हें देना ही पड़ेगा मैं उन्हें वचन दे आया हूँ।

जानसन ने आजतक कभी इस आज्ञाकारी वृद्ध जमादार को बिगड़ते या नाराज़ होते नहीं देखा था। क्षणभर के लिए उसके मन में आया कि सरदारजी को समझा देना चाहिये। उन्हें बतला दिया जाय कि आज कम्पनी को रुपए की कितनी सख्त ज़रूरत है। दूसरे एक युवती रानी के हाथ में अगर यह सारी दौलत छोड़ी गई तो वह चुटकियों में उसे बर्बाद कर देगी। फिर कम्पनी यह दौलत कुछ हड़पना तो चाहती नहीं थी। लेकिन दूसरे ही क्षण उसे खयाल आया कि वह यहाँ का सबसे बड़ा सैनिक और नागरिक (मिलिट्री एण्ड सिविल) अफ़सर था। सिपाहियों के लिए इस तरह की सफाई माँगना अपराध था। और सिपाहियों के आगे इस तरह की सफाई पेश करना एक अफ़सर के नाते उसकी कमज़ोरी समझी जाएगी। क्षणभर के लिए उसे यह भी खयाल आया कि रानी ने कहीं किसी दासी के जरिये इस बूढ़े जमादार को लालच तो न दी हो! कहीं वह किसी जाल में फँस तो नहीं गया था?

उसने डपटकर कहा—सोहनसिंह, होश में हो? किसके बात कर रहे हो? मुझे यह याद दिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ना चाहिये कि तुम अपने बड़े अफ़सर के सामने खड़े हो।

'यह बात भूला तो नहीं हूँ, साहब! इसीलिए तो मैंने आपकी इजाजत के बिना हार पहुँचाने से इन्कार कर दिया था।'

'लेकिन ऐसा वचन देने का अधिकार तुम्हें दिया ही किसने था? और ऐसी कौनसी ज़रूरत आपड़ी थी?'

सोहनसिंह के मन में आया कि रानी के छुरी लेकर लपकने और तोशा-खाने की ओर जाने की सारी बात कह सुनाए। परन्तु फिर कुछ सोचकर चुप रह गया। उसे जवाब देने में देर करते देख जानसन का सन्देह और भी पक्का हो गया। उसने फिर डपटकर पूछा—बोलते क्यों नहीं?

'उन्हें धर्मशाला के लिए पैसों की ज़रूरत थी।'

'तुम्हारे साथ सन्देशा भेज देतीं। इतना ही काफी था। तुम्हें वादा करने की क्या ज़रूरत थी? सोहनसिंह, मैंने तुम्हें और तुम्हारी गारद को

वहाँ पहरा देने के लिए नियुक्त किया है, इस तरह की मिटकौस करने के लिए नहीं। तुम सिपाही आदमी हो। तुम्हारा काम हुक्म बजा लाने का है। भविष्य में मुझे इस तरह की सलाह मश्विरा देने की ज़रूरत नहीं। जाओ।'

लेकिन सोहनसिंह अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। बोला—साहब, यह हार तो महारानी साहिबा को मिलना ही चाहिये। यह उनका नारी-धन है।

जानसन खड़ा हो गया। वह और भी ज़ोर से डपटकर बोला—सोहनसिंह, तुम महारानी के सिपाही हो या कम्पनी बहादुर के? फिर उसने ज़ोर से आवाज दी—रिचर्डसन!

एक अंग्रेज़—युवक अन्दर दाखिल हुआ।

'यदि महारानी के सिपाही हो तो अपनी वर्दी और हथियार रख दो और मेरे सामने से चले जाओ।'

सोहनसिंह ने सलाम कर कहा—साहब, सिपाही तो मैं कम्पनी सरकार का ही हूँ परन्तु यह हार भी महारानी साहिबा का ही है।

'राइट् अबौट टर्न—क्विक् मार्च!'

सोहनसिंह मशीन की तरह घूमा और लम्बे डग भरता हुआ कमरे के बाहर चला गया।

२

बड़े साहब के दफ्तर से लौटा तो सोहनसिंह के मन में एक ज़बर्दस्त उथल-पुथल मची हुई थी। उसके दिमाग़ की शिराएँ फटी जा रही थीं? ऐसा लगता था कि सारे बदन के टुकड़े ही उड़ जाएँगे।

चालीस साल की नौकरी में उसने कभी भी किसी अफ़सर को कुछ कहने का मौक़ा नहीं दिया था। स्वयं इतना विनयशील था कि और तो और नौकर-चाकर तक का अपमान नहीं किया था। वह एक सीधा-सादा सिपाही था। अपने भोले-भाले बाप का खेत छोड़कर सीधा फौज में भर्ती हो गया था। खुले आसमान और लम्बी-चौड़ी धरती पर जीने वालों के समान वह छल-कपट से कोसों दूर था। धरती ही की तरह सहनशील और आसमान की ही तरह उदार उसका हृदय था।

फौज में भर्ती होने के बाद भी सोहनसिंह के कृषक-स्वभाव में किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं होने पाया था। काम से दिल चुराना या पीछे हटना वह जानता ही नहीं था। दुश्मन की कड़ी मार के आगे जब गोरे अफ़सर पीछे हटने का हुक्म देने का विचार कर रहे होते वह अपनी टुकड़ी को आगे बढ़कर हमला करने का हुक्म देता और स्वयं सबसे आगे रहता था। अपने सुख-दुःख और आराम का कोई खयाल किये बिना उसने अराकान से टेठ कन्धार तक कम्पनी सरकार का राज्य फैलाने के लिए अपना कुम्मैत घोड़ा दौड़ाया था।

सतलज से लेकर झेलम, चिनाब, रावी, गण्डक, घाघरा, हुगली और पद्मा आदि सभी नदियों की धारा उसने पार की थी और हर नदी के किनारे अपने हाथों से कम्पनी का झण्डा गाड़ा था ? कम्पनी सरकार ने हर तरह से उसका सन्मान किया था। लड़ाई के मैदान में हिन्दी सैनिकों के लिए दुर्लभ कप्तान का पद उसे एकबार नहीं, अनेकों बार सौंपा गया था और जब-जब कठिनाई उपस्थित हुई उसके ऊँचे अफ़सर उससे सलाह लेने उसकी शरण में आये थे।

लेकिन इस सारे आदर-मान से वह निर्लेप ही रहा। जब कभी चाँदी-सोने के वे तमग़े छाती पर लटकाने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह जाता था तो सोहनसिंह मन मारकर उन्हें टाँग लेता था। परन्तु ऐसा लगता था मानों उसने छाती पर मन भर का पत्थर रख लिया हो। और जबतक उन्हें उतार कर रख नहीं देता उसे चैन नहीं पड़ता था।

सिख और अंग्रेज़ सैनिकों को हथियार चलाने और लड़ाई के दाव-पेंच सिखलाने में उसका बड़ा मन लगता था। जब इससे अवकाश मिलता तो वह रिवाल्वरों की सफ़ाई करने और तलवारों को घिस-माँजकर चमकाने में मशगूल हो जाता था। कभी-कभी उसका मन भटककर पंजाब के उस छोटे-से गाँव के धूलि-धूसरित मार्ग पर पहुँच जाता था। गोधूलि बेला में खेतों से लौटते हुए बैलों की घण्टियों और घास के गठ्ठे सिरपर उठाये कमर लचकाती हुई कृषक वधुओं का मधुर गुँजार उसे याद हो आता था। नये गेहूँ और ताजे कटे घास की गन्ध उसके नथनों में भर जाती थी। वहाँ ताजे गरम खून और घायलों की चीख-पुकार का नाम-निशान तक नहीं होता था। अपने गाँव की याद आते ही उसके हाथ स्थिर हो जाते थे और आँखें किसी ध्यान-मग्न योगी की तरह अपने आप मुँद जाती थीं। लेकिन यह सौभाग्य उसे क्षणभर के लिए ही मिल पाता था। अन्तर-चक्षुओं के सामने गाँव का दृश्य अभी पूरी तरह उभरने भी नहीं पाता था कि कोई न कोई उसे खोजता हुआ आही पहुँचता था। कभी कोई रिचर्डसन यह पूछने

आ पहुँचता था कि बाबाजी, गण्डक नदी को किस स्थान से पार करना ठीक रहेगा या फिर कोई पोलक यह पूछने आजाता कि फलाँ तलहटी में दुश्मन से कैसे मुक़ाबला करना चाहिये ?

बूढ़े सरदारजी उत्तरी हिन्दुस्तान की धरती के चप्पे-चप्पे से परिचित थे और कुशल से कुशल नक्शे-नवीस को भी उसकी भूल बतला सकते थे।

उत्साही सैनिकों को तो वह आधी रात में भी तलवार के हाथ सिखलाने के लिए तैयार रहते थे।

और यही कारण था कि सोहनसिंह का नाम सारी पलटन मशहूर था और हर कोई उनका आदर-मान करते थे। गोरी और काली दोनो पलटनों में वह समानरूप से सम्मानित किये जाते थे। और वह भी सभी का आदर करते थे, जो गुरु नानक के सच्चे शिष्य के उपयुक्त ही था।

लेकिन आज वह सारा आदर-मान किसी ने उनसे छीन लिया था। उन्हें सम्मान के ऊँचे आसन से नीचे ढकेल दिया था। उनकी नेक सिपाहीगिरी को शंका की दृष्टि से देखा गया था। उनके लिए इससे बड़ा और कोई अपमान नहीं हो सकता था। लेकिन जो कुछ हुआ वह अनुचित तो नहीं था। ग़लती उन्हीं की थी। वह सिपाही आदमी थे। उनका काम हुक्म उठाने का था। अफसरों के हुक्म को सिर-माथे पर उठाकर उन्होंने दुर्गम नदियों, बीहड़ वनों और गहरी घाटियों को पार किया था। कभी सवाल नहीं पूछा। कभी बहस-मुबाहसा नहीं किया। तो फिर आज बुढ़ापे में यह क्या सूझी ? क्यों अपनी डेढ़ टाँग लगा बैठे ? वह क्यों भूल गये कि 'ड्यूटी' पर तैनात सिपाही मशीन की तरह है। उसका काम हुक्म बजा लाना है। उसे यह नहीं देखना है कि उसकी गोली किसे लग रही है। उसका काम है हुक्म के अनुसार गोली चलाना। फिर वह गोली उसके सगे बाप की छाती में लगे, इकलौते बेटे के सीने में लगे, दोस्त को लगे या दुश्मन

को। अनुशासन की ऐसी कड़ी पाबन्दी ही दुश्मन को पराजित कर सकती है, सिपाही को विजयी बना सकती है। और जीवन भर ऐसी सिपाहीगिरी करने वाले को आज यह क्या सूझी कि अपने अधिकार से परे वह वचन दे बैठा? ग़लती हुई, बहुत बड़ी ग़लती होगई! अभी चलकर महारानी के समक्ष अपनी ग़लती मँजूर करले।

महल में पाँव रखते ही उसकी आँखों के आगे अपनी मझोली लड़की की उम्र की, दुःख-शोक से दग्ध, सद्य विधवा महारानी की मूर्ति आ खड़ी हुई। उसे याद आगई उसकी वही बात कि 'तुम मेरे पिता की जगह हो!' और विचारों में फिर तेजी से परिवर्तन शुरू हुआ।

क्या दुनिया में एक मात्र कम्पनी सरकार की नौकरी ही सत्य और मूल्यवान है? क्या स्नेह, दया, माया, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म आदि की कोई क़ीमत ही नहीं है? क्या यह सब झूठ है? पैसों के आगे और किसी की कोई कीमत ही नहीं है? यह अन्याय, यह घृणित व्यवहार और यह विश्वासघात ही सत्य है? न्याय की, सत्य की, दया-माया की प्रार्थना इसके आगे कोई क़ीमत ही नहीं रखती? कम्पनी सरकार की सिपाहीगिरी क्या इतनी घृणित और ओछी है? क्या वह न्याय का गला घोंटने वाला, सत्य का खून करनेवाला एक जल्लाद मात्र है? उसने अपने दोनों हाथों की ओर देखा और उन्हें इस तरह झटकने लगा मानों वे लहू में सने हों।

फिर उसने अपने आप से प्रश्न किया—यदि बड़े साहब ने दाढ़ी-मूछ मुड़ाकर ग्रन्थ साहब को पानी में फेंकने का हुक्म दिया तो मैं क्या करूँगा? क्या उसे मान लूँगा? क्या बड़े साहब का हुक्म हिमालय पहाड़ की तरह है जो लाँघा ही नहीं जा सकता।

स्त्री, पुत्र, पिता सभी को गोली मारी जासकती है लेकिन क्या धर्म को भी गोली मारना उचित है? क्या यह संभव है? न्याय की छाती में छुरी

भोंकना कहाँतक उचित होगा? सिपाहीगिरी के कर्तव्य की रक्षा क्या ऐसा करने में ही है? नहीं, हर्गिज़ नहीं। यदि इसे मान लिया जाय तो मुग़ल सेनापति के आदेश पर उसे सिपाही होने के नाते गुरु अर्जुनदेव और गुरु तेगबहादुर का सिर धड़ से जुदा करना पड़ेगा। क्या वह इसे कर सकेगा? नहीं, यह पाप-कर्म तो वह कभी नहीं करेगा।

माना कि सिपाहीगिरी ऊँची है और ऊपर के अफ़सर का हुक्म भी ऊँचा है लेकिन धर्म और न्याय के आगे इन सबकी कोई बिसात नहीं है।

नूतन ज्ञान की प्राप्ति से विस्मित होनेवाले जिज्ञासु की नाई वह अपने मनोमन्थन को देख-परख रहा था और अन्त में एक बालक की भाँति आह्लाद पूर्ण स्वर में बोल उठा–सिपाहीगिरी बड़ी बात है लेकिन न्याय तो उससे भी बड़ा उससे भी ऊँचा है।

* * *

उसने देवकी के पूजाघर के सामने जाकर संकोचपूर्ण शब्दों में कहा–साहब ने हार देने से इन्कार कर दिया।

देवकी ठण्डी साँस लेकर बोली–मैं पहले ही जानती थी।

कक्ष में बड़ी देर तक घना मौन छाया रहा।

फिर देवकी बोली–हे मुरारी, जिनके लोभ की कोई सीमा नहीं, जिन्हें न पुण्य की चिन्ता है न पाप का डर, जो निष्ठुर हैं, जो निर्मम हैं, जिनके साथ न तो मैत्री हो सकती है और न दुश्मनी ही जिनका कुछ बिगाड़ सकती है, अबला के आँसू और अनाथ बालकों का क्रन्दन भी जिन्हें पसीज नहीं सकता उनके आश्रय से मुझे शीघ्र ही उठा ले।

और उसने देवमूर्ति के चरणों में अपना सिर डाल दिया। फिर सोहन-सिंह की ओर रूखी दृष्टि डालकर कहा–तुम अपना वचन निभा नहीं सके

इसलिये लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं। दोष तुम्हारा नहीं तुम्हारे मालिकों का है, जिन्हें स्वार्थ के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं देता। तुम जा सकते हो।

* * *

इसके थोड़े दिनों बाद कलकत्ता के एक अंग्रेज़ी अखबार में एक विज्ञापन छपा था—

To be sold–बेचना है।

सुभगा

१

महाराजा की मृत्यु का पहला महीना तो देवकी के लिए बड़ा ही अन्धकारमय रहा। वह अपने दुःख में ही डूबी रहती थी। किसी के साथ बातचीत तक नहीं करती थी। राजशेखर कुछ पूछता, खोद-खोदकर सवाल करता, उसका पीछा ही न छोड़ता तो बेमन से उसकी बातों का जवाब दे देती और फिर अपने विचारों में तल्लीन हो जाती थी। सोहनसिंह रोज़ सवेरे-सवेरे आकर सलाम कर जाता था। उसके सिवा महल में और कोई आनेवाला भी नहीं था। महल में पूरा सन्नाटा छाया रहता। राजशेखर और सुभगा भी उस सन्नाटे को तोड़ते डरते थे। न तो ज़ोर से हँसने और न भाग-दौड़ करने का ही उनका साहस हो पाता था।

जबतक पुराने नौकर थे उनका समय उनके साथ खेलने-कूदने और घूमने-फिरने में बड़ी खुशी के साथ बीत जाता था। लेकिन अब सभी नौकर नये थे और उनकी संख्या भी कम करदी गई थी। और ये नौकर राजशेखर की कौड़ी बराबर भी पर्वाह नहीं करते थे। ऐसी दशा में दोनों बच्चों की देखभाल करने वाला भी कोई नहीं था। खाद-पानी के अभाव में जो दशा नये पौधों की हो जाती है ठीक वही दशा उन दोनों की हो रही थी। निस्तेज और मुर्झा रहे-से दोनों बच्चे झरोखे के किसी कोने में चुप लगाये बैठे रहते। आमने-सामने देखते हुए वे बातें करने की कोशिश करते लेकिन उन्हें शब्द ही नहीं मिलते थें। विषय की कोई कमी नहीं थी। आम बौराने

लगे थे। केले के कल्ले फूट रहे थे। लेकिन उस उदास वातावरण में उन्हें यह सब सूझ ही नहीं पड़ता था।

अन्त में एक दिन माधवी ने देवकी से कहा—रानी माँ, तुम तो यों काया घुला रही हो और उधर फूल से सुकुमार वे दोनों बालक मुर्झाये जा रहे हैं। जरा उनका तो विचार करो! न बेचारों के खाने-पीने का ठिकाना है, न खेलने-कूदने का। कोई उनकी सुध ही लेनेवाला नहीं। बतलाओ, यह कैसे चलेगा?

देवकी ने कोने में सोये हुए दोनों बालकों की ओर ध्यान से देखा। माधवी का कहना सच था। दोनों के चेहरे मुर्झाये हुए थे। उनका नूर ही उड़ गया था।

और उस दिन से देवकी ने अपनी सारी उदासी और निराशा को झक-झोर कर उतार फेंका। उसने महसूस किया कि जिन्दगी के दिन रो-रोकर बिताने के लिए नहीं हैं। अर्जुन के शव के आगे उसने जो भीष्म-प्रतिज्ञा ली थी उसे पूरा करना था।

और दुःख की करारी चोट के नीचे बिखरे हुए मन को उसने कसकर अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया।

दूसरे ही दिन उसने सोहनसिंह को बुलाकर कहा—सरदारजी, आज से राजशेखर को आपके हवाले करती हूँ। उसे रोज घुमाने-फिराने ले जाइए। घोड़े की सवारी सिखलाइये, शस्त्र-विद्या में पारंगत बनाइये। राजकुमार समझ उसके साथ किसी तरह की रियायत न करें। कठिन से कठिन परिश्रम का काम उससे लेते रहें।

शाम को राजशेखर गदकाफरी के हाथ सीखने जारहा था। सुभगा भी आगई और बोली—राज, मैं भी चलूँगी।

'क्यों?'

'मैं भी सीखूँगी।'

'तू नहीं सीख सकेगी।'

'चलने तो दे, फिर देख लेना सीख सकती हूँ या नहीं!'

'ठेठ से ठेठ लड़की भले ही सीख जाय; पर सुभी, मैं शर्त बदता हूँ कि तू सात जनम भी नहीं सीख सकेगी। अगर तू सीख जाय तो मैंने एक अशर्फी हारी।'

सुभगा ने हँसकर कहा—तो राज, तू अशर्फी हार गया। मुझे गदकाफरी के हाथ आते हैं।

'हुँह्, आते हैं! जबान हिलाते क्या देर लगती है? मुझे जो तो आता नहीं और इनको आता है! धरती में से तो अभी ऊगी नहीं है और बातें बनाएगी आसमान की।'

लेकिन जब सुभगा ने सोहनसिंह से गदकाफरी लेकर खेलना शुरू किया तो राजशेखर आश्चर्यचकित रह गया। वह दौड़ा देवकी के पास पहुँचा और और उसे खींचता हुआ झरोखे में ले आया।

नीचे आँगन के एक कोने में बालू डालकर अखाड़ा-सा बनाया गया था। दीवाल पर तलवार, भाले, बल्लम, छुरियाँ, बन्दूकें, जौनपुरी लाठियाँ और धारिये टंगे हुए थे। एक ओर हनुमान की सिन्दूर-चर्चित मूर्ति स्थापित की गई थी। पास ही मलखम्भ गड़ा हुआ था।

बीच अखाड़े में सुभगा गदका-फरी लिये एक सिपाही के साथ खेल रही थी। तड़ातड़ की आवाज़ गूँज रही थी। सोहनसिंह के मुँह से 'शाबाश' 'वाह-वाह' 'बड़ी फुर्ती से' 'मार दिया है' आदि उद्गार सुनाई दे रहे थे।

सुभगा अखाड़े से बाहर निकली। राजशेखर ने नीचे आकर उसकी पीठ ठोकी। और बोला—क्या कहने हैं सुभी, तेरे!

सुभगा ने कपाल का पसीना पोंछते हुए कहा—लाओ अशर्फी रख दो बाएँ हाथ से।

* * *

बड़े सवेरे उठकर दोनों घुड़सवारी के लिए जाते थे। मैदान, खेत, जङ्गल और खाइयों में सरपट घोड़ा दौडाते पसीने से तरबतर हो जाते थे। जब सूरज ऊँचा चढ़ आता तब लौटते थे। कभी कोई सवार साथ होता कभी अकेले ही रहते थे।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते शेखर पाता कि सुभगा ने तो यह सब पहले ही अपने पिता से सीख रखा है।

सरपट दौड़ते घोड़े की पीठ से नीचे झुककर पत्थर उठा लेना, नदी-नाले फाँदना, पहाड़ी के सीधे ढाल पर घोड़े को दौड़ाते हुए उतरना, गहरे पानी में कूदना, कड़ी चट्टानों से टक्करें लेना सुभगा के लिए हँसी-खेल था। जब मूसलाधार पानी बरसता हो, घटाटोप अन्धकार छाया हो, बादलों की गड़ागड़ाहट और बिजली की कड़कड़ाहट धरती और आसमान को एक कर रही हो, उस समय सुभगा का रूप देखते ही बनता था। वह जाकर देवकी से कहती—माँ, घुड़सवारी के लिये जाने दो।

शेखर कहता—यह भी कोई समय है बाहर जाने का ?

'तुम नहीं आना चाहते, तो मत आओ। बैठ रहो घर-घुसन बनकर। मैं तो जाऊँगी। यही तो समय है प्रकृति का वास्तविक रूप देखने का। रामधरी की उपत्यका वाले पहाड़ी नाले में बाढ़ आरही होगी। मोर और बन्दर सारे जंगल को अपने शोर से गुँजा रहे होंगे। मैं तो नहीं बैठी रह सकती घर में।'

'अच्छा,अच्छा, शेखर, जा, तू भी साथ जा।'

लेकिन सुभगा तो शेखर के आने से पहले ही निकल जाती। अस्तबल में पहुँचती। काले रंग के उस तेज़ तर्राट घोड़े को चुनती, जो किसी को

पुट्ठे पर हाथ भी नहीं रखने देता था। ठीक से लगाम चढ़ाये बिना ही उसकी नंगी पीठ पर सवार हो जाती और सरपट भाग निकलती। ड्योढ़ी पर बैठा वृद्ध सोहनसिंह पुकारता ही रह जाता। परन्तु कड़कती बिजलियों और गरजते बादलों की ओर लगे सुभगा के कान उसकी आवाज़ को सुन नहीं पाते थे। गुस्से से आग बबूला हो रहे घोड़े को लगाम के चाबुक पर चाबुक जमाती वह ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर भगाती चली जाती थी।

पीछे से शेखर का स्वर पुकारता चला आता—सुभी, ओ सुभी! लेकिन सुभगा को सुनने की फुर्सत हो तब न सुनाई दे।

और जब वर्षा धीमी पड़ जाती, रीते बादल घर लौट रहे बछड़ों की तरह कूदते-फाँदते, एक दूसरे से टकराकर मँडराने लगते, वर्षा के पानी से निखरी हुई पहाड़ों की धुआँसी चोटियों के पीछे इन्द्रधनुष निकल आता, पहाड़ी उपत्यकाओं में बरसात का मटमैला पानी आवाज़ करता हुआ बहने लग जाता, बूँदों की मार से खिरे हुए वनकुसुमों की गन्ध वर्षा से गीली मिट्टी की गन्ध के साथ मिलकर सारे जंगल में छाजाती, पत्तों से टप्-टप् कर गिरती बूँदें चराचर को मौन होकर प्रकृति का नीरव संगीत सुनने का आदेश देने लगतीं सुभगा अपने गीले केशों को सुलझाती हुई किसी ढोके पर खड़ी हो जाती। पास ही उसका हाँफता हुआ घोड़ा खड़ा होता और वहीं कहीं आस-पास इन्द्रधनुष की शोभा निरखने में लीन शेखर भी खड़ा होता।

सुभगा उसे चिढ़ाते हुए कहती—देखली तुम्हारी मर्दानगी। एक औरत को भी नहीं पकड़ पाये।

'आई बड़ी शेखी बघारने वाली। साथ-साथ निकले होते तो बतलाता। मैं जबतक अस्तबल में पहुँचा तू मैदान में निकल आई थी। चोर की तरह आगे भागकर शेखी बघार रही है?'

'अभी भी आपकी हेकड़ी बाकी है? अच्छा हो हिम्मत तो आ जाओ। इस बार दोनो साथ ही रवाना होंगे। देखें, कौन जीतता है?'

'तू किसी दिन घोड़े की जान ले लेगी।'

'घोड़े की बड़ी फिक है न तुम्हें! रोज उसके दाने-पानी का इन्तजाम भी जैसे तुम्हीं करते होगे! खरहरा तो मैं ही करती हूँ।'

सुभगा ठीक ही कह रही थी। वह बड़े प्रेम से घोड़े की देखभाल किया करती थी। घण्टों अस्तबल में बिताती। घोड़े की मालिश करती, चिचड़ी निकालती, घास डालती, गले में हाथ फेरती हुई स्नेह से चन्दी खिलाती। यदि इसमें जरा भी भूल चूक हो जाती या जल्दी बाजी की जाती तो उसका पारा गरम हो जाता था।

राजशेखर के घोड़े की सार-सँभाल भी वही करती थी। इसलिए जब-जब सुभगा का घोड़ा आगे निकल जाता वह कहता—तू ज़रूर पक्षपात करती है। अपने घोड़े को तो ठूँस-ठूँस कर खिलाती है और मेरे घोड़े को भूखा रख देती है। बेचारा थककर पिछड़ेगा नहीं तो क्या करेगा?

और फिर अपने घोड़े की पीठ ठोकता हुआ उससे कहता कोई फिक्र की बात नहीं है बेटा, आज से मैं खुद ही तेरी चन्दी-पानी करूँगा।

'क्यों मुझ पर झूठा इलजाम लगाते हो? मारे डर के घोड़े को तेज़ भगाने की तो तुम्हारी ही हिम्मत नहीं होती और दोष दे रहे हो मुझे और घोड़े को अच्छा इस बार तुम मेरा घोड़ा लो और मुझे अपने घोड़े पर बैठने दो। फिर देखना तुम्हारा घोड़ा भी हवा से बातें करने लगता है या नहीं?'

'माफ कीजिये। मुझे अपने घोड़े को मरवाना नहीं है। तूने जानवर पर दया करना तो सीखा ही नहीं है।'

सुभगा घोडे की पीठ पर सवार होकर उसे एड़ मारती हुई बोली—अच्छा यह तो बतलाओ कि मैंने कितने घोड़ों की जान लेली और तुमने सेवा-चाकरी कर कितनों को बचा लिया?

नित्य नियमानुसार अस्तबल के आगे पहुँचकर शेखर अपने घोडे की रास भी सुभगा को थमा देता और सीढ़ियाँ चढ़ जाता।

'आज तो तुम्हीं इसे चन्दी खिलानेवाले थे न?'

'मुझे नहाने में देर हो रही है। तू ही खिला देना।'

'फिर मत कहना कि मैंने भूखा रख दिया।' वह तीखे स्वर में कहती।

सोहनसिंह आकर खडा हो जाता और मुस्कराता हुआ कहता—सो तो वह कहेंगे ही।

'तो मेरी जाने बला। वह जानें उनका सईस जानें।'

गमछा आदि लेकर स्नान घर की ओर जाता हुआ राजशेखर कहता—सईस? तू ही तो मेरी सईस है।

सुभगा मुँह बिचकाकर और अँगूठा दिखलाकर कहती—चिबल्ला, मुँह-फट कहीं का। फिर बड़बड़ाने लगती—देख तो सही, माँ से जाकर कहती हूँ या नहीं कि राज ने आज भी घोड़े को चन्दी नहीं खिलाई।

मगर दूसरे ही क्षण राजशेखर के घोड़े के मुँह पर तोबडा चढ़ाती हुई अस्फुट स्वर में कहती—नौकर का क्या भरोसा? दाना चुरा ही ले जाय और फिर उसे घोड़े से प्रेम ही क्या हो सकता है? क्यों सरदारजी, सच है न? पिताजी तो कहा करते थे कि जो रोज़ अपने हाथों से घोड़े को घास-रातिब देता है उसे घोड़ा कभी दग़ा नहीं देता। युद्ध-क्षेत्र में विकट से विकट प्रसंगों में भी उसका साथ देता है। आपका क्या खयाल है सरदारजी?

'सच बात है बेटी! मैं अपने घोड़े का चन्दी-चारा हमेशा अपने हाथों से करता आया हूँ।'

अन्दर जाने पर शेखर को एक कोने में ले जाकर सुभगा धीरे से कहती-राज, सुना आज सरदारजी कह रहे थे कि जो अपने हाथ से अपने घोड़े

को चन्दी-चारा खिलाता है उसका घोड़ा युद्ध-क्षेत्र में विकट से विकट प्रसंगों में भी उसका साथ नहीं छोड़ता।'

'हुँह्!' जब कभी शेखर को किसी बात के प्रति उपेक्षा प्रगट करना होती तो वह इसी तरह माथे को झटका देकर 'हुँह्' कह देता।

'मैं माँ से कह दूँगी।'

'कह देना।' लेकिन दूसरे ही क्षण कुछ सोचकर वह कहता—परन्तु इस घोड़े को लड़ाई में ले भी कौन जायगा? तबतक तो कई घोड़े आएँगे और चले जाएँगे। फिर अभी से उसकी फिक्र क्यों?

'ना भाई, हम तो इसी घोड़े को ले जायेंगे। इसके जैसा समझदार और इशारे में समझने वाला घोड़ा मैंने दूसरा नहीं देखा। नये घोडे को सधते वक्त भी कितना लग जायगा?'

'अच्छी बात है। जब मेरा घोड़ा गिर पडेगा तो तेरे घोडे पर सवार हो लूँगा। चलो, छुट्टी हुई।' और वह मुड़कर चल देता।

* * *

दुपहर के समय दोनों नहाने-खाने से फारिग होकर देवकी के पास पहुँच जाते। माँ के एक घुटने के पास शेखर बैठता और दूसरे घुटने के पास सुभगा। शेखर तो माँ के घुटने पर सिर रखकर सो जाता, परन्तु सुभगा बैठी क्रिरोशे से रूमाल बुना करती। शेखर के बालों में अंगुलियाँ चलाती हुई देवकी उन्हें रामायण की कथा सुनाती। कभी सीताजी की अग्निपरीक्षा का प्रसंग निकलता और वह कहती—

'यह सुनकर सीता माता ने लक्ष्मणजी से कहा—भैया, झटपट चिता तैयार करो। मैं अभी ही जल मरूँगी। यदि मेरे राम को ही मेरा विश्वास नहीं है तो दूसरों का क्या भरोसा? ऐसे अविश्वास से तो मरना भला। लक्ष्मणजी की आंखों में आँसू उमड़ आते। वह चिता रचते जाते और रह-रहकर रामजी की ओर देखते जाते। लेकिन रामजी बिलकुल पत्थर की मूर्ति बने

चुप खड़े रहते। चिता तैयार हो जाती। सीता माता सातबार उसकी प्रदक्षिणा करतीं और कहतीं—हे अग्निदेवता, तुम आखुभुक् हो। सबको पवित्र करनेवाले हो। पाप को क्षार कर पुण्य को सतेज करने वाले हो। जो शुद्ध है वह तुम्हारी आँच में जलता नहीं, अधिक प्रकाशवान्, अधिक पवित्र होकर बाहर निकलता है। हे अग्निदेवता, यदि मैं अपवित्र हूँ, यदि मेरे मन में मैल आया हो तो मुझे जलाकर राख कर देना। लेकिन यदि मैंने—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावक।
यथा मां शुद्ध चरित्रां दुष्टां जानाति राघवः
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥

इस श्लोक का उच्चारण करते हुए उसका मधुर स्वर और भी माधुर्यपूर्ण हो जाता। दोनों हाथ जोड़कर अश्रु विगलित नेत्र झुकाये गद्गद् स्वर में वह कथासूत्र को आगे बढ़ाती। सुभगा की अंगुलियाँ भी बुनना छोड़ देतीं और उसके दोनों हाथ भी अनायास ही जुड़ जाते थे। उसके लिए यह कथा सर्वथा नवीन नहीं थी। ब्राह्ममुहूर्त में अनेकों बार उसने पिता के मुँह से आदिकवि की इस अनोखी वाणी को सुना था। वसुन्धरा से आश्रय मांगती भगवती सीता की करुणाजनक मूर्ति उसके हृदयपटल पर सदा के लिए अंकित होचुकी थी और कोई करुणप्रसंग छिड़ते ही वह मूर्ति साकार हो जाती थी।

शेखर कभी माँ की ओर देखता और कभी सुभगा की ओर और फिर बच्चे की तरह पूछ बैठता—फिर क्या हुआ? सीताजी जलगईं या बचगईं?

इसी तरह कभी नल-दमयन्ती की तो कभी हरिश्चन्द्र और शैव्या की और कभी कौरवों और पाण्डवों की कथाएँ कही जातीं। कभी राधा-कृष्ण के भक्ति-रस पूर्ण पद मीरा की नृत्य भंगिमा को सजीव कर देते।

शेखर तो कभी-कभी ऊँघ जाता था। लेकिन वैसाख-जेठ की भरी दुपहरी में भी सुभगा की आँखों में नींद नहीं घिरती थी। वह उत्सुकतापूर्वक

कवियों के अमर काव्यरस का पान करती बैठी रहती थी। कभी देवकी की इच्छा न होती और वह बहाने बाजी करती तब भी सुभगा उसे छोड़ती नहीं थी। 'आज तो याद नहीं पड़ रहा है, आगे की कडी ही भूल गई हूँ। बात जबान पर आकर उड़ जाती है।' आदि-आदि बहाने सुनकर सुभगा झट उसे याद दिला देती और कथा सुनकर ही छोड़ती थी।

तीनों के जीवन में किसी तरह का क्लेश नहीं था। दुःख दूर भाग गया था। राजमहल का कोना-कोना हँसी-खुशी से गुलजार हो रहा था। उन दोनों की मुक्त हँसी और कवियों की रसमय वाणी ने वहाँ से सारे शोक-सन्ताप को ही मार भगाया था।

साँझ होते ही शेखर और सुभगा कछोटा कसकर नीचे पहुँच जाते। बजरंगबली को प्रणाम और उस्ताद सोहनसिंह को सलाम कर अखाड़े में कूद पड़ते थे। गदकाफरी, तलवार, लाठी, वल्लम और कुश्ती के दाव-पेंच सीखते। कभी कदास दोनों की भिडन्त भी हो जाती। कभी सुभगा की जीत होती और कभी शेखर की। लेकिन दाव पूरा होते ही दोनों खिलखिला-कर हँस देते थे। सुभगा गजब की फुर्तीली थी। बिजली की तरह चंचल, हर पकड़ में से छिटककर निकल जाने वाली। इसके विपरीत शेखर ज्यादा शक्तिशाली था और काफी समय तक टिक सकता था। बिना किसी उतावल के वह अपने प्रतिद्वन्दी को नचाया करता था।

कुश्ती के समय देवकी भी झरोखे में आ बैठती और जब वे लौटकर आते उनसे कहती—आज तो तुझे सुभगा ने हरा दिया।

'मेरा ध्यान और कहीं था। और यह चट से वार कर बैठी। मुझे होशियार तक नहीं किया।'

'देखो माँ, कैसा झूठा है? 'होशियार' करने का काम मेरा है या सरदारजी का? तुम्हीं बतलाओ।'

'अच्छा भई, हम झूठे ही सही।' वह मुँह फुलाकर कहता।

'हाँ, शेखर सच ही कह रहा है। उसका ध्यान कहीं और था। तूभी सुस्त लग रही थी। रोज का-सा फुर्तीलापन नहीं था।'

बात सच भी थी। आज अखाडे में दोनों का मन लगा नहीं था। और उसका कारण यह था कि शेखर ने सुभगा के घोडे को पीट दिया था।

सुभगा जबान की बडी तेज़-तर्राट थी। तलवार की धार की तरह काटती थी। और जब शेखर और उसके घोड़े की बुराई करना होती तो उस जबान पर और भी धार चढ़ जाती थी।

आज भी सवारी के वक्त हमेशा की नाईं वह आगे निकल गई और शेखर पीछे रह गया था। सुभगा ने अपना घोडा धीमा किया और शेखर को चिढ़ाते हुए बोली—चले आओ फिसड्डीराम! शेखर ने पास पहुँचने के के लिए ज्यों ही अपने घोडे को ऐड़ लगाई सुभगा फिर हवा से बातें करने लगी और थोडी दूर जाकर घोडे को फिर धीमा किया और फिर आवाज़ कसी—अजी सवार साहब, अरबी घोडे और टट्टू का क्या मुकाबला? हमारा घोड़ा सूर्य के सात घोड़ों का वंशज है। इशारे में मन की बात समझता है। और एक है आप का अड़ियल टट्टू! और जैसा घोड़ा वैसे आप उसके सवार। खूब जोड़ी मिली है। अच्छा सवार साहब, सलाम।

लेकिन सुभगा की बात सही नहीं थी। घोड़े तो दोनों ही बराबरी के थे। लेकिन सुभगा जिस घोड़े पर सवार होती वही हवा से बातें करने लगता था। इसमें शेखर को सवार के गिरने का उतना डर नहीं था, जितना घोड़े की टाँग टूट जाने का; इसीलिए वह सुभगा को हरवक्त टोकता रहता और कहता—जानवर पर दया करना तो तू जानती ही नहीं है।

पर आज वह भी होड पर चढ़ गया था। उसने अपने घोडे पर दया करना छोड़ दिया और सुभगा के घोडे के पीछे अपने घोडे को तीर की तरह भगाना शुरू किया। आज उसने अपनी सारी लापर्वाही छोड़कर सुभगा से आगे निकल जाने का निश्चय कर लिया था। इस होड़ में सुभगा के

सिर के बाल खुल गए थे। साडी का एक आँचल झण्डे की तरह हवा में फरफरा रहा था और दूसरे आँचल को दाँतों में थामे वह उसे चिढ़ा रही थी—फिसड्डी आया, फिसड्डी आया।

और मातरिश्वा के अवतार-सा शेखर बाढ़ के पानी की तरह उसके पीछे भागा चला आ रहा था। ऐसा लगता था कि उषा और अरुण के बीच होड़ लगी हो।

'यही है न तेरा सूर्य के सात अश्वों का वंशज?' सुभगा के घोडे को एक ज़ोर का चाबुक जमाकर बवंडर की तरह आगे निकलते हुए शेखर ने कहा—अब चली आना पीछे-पीछे।

लेकिन उसे यह पता नहीं चला कि चाबुक घोडे की पीठ के बदले सुभगा की पीठ को उधेड़ गई थी।

वह अस्तबल के फाटक पर खड़ा सुभगा की प्रतीक्षा कर रहा था। अब ज़रा उसकी शक्ल तो देखली जाय। लेकिन सुभगा के बदले सईस घोड़ा लेकर आया। और सुभगा तो सीधे महल की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी। उसकी आँखों में आँसू भर रहे थे।

वह लपक कर उसके पास पहुँचा और हाथ पकड़ कर बोला—सुभी, क्या हो गया?

'कुछ नहीं, माँ से कहने दो।'

'पर मुझे तो कह, ऐसा हो क्या गया?'

'जरा माँ के पास तो चलो। वहीं बतलाऊँगी।' और यह कहकर उसने अपनी पीठ दिखला दी। जहाँ चाबुक लगा था वहाँ की चमडी ही उधड़ आई थी।

'अच्छा हुआ। रोज़-रोज़ मुझे खिजाती थी। सो उसका फल मिल गया। और शेखी बघारना।' परन्तु दूसरे ही क्षण बोला—मैंने जान-बूझकर थोड़े

ही मारा है। ग़लती से लग गया होगा।

'हुँह्' ग़लती से लग गया होगा। ज़रा माँ के आगे तो कहना यह बात।'

'अच्छा, अच्छा कह देना। कभी तेरी बारी भी आयेगी। फिर देख लूँगा। ... पर भगवान भी तीन तीन गुनाह माफ कर देते हैं।'

और वह जानता था कि सुभगा की उदारता और क्षमाशीलता भगवान से भी बढ़ी-चढ़ी है।

'आज दोनों घोड़ों को चन्दी खिलाना तुम्हारे जिम्मे।'

शेखर को नीचे उतरते देख वह बोली—ठहरो, मैं भी साथ चलती हूँ।

फर्र-फर्र करती हुई वह नीचे उतर आई और हँसकर बोली—इतने ज़ोर से मारते हैं भाई साहब कि चमड़ी ही उधड़ जाती है।

रात में राजशेखर को उर्दू पढ़ाने के लिए मुन्शीजी आते थे; परन्तु सुभगा उर्दू नहीं पढ़ती। वह शास्त्रीजी से संस्कृत सीखती थी। और मुँशीजी के जाने के बाद शास्त्र का प्रमाण देकर बतलाती कि यदि हिन्दू का बेटा उर्दू पढ़े तो उसे साक्षात् रौरवनर्क में ही जाना पड़े।

और सबेरा होते ही वही घुड़सवारी और जंगलों और मैदानों में वही आवारागर्दी शुरू होजाती थी।

कभी दोनों पैदल ही निकल जाते और पहाड़ के घने जंगलों में आँख-मिचौली खेलते हुए घूमा करते थे। कभी सुभगा आम के बौर और जंगली चम्पे और पलाश के फूलों का मुकुट बनाकर शेखर को पहनाती थी। कभी शेखर भी नदी की बालू में से देवमुर्ति की माला के लिए शंख इकट्ठा करने में मदद देता था और कभी खुद ही माला तैयार कर सुभगा के हाथों में रख भी देता था।

कभी दोनों मिलकर पहाड़ों पर से ढोके लुढ़काते थे, तो कभी हरिणों की खोज में पहाड़ों, जंगलों और घाटियों में मारे-मारे फिरते थे। और जब

थककर चूर होजाते तो पहाड़ी की किसी ऊँची चोटी पर जामुन की शीतल छाया के नीचे लेटे-लेटे हरित वनराजि का मखमली फर्श, चाँदी के तार-सी झिलमिलाती नदियों और खिलौने-से लगते मकानों को देखा करते थे।

कभी चाँदनी रात में दोनों महल के पिछवाड़े के आम्रकुंज में जा बैठते और सुभगा वासुदेव के पराक्रम और अर्जुन की वीरता की ऐसी-ऐसी कहानियाँ सुनाती थी कि शेखर सब कुछ भूलकर उन दिलचस्प कहानियों में ही खो जाया करता था।

एक दिन इसी तरह सुभगा बैठी कहानियाँ सुना रही थी और शेखर लेटा सुन रहा था; कि वह एकाएक उठ बैठा और बोला—तू यहाँ से जा। मैं वँशी बजाऊँगा।

किसी की उपस्थिति में वंशी बजाना शेखर को अच्छा नहीं लगता था।

और उस दिन तीन पहर रात चढ़े तक सुभगा महल के एक झरोखे में बैठी शेखर की बंशी का स्वर सुनती रही। उसे लग रहा था कि नदी-नाले, जंगल-पहाड़, और समन्दर के भी पार दूर, बहुत दूर से एक नहीं अनेक जन्म-जन्मान्तरों की प्रणय कथा वंशी की उस टेर में गूँजती चली आरही है। उन स्वरों में शरीर और मन से भी परे कुछ था जो मूर्त होना चाहता था। विरहाकुल गोपियों के उन्मादपूर्ण नृत्य-सा नहीं, बल्कि मैथिलकुमारी के शान्त, निराकुल और मौन आत्म-समर्पण-सा वह कुछ धीरे-धीरे खिलती कलिका के सौरभ के समान रूप ग्रहण करता जारहा था, और वंशी का स्वर भी केवड़े की उग्र सुगन्ध-सा नहीं अपितु जुई की मन्द-मदिर सुवास-सा हवा में घुल-मिलकर उड़ता चला आरहा था।

दूसरे दिन सवेरे शेखर सोकर उठा तो उसने पाया कि शंख की वह माला उसके पैताने की ओर रखी है। यह सोचकर कि सुभगा भूल गई होगी वह माला लेकर उसके कमरे में गया; लेकिन सुभगा वहाँ नहीं थी। शायद अस्तबल में हो, यह सोच, उसने छज्जे में जाकर उधर निगाह

डाली, परन्तु वह वहाँ भी नहीं थी। तब वह उसे खोजता हुआ माँ के कमरे की ओर चला। रास्ते में पूजाघर के बाहर सुभगा बैठी चाँदी के एक थाल में पुजापा जमा रही थी। वह अभी ही स्नान करके लौटी थी। गीले बालों की बिखरी हुई लटें पीठ पर फैली थीं। लाल पाड़ की ढाका की सफेद रेशमी साड़ी उसने पहनी थी। कपाल में कुम्कुम् का टीका लगाया था। हाथ में दूध से सफेद हाथीदाँत की चूड़ियाँ पहनी थीं। शेखर ने उसका यह ठाठ-बाट देखा तो आश्चर्यचकित रह गया। रात भर में सुभगा बदल गई थी। क़द तो लम्बा नहीं हुआ था फिर भी पूजा घर के आगे बैठी वह सुभगा रात वाली सुभगा नहीं ही थी। रोज़ तो शेखर को देखते ही उसकी बकवास शुरू होजाती थी; परन्तु आज तो सिर उठाकर देखती तक नहीं थी।

शेखर ने सोचा, रात में चले जाने के लिए कह दिया था इसलिए कहीं नाराज़ तो नहीं हो गई हो? थोड़ी देर वैसे ही खड़ा रहा लेकिन जब सुभगा ने कोई ध्यान नहीं दिया तो बड़बड़ाने लगा—पता नहीं, आज सवेरे ही सवेरे किसका मुँह देखा है जो अभीतक नहाने-धोने का भी ठिकाना नहीं लगा। न पानी का पता है न दतौन का। अपनी पूजा की तैयारी होगई तो समझ लिया कि दूसरों के भी सब काम पूरे होगये होंगे। पता नहीं किसका मुँह देखकर उठा हूँ आज?

'किसका मुँह देखा था?'

एक सर्वथा अपरिचित-सा स्वर सुनकर शेखर विस्मय विमूढ़ ही रह गया। रातभर में अवश्य ही कोई बड़ा भारी परिवर्तन होगया था। लेकिन वह परिवर्तन उसकी समझ में नहीं आरहा था। इतना वह अवश्य समझ गया था कि अभी कलतक वह जिस सुभगा के साथ हँसी-मज़ाक और धौल-धप्पा करता रहा है, वह सुभगा यह नहीं थी। यह तो कोई कुलकन्या मालूम पड़ती थी जिसके साथ बोलने-बतलाने में शिष्टाचार और उचित-अनुचित का पूरा-पूरा खयाल रखना होगा।

'किसका मुँह देखा था आज ? मेरा तो नहीं ?' उसने फिर से पूछा और खिलखिलाकर हँस दी। वह नित्य की सरल और प्रसन्न हँसी सुनकर शेखर के जी में जी आया। उसने पूछा—आज घुड़सवारी के लिए नहीं चलना है ?

'नहीं, आज मेरा गौरी का व्रत है। और अब घुड़सवारी बन्द करदी।'

'क्यों ?'

'माँ ने मना कर दिया है।'

'मना क्यों कर दिया ? मैं जाकर कहता हूँ माँ से।'

'मत कहो। स्वयं मेरा मन भी नहीं है।'

'वाह, कैसा मन है ? रातभर में ही बदल गया ?

'हाँ, बदल ही गया समझो। आदमी का मन जो ठहरा बदलता ही रहता है।' उसने हँसकर कहा।

'अच्छा भई, तुम मत चलो, पर मुझे तो जाना ही होगा।' और वह जाने लगा।

'ज़रा सावधानी से जाना।' सुभगा ने कहा।

परन्तु शेखर को लगा कि सुभगा मज़ाक उड़ा रही है। इसलिए उसने भी हँसकर व्यंग-बाण छोड़ा—सावधानी तो तुझे रखना है। देखना, कहीं पीठ पर हन्टर न पड़ जाय।

साँझ को उसने देखा कि सुभगा घी का दीया जलाये गौरी पूजन कर रही थी। उसने पूछा—किसकी पूजा कर रही हो ?

'पार्वती की।'

'क्या फल मिलेगा ?'

सुभगा ने मुस्करा कर कहा—अच्छा घर और अच्छा वर मिलेगा और पति की उमर बढ़ेगी।

'कोई ढूँढ़ रखा है क्या?' शेखर ने हँसकर पूछा।

'हाँ।'

'कौन है? कैसा है?'

'बड़ा सुन्दर है। तुमसे भी ज्यादा रूपवान है। लेकिन बुद्धि थोड़ी कम है।'

'नाम क्या है?'

'जाओ, माँ के पास जाओ। ताड़ से लम्बे होगये पर अभीतक इतनी तमीज़ भी नहीं आई कि एक हिन्दू की कन्या से कौनसा सवाल पूछना चाहिये और कौनसा नहीं?'

यह फटकार सुनकर शेखर हक्का-बक्का रह गया। बेचारे की समझ में ही नहीं आया कि सुभगा का गुस्सा बनावटी था। आगे कुछ पूछने की उसकी हिम्मत न हुई। पिटे हुए बच्चे की तरह वहाँ से खिसक गया और जाकर माँ से पूछा—क्यों माँ, क्या सभी लड़कियों के लिए शादी करना आवश्यक ही है?

'नहीं तो।'

'फिर सुभगा व्रत-पूजन का यह क्या तमाशा ले बैठी है?' उसने चिढ़े हुए स्वर में कहा—और शादी करना ही हो तो घुड़सवारी कहाँ बाधक होती है? तूने मना क्यों कर दिया?

देवकी समझ गई कि शेखर को ज़रूर ग़लतफ़हमी होगई है। बोली—मैं उससे पूछ देखती हूँ। और वहाँ से चली गई।

* * *

सुभगा की गौरी पूजा को डेढ़ साल बीत गया था। इस बीच दोनों के आपसी सम्बन्धों में काफी परिवर्तन भी होगया था। पहले के धौल-धप्प

बन्द होगये थे। बाल-सुलभ निश्चल और निर्व्याज हँसी में व्रीड़ा की लाली का पुट आमिला था। अब वह घुड़सवारी के लिए भी नहीं जाती थी। अखाड़े में जाना भी बन्द कर दिया था। देवकी के साथ झरोखे में बैठने लगी थी। चाँदमारी सीखती थी; परन्तु वह भी देवकी से ही, किसी दूसरे से नहीं। शेखर भी निरा नासमझ नहीं रह गया था इतना तो वह भी समझ गया था कि उसकी चिरकालीन संगिनी के और उसके बीच में यौवन ने आकर दीवाल खड़ी करदी है। बचपन के खेल-तमाशे, हँसी-खुशी, वाद-विवाद, रूठना-मनाना, अधिकार जताना-जतलाना सब कुछ पीछे छूट गया था। सुशील युवक-युवतियों के लिए शोभास्पद व्यवहार ही अब उनका आपस का व्यवहार था। कभी-कभी शेखर का मन विद्रोह कर बैठता। वह इन समस्त बाधा-बन्धनों को, शिष्टाचार के नियम-कानूनों को तोड़ फेंकना चाहता था। बचपन के उन समस्त अधिकारों को पुनः स्थापित करने के लिए व्यग्र हो उठता था। परन्तु यह सब करने का उसका साहस नहीं होता था।

दुपहर की वे कथा-गोष्ठियाँ भी अब बन्द होगई थीं। शेखर माँ की गोद में सिर रखकर सो भी नहीं सकता था। क्योंकि अब वह बालक नहीं रह गया था। और सुभी तो अब दीखती ही नहीं थी। उसके जिम्मे काम ही काम था। घर-गिरस्ती के खर्च का हिसाब मिलाने और माँ की तीर्थयात्रा की तैयारियाँ करने से ही उसे अवकाश नहीं मिल पाता था। इसलिए दुपहर में वह ड्योढ़ी पर सोहनसिंह के पास जा बैठता और उनकी बातें सुना करता था।

लेकिन अब वहाँ भी उसका मन नहीं लगता था। इन पाँच वर्षों में उसने सोहनसिंह के मुँह से वही-वही बातें अनेकोंबार सुनली थीं। उनसे जो कुछ सीखना था, इन पाँच वर्षों में अच्छी तरह सीख लिया था। उसकी शिक्षा पूरी होगई थी। पन्द्रह दिन पहले ही उसकी अन्तिम परीक्षा भी होचुकी थी। गुरु के आशीर्वाद भी उसे मिल चुके थे। बन्दूक, कलम,

छुरी, लाठी सब में वह प्रवीण होगया था। अब तो शेष रह गई थी। भारतवर्ष की एक यात्रा। पिछले तीन-चार दिनों से माँ उसीकी तैयारियाँ करवा रही थी।

इस समय आम्रकुंज में अकेला बैठा शेखर यही सब सोच रहा था कि माधवी ने आकर कहा—चलो, रानी माँ ने बुलाया है।

अपने कमरे में मसनद लगाये देवकी बैठी थी। पिछले पाँच—छह वर्षों में उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। मुँह पर वैसा ही तेज था। अब नारीत्व की उस जाज्वल्यमान आभा में मातृत्व की स्निग्ध किरणों का समावेश भी हो गया था। और देखने वालों को उसमें कृष्णासखी पाँचाली के साथ ही साथ रघुवीर-जननी कौशल्या के भी दर्शन होते थे।

'ऐसा लगता है कि अब तेरा बिठुर जाना नहीं हो सकेगा।'

बिठुर उन दिनों भारतवर्ष की राजनैतिक हलचलों का केन्द्र था। राजनीति निपुण पेशवा सरकार के वंशावतंस नानासाहब पेशवा के दरबार में हिन्दुस्तान के कोने-कोने से युद्ध-विद्याविशारद, कूटनीतिज्ञ, वेदशास्त्र के ज्ञाता और रणनीति कुशल नरपुंगवों का आना जाना लगा रहता था। युद्ध-विद्याविशारद तात्यांटोपे, अश्व-परीक्षा में निपुण रावसाहब; अपने समय का अन्यतम राजनीतिज्ञ अजीमुल्ला, मराठी कूटनीतिज्ञता का अन्तिम प्रतिनिधि रंगो बापूजी आदि वहीं रहकर बिना किसी बाह्य आडम्बर के भारतवर्ष के भविष्य का नव निर्माण करने की योजनाएँ बनाया करते थे। यहीं से निजाम को खरीता भेजा जाता था कि वह दक्षिणापथ में आजादी का झण्डा बुलन्द करे। सिखों का प्रतिनिधि मण्डल सलाह-मश्विरे के लिए वहीं आता था। राजपूताना के राजा, गुजरात का गायकवाड़ दाभाडे, अयोध्या का चाणक्य अलीनकीखाँ, १८५७ के सिपाही विद्रोह का प्रसिद्ध वीर मौलवी अहमदशाह और रणचण्डी बेगम हजरतमहल आदि सभी बिठुर के राजमहल में मन्त्रणा के लिए इकट्ठा होते रहते थे। कमल के फूल और रोटी के

संकेत वहीं से सारे उत्तर हिन्दुस्तान की फौजी छावनियों में भेजे जाते थे। गुप्तचरों का आना-जाना लगा ही रहता था। हथियार और बारूद-गोला इकट्ठा किया जारहा था। सारी तैयारियाँ होचुकी थीं। सिर्फ पेशवा सरकार द्वारा अन्तिम निरीक्षण और दिल्ली के मुग़ल सम्राट के साथ उनकी मुलाक़ात होना शेष था। शीघ्र ही नानासाहब इसके लिए रवाना होने वाले थे। नरसिंगपुर की रानी और राजकुमार की प्रतीक्षा की जारही थी। उन्हें जल्दी आने के लिए सन्देशा भेजा भी जा चुका था।

देवकी भी चुप नहीं बैठी थी। देशव्यापी क्रान्ति की पूर्व तैयारियों का परिचय उसे वासुदेव से मिल चुका था। उनको फांसी दिये जाने के पूर्व तांत्याटोपी और मौलवी अहमदशाह गुप्तरूप से उनसे मिलने आये थे। वासुदेव ने उस अन्तिम मुलाक़ात में उनसे जो कुछ कहा था वह देवकी एक क्षण के लिए भी भुला नहीं सकी थी।

'किसी राजा के भरोसे मत रहना। उनसे किसी तरह की कोई आशा भी मत रखना। मैं तीन राजाओं के सम्पर्क में आया हूँ। एक ने बाप का खून किया, दूसरे ने माँ को कैद किया और तीसरे ने सगे भाई को मर जाने दिया.' यहाँ देवकी की ओर देखकर वह आगे बोले—कोई ठिकाना नहीं कि ऐसा कोई राजा कब दग़ा देजाय। इसलिए फौजी छावनियों में घूमते रहना। सैनिकों से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखना। जिस दिन सैनिक हमारे साथ आजाएँगे समझ लेना उस दिन फिरंगियों के राज की नींव उखड़ गई है। ये सैनिक जंगल काटने वाली कुल्हाड़ी की बेंट हैं। लेकिन जल्द-बाजी मत करना। कच्चा फल तोड़ने की कोशिश मत करना। फल पकने तक प्रतीक्षा करना। जब बग़ावत शुरू होजाय तब एक बात का खयाल रखना। किसानों को परेशान मत करना। उनके साथ लूट-मार मत करना। नेपाल की आशा छोड़ देना। वह तटस्थ रहेगा। न हमारी मदद करेगा न उनकी। अगर जीत हमारी हो तो एकबार यूरोप जाना। वहाँ साइप्रस-द्वीप को मेरी ओर से शत-सहस्र प्रणाम करना। क्योंकि वहाँ घर-द्वार, और

कुटुम्ब-परिवार की सारी ममता-माया छोड़कर एक जन-नायक रहता है जिसकी प्रथम और अन्तिम अभिलाषा दुनियाभर की समस्त पराधीन जातियों को स्वतंत्र देखना है।'

देवकी को इसका एक-एक शब्द याद था। वासुदेव के बाद उसने उनके बचे-खुचे तमाम अनुयायियों को इकट्ठा किया और उन्हें हिन्दुस्तान के कोने-कोने में विप्लव का शंख बजाने के लिए भेज दिया था! वह स्वयं तो नरसिंगपुर से बाहर निकलने में असमर्थ थी; लेकिन बिठुर, बनारस, मेरठ, कोल्हापुर, हैदराबाद आदि जगहों से दूतों और गुप्तचरों का उसके यहाँ तांता लगा ही रहता था। सारा देश हर्बो-हथियार से लैस होगया था। मेले-ठेलों में, तीर्थक्षेत्रों और फौजी बारकों में, उत्सव-समारम्भों और यज्ञ-यज्ञादिकों में अखाड़ों और विद्यापीठों में सर्वत्र सशस्त्र क्रान्ति का सन्देश पहुँच चुका था। राष्ट्र के चारण और बन्दीजन, कवि और गायक आसन्न क्रान्ति के गीत गाने लगे थे। हिन्दू और मुसलमान, राजा और प्रजा, उत्तर और दक्षिण हिन्दुस्तान की सारी जनता फिरंगियों के खिलाफ एक होगई थी। अब तो सिर्फ केन्द्रों का निरीक्षण कर विद्रोह शुरू करने का दिन निश्चित् करना बाक़ी रह गया था।

देवकी उसीकी तैयारियों में लगी थी। तांत्या साहब ने शेखर की माँग की थी और उसने उसे उनके हवाले करने का निश्चय भी कर लिया था।

शेखर भी परिस्थिति से अनभिज्ञ नहीं था। वह अकसर फौजी छावनियों में आता जाता रहता था और वहाँ उसने आसन्न विद्रोह की चर्चाएँ होते सुनी थीं। पिछले एक साल से माँ का सारा पत्र-व्यवहार भी उसी के जिम्मे था। देवकी देश के प्रख्यात व्यक्तियों के नाम उसीसे पत्र लिखवाती थी। बीच-बीच में उससे राय भी पूछती जाती थी। बिठुर जाने की बात सुनकर शेखर को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। खाली बैठे बैठे वह उकताने

लगा था। नई जगह देखने और नये काम करने की आशा ने उसमें नई उमंगें पैदा करदी थीं। लेकिन अब वहाँ जाना नहीं मिलेगा!

'क्यों?'

'जानसन का पत्र आया है। इतना ही लिखा है कि फिलहाल हम अपनी यात्रा स्थगित करदें। विशेष मिलने पर बतलाएगा। आज शाम को मिलने आरहा है। उसे ज़रूर भनक लग गई है।'

'वह तो पूरा गीध है, मीलों दूर से उसे गन्ध आजाती है।'

शाम को जानसन आया। उसने अपना वचन पूरी तरह निभाया था। उस दिन की घटना के बाद वह एकबार भी राजमहल में नहीं आया था।

'मेरा खयाल है कि हमारी अन्तिम मुलाक़ात की कड़ुवाहट अबतक आपके मन से दूर होगई होगी।'

'वह बढ़ने नहीं पाई है।' चिक की आड़ में बैठी देवकी ने जवाब दिया।

'मैंने सुना है कि आप यात्रा करने जारही हैं। राजकुमार भी साथ जारहे हैं। लम्बी यात्रा का आयोजन है। साल-छह महीने लग जाएँगे और यह भी संभव है कि इस ओर लौटना न भी हो।'

'ऐसा तो कुछ नहीं है। परन्तु यात्रा में साल-छह महीने तो लग ही सकते हैं।'

'हिमालय-क्षेत्र जाएँगी?'

'इच्छा तो पहले काशी-विश्वनाथ के दर्शनों की है। वहाँ से प्रयागतीर्थ, गया, वैद्यनाथधाम और कालीघाट होते हुए मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार और कुरुक्षेत्र जाऊँगी।'

'कुरुक्षेत्र?'

'वहाँ समतपंचक तीर्थ है। भगवान परशुराम ने वहीं पितृ-तर्पण किया था।'

जानसन थोड़ी देर चुप रहा। ऐसा लगता था कि वह मन ही मन हिसाब लगा रहा हो। फिर बोला—मैं चाहता हूँ कि आप राजकुमार को यहीं छोड़ जाएँ।

'यह कैसे हो सकता है? श्राद्ध-तर्पण आदि सभी क्रिया-कर्म तो वही करेगा।'

'परन्तु कम्पनी सरकार राजकुमार को राज्याभिषेक से पहले दो साल नालदुर्ग में रखकर सैनिक शिक्षा देना चाहती है।'

'सैनिक शिक्षा तो उन्हें मिल ही चुकी है। मुन्शीजी से आवश्यक नियम-क़ानून का अध्ययन भी कर लिया है।'

'तलवार-बल्लम चला लेना भी कोई सैनिक शिक्षा है, महारानीजी! हमारा इरादा उन्हें कम्पनी-सरकार के एक सेनापति के उपयुक्त सैनिक शिक्षा देने का है।

'लेकिन अभी तो मैं राजकुमार को छुट्टी नहीं दे सकती। सालभर बाद देखा जायगा।'

'मैंने अभीतक आपकी मर्ज़ी के खिलाफ कुछ नहीं किया, लेकिन दिखता है कि अब मजबूर होकर आपको नाराज़ करना पड़ेगा।'

'क्या माँ की अनुमति के बिना ही उसके पुत्र को ले जाओगे?'

'शायद यही करना पड़े।

'माँ से उसके बेटे को जबरदस्ती छीन ले जाओगे?'

'बेटे के हित में शायद वह भी करना पड़े।'

'और यही तुम्हारा, तुम्हारी कम्पनी सरकार का न्याय है?'

'यही न्यायोचित भी होगा रानी साहिबा। यदि भावी राजा की शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं किया गया तो कम्पनी सरकार जनता के प्रति

अपने उत्तरदायित्व से विमुख होगी कोई भी समझदार माँ इसमें रोड़े अटका कर अपने बेटे का अहित नहीं चाहेगी ।'

देवकी ने ज़रा नाराज़ होकर कहा—वहाँ ले जाकर जो कुछ सिखलाना चाहते हो सो मैं जानती हूँ । भक्ष्य-अभक्ष्य खिलाकर उसे धर्म-भ्रष्ट कर दोगे । कुल-शील की मर्यादा छुड़वाकर अपने जैसा ही कठोर हृदय बना दोगे ।

'मैं महारानी साहिबा को विश्वास दिलाता हूँ कि राजकुमार की इच्छा के विरुद्ध उनके धार्मिक मामलों और आचार-व्यवहार में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं किया जायगा और न कोई प्रतिबन्ध ही लगाया जायगा ।'

'तुम्हारी बात का भरोसा ही क्या ? मैं अपने बेटे को इसाई बनाने के लिए नहीं भेज सकती । मैं जिन्दन जैसी मूर्ख नहीं हूँ कि जानते-बूझते हुए अपने बेटे को गँवा दूँ । दिलीप के साथ तुमने जो कुछ किया वह मैं अपने बेटे के साथ होने देना नहीं चाहती ।'

'यह बिलकुल झूठ है कि महाराजा दिलीपसिंह को इसाई बनाया गया । हमें बदनाम करने के लिए हमारे दुश्मनों ने अफवाहें उड़ा रखी हैं । फिर आपकी ये सब शंका-कुशंकाएँ व्यर्थ हैं । कम्पनी सरकार तो राजकुमार को एक योग्य राजा बनाना चाहती है । इसीलिए उन्हें नालदुर्ग ले जाने की बात है ।'

'योग्य राजा बनाने की झूठी बात क्यों कर रहे हो साहब ? साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि तेरे इकलौते बेटे को, तेरे जीवन के आधार-स्तम्भ को तुझसे छीनना चाहते हैं ? उसे धर्म-भ्रष्ट कर गिर्जाघर में बप्तिस्मा पढ़ाना चाहते हैं ? ताकि पूरी तरह से निर्भय होजाएँ ! साफ क्यों नहीं कहते ? बेकार की गोलमोल बातों में मुझे क्यों उलझा रहे हो ?'

'आप उत्तेजित होगई हैं । इसीलिए इस तरह की असम्बद्ध बातें कह रही हैं । कम्पनी का मन्शा साफ है । प्रजा-हित को मद्देनजर रखते हुए

कम्पनी राजकुमार को योग्य राजा बनाना और उसके लिए आवश्यक शिक्षा देना चाहती है।' जानसन बारबार वही एक बात दुहराता रहा।

'रहने दो तुम्हारी सत्यानाशिनी शिक्षा। नहीं पढ़ाना चाहती मैं अपने बेटे को। लाख प्रयत्न करो पर मुझे विश्वास नहीं होता। मैं तो ले ही जाऊँगी उसे अपने साथ।'

'आपकी तबियत ठीक नहीं मालूम देती। अच्छा, रहने दीजिये अभी इस सारी बात को। जल्दी में कोई निर्णय कर बैठना ठीक न होगा। मेरे जाने के बाद ठण्डे दिल से सोचियेगा। मुझे विश्वास है तब आप भी मेरी बात से सहमत हो होंगी। यह कहकर जानसन चला गया।

रानी भी अपने कमरे में जाकर बिस्तरे पर लेट गई और पड़ी-पड़ी सोचने लगी। यह बिन बादल की गाज थी जो अप्रत्याशितरूप से उसके सिर पर आटूटी थी। उसे दुःख इस बात का नहीं था कि वह शेखर को अपने साथ यात्रा में नहीं ले जासकगी या उसे बिठुर नहीं भेज सकेगी। दुःख तो यह था कि बेटा ही हाथ से निकल जायेगा। और इसी डर से वह शिकारी के आगे पड़ी चिड़िया की तरह काँपने लगी थी। महाराणा रणजीतसिंह की रानी ज़िन्दन का किस्सा हिन्दुस्तान के हर आदमी की जबान पर था। किसतरह अंग्रेज़ उसके बालक दिलीपसिंह को उससे छीनकर ले गये, पादरियों के हवाले किया, धीरे-धीरे गो-माँस खिलाया, शराब पीना और अंग्रेज़ी नाच सिखलाया और कैसे एक दिन वह विलपती-कलपती माँ की सारी अनुनय-विनय को ठुकराकर इसाई बन गया। रानी ने यह सारा किस्सा सोहनसिंह के मुँह से सुना था। पत्थर को भी पिघलाने वाली काशीवासिनी उस भग्न-हृदया राजमहिषी की यह करुण कहानी सुन देवकी फफक-फफक कर रो उठी थी। उस रात वह क्षणभर के लिए भी सो न सकी थी। हजारों कोस का फासला होते हुए भी उस सन्तान परित्यक्ता, निराधार माता के दुःख से दुःखी देवकी के हृदय में शूल-से चुभते रहे। यदि उसका वश चलता तो वह उसी वक्त दौड़ी जाती। उस अभागिनी को छाती से लगा

लेती। सारी दुनिया छानकर उसे उसके खोये बेटे-सा बेटा ला देती और उसके असीम दुःख को हलका कर देती।

आज वही दुःख तूफानी समुद्र की विकराल लहरों-सा मुँह बाए उसे लीलने चला आरहा था। उससे बचने के लिए वह क्या करे, कहाँ जाये? न तो उसके पास नौका है, न कोई सम्बल ही। और, तिनके का सहारा भी नहीं है और तैर कर पार जाने का साहस भी वह खो बैठी है। क्या करे? कैसे उस दुःख से पार पाये? उसे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। वह चुपचाप आँखें फाड़े छत की कड़ियाँ गिनने लगी। पास की कोठरी में शेखर और सुभगा बातें कर रहे थे। देवकी के कानों में उनके वार्तालाप की अस्पष्ट-सी आवाज़ आरही थी। शेखर कह रहा था—मैं उनके फन्दे में कभी नहीं फँसने का, फिर माँ व्यर्थ ही क्यों बेचैन होरही है?

'इन्हें ज़रूर टोह लग गई है।'

'मेरा खयाल तो ऐसा नहीं है।'

'तो क्या तुम्हारे वहाँ जाने में कोई हानि नहीं है?'

'हानि तो बहुत होगी, लेकिन गये बिना कोई चारा भी नहीं है। यदि मैं नहीं जाता, तो तुम लोग भी यात्रा पर नहीं जासकती।'

'चलो, भाग चलें।'

'वह भी संभव नहीं है। ज़रा नीचे देख। पहरेदार बदले जारहे हैं। सरदारजी के बदले गोरी पलटन का पहरा लगा दिया गया है।' उसने पहरेदारों की अदला-बदली की बात बतलाई।

'इसका तो यह मतलब हुआ कि हम कैद कर लिये गये।'

'हाँ, जबतक मुझे जाने की इजाजत नहीं दोगे, कैद ही समझो। इजाजत देते ही पहरा उठ जायगा। तभी तुम लोग यात्रा पर जासकोगी, अन्यथा नहीं। यात्रा में मैं साथ हूँ या न हूँ, पू तो मां के साथ रहेगी

ही। फिर मेरी ऐसी आवश्यकता ही क्या है? व्यर्थ का आग्रह कर उनके सन्देह की पुष्टि क्यों की जाय?'

'लेकिन माँ का डर तो दूसरा ही है। कहीं तुम्हें इसाई न बनालें।'

'तुझे तो डर नहीं है न सुभी? तू तो मेरा विश्वास करती है न?'

'तिलमात्र भी नहीं।' मृदु-मन्द हास्य की ध्वनि सुनाई दी।

'जो प्रतिज्ञा तूने और माँ ने की है वही प्रतिज्ञा मैंने भी की है, इसे क्यों भूलती हो? फिरंगियों की गुलामी से इस देश को मुक्त करने की मेरी प्रतिज्ञा भी यदि तुम्हारे दिलों में मेरे प्रति विश्वास पैदा नहीं करती तो फिर पानी में डूब मरने के सिवा मेरे सामने और कोई मार्ग नहीं रह जाता।'

'लेकिन नदी का पानी तुम्हें अपने अन्दर जगह दे तब न? हमारे सिवा तुम्हें और कोई चाहता ही कब है?'

लेकिन शेखर का ध्यान सुभगा के इस स्नेहपूरित व्यंग की ओर नहीं था। वह तो अपनी ही धुन में मस्त कहता चला गया—और मानलो कि मैं नालायक ही निकलूँ, माँ को मुझे खोना ही पड़े और मेरा नाम भी निःशेष होजाय; तो भी क्या हुआ? तू तो है माँ के समीप उनका साथ देने के लिए। और मानलो कि तू भी न रहे, तब भी क्या हुआ? क्यों माँ अपने संकल्प से विचलित हों? क्यों अपनी प्रतिज्ञा से डिगें? जिस आज़ादी को लाने का प्रण किया है, जो क्रान्ति होरही है क्या वह तेरे और मेरे लिए है? हम होंगे तभी वह होगी नहीं तो नहीं? क्या हमारे ही सर मौर बंधने वाला है? नहीं, क्रान्ति तो हम कर रहे हैं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।

सुभगा ने भी कहा—बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।

शेखर आगे बोला—तो किसी के स्नेह के कारण हम दुर्बल क्यों बनें? क्यों अपने संकल्पित पथ से पीछे हटें? माँ-बाप, बेटा-बेटी सभी को स्वाहा

करना होगा इस यज्ञ में। सभी इस यज्ञ की समिधा हैं। अगर वे स्वेच्छा से आते हैं तो उस यज्ञ के होता हँसते-हँसते मृत्यु को गले लगाएँगे। पर मानलो कि वे साथ आने से इन्कार करते हैं, समिधा नहीं बनना चाहते हैं तो हमारा अपना शरीर तो है न? हम इसी को स्वाहा करेंगे। जबतक हमारे शरीर में प्राण है हम मुक्ति-यज्ञ को अधूरा क्यों छोड़ें?

हर्षातिरेक से देवकी की छाती भर आई। उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह चलीं। भले ही अंगरेज़ों ने उसका अपमान किया हो, भले ही महारानी का सम्मान उसे न मिला हो, भले ही इतिहास के पृष्ठों में उसका नाम न लिखा जाय, पर इस जन्म में एक, केवल एक ही ऐसी सन्तान पाकर उसका जीवन धन्य होगया था। उसका मातृत्व सफल हुआ था। क्रान्ति के ऐसे सच्चे पुजारी को उसने जन्म दिया था। नौ महीने अपने उदर में उसका पालन-पोषण किया था। इससे अधिक कोई माँ कोई नारी और क्या चाहेगी? उसे लगा कि आज वह कृतकृत्य होगई। अब उसके जीवन में और कोई अभिलाषा शेष नहीं रह गई थी। उसने कृतार्थ होते हुए मन ही मन कहा—अद्य मे सफलं जन्म, अद्य मे सफला क्रिया।

२

सुभगा शेखर का सामान बाँध रही थी। बचपन से दोनों साथ रहे थे। साथ खेले-कूदे और साथ बड़े थे। बीच में तीन साल के लिए सुभगा अपने पिता के साथ कहीं चली गई थी। आज उसके पाँच साल बाद शेखर जारहा था। सुभगा हिम्मती थी। विपत्तियों के सामने झुकना वह जानती ही नहीं थी। परन्तु आज शेखर का सामान सहेजते समय बार-बार उसकी आँखों में आँसू उमड़ आते थे। साथ में रखना कुछ चाहती थी पर कुछ और ही रख देती थी। बाँधना कुछ और चाहती थी पर बँध कुछ और ही जाता था।

कल्पना और वास्तव में जमीन-आस्मान का अन्तर होता है। युद्ध की कल्पनाओं में मस्त रहने वाला महारथी अर्जुन युद्ध की बात निकलते ही गांडिव की प्रत्यंचा खींचकर टङ्कार किया करता था। लेकिन कुरुक्षेत्र की रणस्थली पर युद्ध का साक्षात्कार होते ही उस अर्जुन के हाथ-पाँव फूल गये, पसीना आगया और गांडिव हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा। कल्पना काग़ज़ का फूल है, जिसमें न रस है न सुगन्ध। रोज़-रोज़ काग़ज़ के फूलों को देखकर भी रस और गन्ध की अनुभूति नहीं होती, परन्तु असल के फूलों को देखते ही मन चंचल हो उठता है। कल्पना और वास्तव में भी इतना ही फर्क होता है। शेखर की जुदाई और हँसते-हँसते उसे सह लेने की कल्पना सुभगा के लिए हँसी-खेल थी, लेकिन जब वही घड़ी वास्तविक होकर सामने आई तो उसका साहस छूट चला, हाथ-पाँव फूलने लगे।

मनुष्य बहुत ही निर्बल प्राणी है। ज़रा-सी आँच लगते ही पिघल जाता है। ऋतुओं का परिवर्तन, झंझा के झोंके, आकाश का उच्च वितान सभी कुछ उसे आन्दोलित कर देते हैं। और थोड़ा-सा स्नेह पाते ही पानी-पानी होजाता है। उससे तो पत्थर अच्छे जिनके अभ्यन्तर को न ठण्ड ठिठुरा सकती है न धूप तपा सकती है, न वे हवा में उड़ते हैं न पानी में गलते हैं। और एक आदमी है। पाँच आयुध बाँधकर जारहा है लड़ने पर आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग रही है। बड़ी-बड़ी बातें करता है, कहता है—मौत से भिड़ने जारहा हूँ, परन्तु देहलीज से बाहर निकलना जी पर आजाता है उसके।

सुभगा भी ऐसी ही निर्बल मनुष्य थी। सामान बाँधती जाती थी और आँसू बहाती जाती थी। बार-बार स्नानघर में जाकर मुँह धोती पर आँखें शेखर की ही तरह हठीली और बेशर्म होगई थीं। और रो-रोकर लाल हो आई थीं।

राजशेखर सारे दिन गायब रहा। दिखाई ही नहीं दिया। अपनी कोठरी में मुँह छिपाये पड़ा रहा। न उसने साथ लेजाने वाले सामान की फेहरिस्त देखी न किसी से कुछ कहा-सुना ही।

जीवन में आज पहलीबार माँ से जुदा होरहा था। जहाँ जाना था वहाँ की रत्तीभर भी जानकारी उसे नहीं थी। कह नहीं सकता वहाँ कैसा व्यवहार किया जायगा? अपमानित होना पड़ेगा या विश्वासघात किया जायगा, वह नहीं जानता! संभव है मान-सम्मान भी मिले, परन्तु इतना तो निश्चित् है कि सब कुछ होते हुए भी वहाँ सुभगा नहीं होगी। क्षणभर के लिए उसके मन में आता था कि क्यों न तीनों यहाँ से भाग जाएँ। लेकिन भागने से कोई लाभ न था। उलटे सन्देह की पुष्टि होती। और अभी तो विद्रोह भी शुरू नहीं हुआ था इसलिए भागने का कोई उपयोग भी न होता। फिर सोचता था, जबर्दस्ती तो कोई उसे इसाई बना नहीं सकता। उसकी और अपनी जान एक कर देगा हथियार न हों परन्तु परमात्मा के

दिये हुए दो हाथ तो थे ही। उन्हीं से लड़ेगा फिर कौन जानता है, जानसन का कहना ही ठीक हो। सच ही, उसे अंग्रेज़ी कायदे-कानून पढ़ाना चाहता हो। अंग्रेज़ी पढ़ना बुरा तो नहीं है। बुरा होता तो गुरुवर्य वासुदेव क्यों पढ़ते? वह तो इस विद्या में अंग्रेज़ों को भी मात देते थे। फिर कौन था जो उसे रोक रहा था? सुभगा तो नहीं रोक रही थी?

सुभगा उसकी कौन होती थी? आज से पहले भी अनेकबार अनेक तरह से उसने इस प्रश्न पर विचार किया था परन्तु वह कोई समाधान-कारक उत्तर नहीं खोज पाया था। किस अधिकार के बलपर वह उसकी राह रोके खड़ी थी? परन्तु उसे कोई जवाब नहीं मिलता था। सुभगा दोनों हाथ फैलाये मौन खड़ी रहती। जैसे बोलना जानती ही न हो। चेहरे पर वही सरल, लुभावनी और अनिर्वचनीय आनन्द देनेवाली हँसी लिये। और उस हँसी के आगे शेखर का सारा क्रोध मोम की तरह गलकर बह जाता था। आज दिनतक शेखर को अपने उस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला था। और सुभगा अपनी उसी हँसी द्वारा कहती रहती थी—प्रश्न के उत्तर की आवश्यक्ता ही क्या है? मैं तेरी कौन हूँ, तुझपर मेरा क्या अधिकार है इस प्रश्न का उत्तर इतनी संध्याओं और तारों भरी इतनी रातों के बाद भी पूछना शेष ही रह गया है? जिस बात को जंगल-पहाड़, नदी-नाले, झाड़-फूल सभी जानते हैं क्या उसे तू उसका सर्वज्ञ होकर भी नहीं जानता?

लेकिन जो अपना है उसकी आलोचना नहीं की जाती। आलोचना तो की जाती है पराये की। जो अपना है वह तो इस सारी छान-बीन से परे, अनुमति की प्रतीक्षा किये बिना और बिना कोई सूचना दिये ही अन्दर चला आता है। अधिकार का दान लेकर वह अन्दर नहीं आता। अपने स्वाभाविक अधिकार से प्रवेश कर वह अपने लिए रखे सिंहासन पर आसीन होजाता है।

सुभगा भी इसी अधिकार के बलपर उसकी अपनी थी। और ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जो इस एक सत्य को मिथ्या कर पाती।

साँझ का अँधेरा कमरे में घिर रहा था और शेखर अकेला बैठा इसी-तरह की बातें सोच रहा था। उसी समय सुभगा दीया लेकर आई और एक आले में उसे ठीक से रखकर चली गई।

कल से कौन उसके अन्धेरे प्रकोष्ठ में इसतरह दीप संजोयेगा? कौन अपने सलोने हाथों से उसकी चादर बिछायेगा? जब अन्धकार घिर रहा होगा दीपशिखा की तरह प्रगट होकर कौन घर के चारों कोनों को प्रकाश-पूरित करेगा? कल से तो इस अति निकट के प्रियजन की मूर्ति ही आँखों से ओझल होजायेगी और गोधूलि-वेला में उसकी एक झलक देखने के लिए क्षितिज तक दृष्टि डालकर भी निष्फल ही रहना होगा। सन्ध्या-वेला में जब घर-घर दीप उजाले जायेंगे उसके अपने कक्ष में या तो निबिड़ अन्धकार रहेगा और झिल्लियों की झनकारें सुनाई देंगी या मशाल-सी ज्योति का कोई दीया चट्-चट्कर जलता होगा; परन्तु नयी बाती की, बिना गुल की धुले प्रकाश-सी स्निग्ध आभा वाली दीपशिखा वहाँ नहीं ही होगी।

हवा का एक ज़ोर का झोंका आया और दीया बुझ गया। लेकिन उसे फिर से जलाने का उसका मन नहीं हुआ। खिड़की से झाँककर उसने बाहर देखा तो केले के पत्तों के पीछे चाँद उग आया था।

बाहर से सुभगा की आवाज़ सुनाई दी—दीया बुझ गया है क्या?

'हाँ, बुझ तो गया है, परन्तु फिर से जलाने की ज़रूरत नहीं।'

लेकिन सुभगा भीतर आई और उसने दीया उजाल दिया। फिर उसके पलंग की पाटी के पास खड़े होकर बोली—आज क्या रात जागते ही बिताना है?

शेखर ने कोई जवाब नहीं दिया।

'बैठूँ?'

राजशेखर ने पाँव समेट लिये और उठकर बैठते हुए बोला—पूछने की ज़रूरत ही क्या थी? पाँवों को एक ओर धकेलकर बैठ जाती।

'तब तो तुम पीठ ही तोड़ देते !'

इतना डरती होती तो फिर बात ही क्या थी ? तू तो उलटे मेरे ही कान गरम करदे ।'

'पहले कर सकती थी। अब भी भगवान से मनाती हूँ कि ऐसी ही दुर्बुद्धि दें पर सच मानो, अब साहस नहीं होता। डर लगता है। मन में तो खूब होता है कि सब कुछ छोड़-छाड़कर तुम्हारे साथ चली चलूँ; पर माँ को किसके भरोसे छोड़ूँ ?'

'एक दिन तो छोड़ना ही पड़ेगा ?'

'क्यों छोड़ना पड़ेगा ?'

'पराई लड़की ठहरी। एक दिन पति के घर तो जाना ही होगा। उस दिन क्या करेगी ? तब तो माँ को छोड़ना ही पड़ेगा न ?'

सुभगा कोई जवाब नहीं दे सकी। पहले तो शेखर की बात ही उसकी समझ में नहीं आई। शेखर ने फिर कहा—अरे, तेरे गौरी पूजन का फल किसी दिन मिलेगा या नहीं ?

'क्या तुम भी सच ही ऐसा मानते हो कि एक दिन मैं तुम्हें और माँ को छोड़कर पराये के साथ चली जाऊँगी ?'

'इसमें मानना नहीं मानना कैसा ? लड़की है ही पराया धन। सभी जाती हैं तू भी जायेगी।'

यह तो मैं भी जानती हूँ; पर तुम किस आधार पर कह रहे हो कि मैं भी चली ही जाऊँगी ?' उसे बात लग गई थी इसलिए उसने ज़रा तेज़ होकर पूछा।

'इसमें आधार-प्रमाण की ऐसी जरूरत ही क्या है ? पर मैं पूछता हूँ कि यदि जायेगी नहीं तो क्या जनम-भर यहीं बैठी रहेगी ?'

क्यों न बैठी रहूँगी ? घर क्या अकेले तुम्हारा ही है ? माँ पर मेरा कोई हक़ नहीं ?'

'है क्यों नहीं ? इससे कौन इन्कार करता है ?'

'फिर जो मेरा है उसे छोड़कर भला मैं कहाँ जाऊँगी ?'

'तो गौरी पूजन क्यों किया था ? क्या वह महज़ दिखावा ही था ?'

'सो मैं क्या जानूँ ? औरतों का व्रत है। पति की आयुष्य और बुद्धि की वृद्धि के लिए सभी करती हैं, सो मैंने भी किया।'

'अरे, पहले पति तो ढूँढ़ लेती' फिर व्रत करती। यह भी क्या पागल-पन है ? बीज तो बोये नहीं और सिंचाई शुरू करदी ?'

'ढूँढ़ा क्यों नहीं ? तुम क्या जानो ? हमने तो कभी से ढूँढ़ रखा है ?'

राजशेखर का चेहरा फक-से रह गया। वह सुभगा की ओर देखता ही रह गया। उसका मन किसी गहरे अन्धकार में डूबने लगा।

'अच्छा यह तो बतलाओ कि तुमने भी किसी को ढूँढ़ा है या नहीं ?'

'मैं किसको ढूँढ़ता ?' उसने अन्यमनस होकर उत्तर दिया।

स्त्री को और किसे ?'

राजशेखर हँस दिया। इससे अधिक बेहूदा सवाल और क्या हो सकता था ?

'मैंने तो किसी स्त्री को देखा तक नहीं, फिर ढूँढ़ता कहाँ से ?' जहाँ चीज़ ही नहीं है वहाँ ढूँढ़ना कैसा ?'

'स्त्री को देखा तक नहीं ? सच कह रहे हो ?' और सुभगा टकटकी लगाकर शेखर का चेहरा देखने लगी। फिर मुँह छिपाकर हँस दिया और राजशेखर की शाल के साथ खेलने लगी।

'सिर्फ तुझे देखा है; पर क्या वह भी कोई देखना है ? बस, तुझे देखा ही देखा है।'

सुभगा अभीतक शाल के साथ खिलवाड़ कर रही थी। कुछ न बोली। शेखर ने ही फिर कहा— अब तू बतला।

'नहीं, मैं नहीं बतलाऊँगी।'

'बतलाना ही पड़ेगा। नहीं तो मुझसे क्यों पूछा ?'

'पर तुमने कहाँ बतलाया है ?'

'बतला तो दिया।'

'वैसे तो मैंने भी बतला दिया है।'

'सच, सुभी, मैंने तो तेरे सिवा और कोई स्त्री देखी ही नहीं। अब तू बतला।'

'तुम बड़े जिद्दी हो। तुम्हीं कहो, कैसे बतलाऊँ ? हिन्दू लड़की अपने पति का नाम लेती भी है ?'

'मुँह से नहीं ले सकती तो लिखकर ही बतलादे।' और राजशेखर कागज़-कलम लाने के लिए जैसे ही पलंग से उतरा उसने एक खिंचाव-सा महसूस किया। मुड़कर देखा तो पाया कि सुभगा ने अपनी साड़ी का पल्ला उसकी शाल के छोर से बाँध लिया था और मजे से बैठी हँस रही थी।

शेखर को किसी ने जैसे बिजली छुआदी हो। बोला—सुभगा, यह तूने क्या किया ?

'वही किया जो करना चाहिये था। अब बतलाऊँ अपने पति का नाम ?' फिर प्रेम से लबालब भरी आँखें शेखर की ओर उठाकर बोली—तुम्हारे जाने के पहले मैं इसका निश्चय कर लेना चाहती थी। यहाँ आओ !

शेखर उससे दूर पलंग की पाटी पर बैठ गया।

'वहाँ नहीं, यहाँ मेरे पास आओ। भागकर दूर भी कहाँ जापाओगे ?' उसने बँधी हुई गाँठ की ओर इशारा किया। जब शेखर उसके समीप आगया तो उसके हाथ में अपना हाथ रखते हुए बोली—कल से कोई मेरे कान में कह रहा है कि अब हम निश्चिन्त होकर नहीं मिल पाएँगे। इसी-

लिए मैं इस बात का स्पष्टीकरण कर लेना चाहती थी कि तुम जहाँ कहीं रहो तुम्हें याद रहे......'

उसका गला भर आया। उसने धीरे से आँसू पोंछ लिये।

इस सबकी क्या ज़रूरत थी सुभगा, मैं तो यों भी तेरा ही था न ?'

'ज़रूरत होगी तभी न मैंने किया।'

'पर तू जानती है न कि मैं बग़ावत करने जा रहा हूँ। पता नहीं वहाँ क्या हो ?'

'मैं कहाँ घर बैठने वाली हूँ। मैं भी वहीं जाऊँगी। पता नहीं वहाँ क्या हो ?'

शेखर ने हँसकर कहा—क्या माँ जाने देगी ?

'यदि माँ की 'हाँ' या 'ना' पर निर्भर करना होता तो उन्हीं के साथ गाँठ जोड़ती। तुम्हें क्यों पकड़ती ?'

'लेकिन माँ ने मना कर दिया तब ?'

'उस समय तुम एक अच्छे-भले लड़के की तरह कह देना—माँ, हम तो दूल्हा-दुलहिन का खेल खेल रहे थे।'

'ऐसी ऊटपटांग बातें क्यों कहती है ?'

सुभगा ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा—सीधी बात तुम्हारी समझ में कहाँ आपाती है ? यही खैरियत है कि सब कोई तुम्हारे जैसे मूरख नहीं होते।

शेखर के चेहरे पर खुशी नाच उठी। बोला—तेरी यह फटकार ही तो मुझे इतनी प्यारी लगती है सुभगा ! रोज पाँव पखारने और आरती उतारने वाली स्त्री मुझे नहीं चाहिये।

फिर बड़ी देरतक पुलकित होकर उसे देखता रहा, देखता ही रहा और तब आँखें बन्दकर बोला—मुझे अन्दर ही अन्दर यह डर खाये जारहा था

कि एक दिन सुभगा किसी पराये के साथ चली जाएगी, तब मेरा क्या होगा? पर तुझसे पूछने का साहस नहीं होपाता था।

'मेरे मन में तो एक क्षण के लिए भी ऐसा विचार नहीं आया। मुझे तो पक्का विश्वास था कि तुम मेरे हो और मेरे ही रहोगे। चाहे यहाँ रहो, चाहे बिठुर जाओ तुम और किसी के नहीं होसकते। दूसरे के साथ तुम्हारा निबाह हो ही नहीं सकता। इसलिए बन्दी तो निश्चिन्त थी।'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद वह फिर बोली—मेरे सम्बन्ध में तुम्हारे भी ऐसे ही विचार होना चाहिये। तुम्हें छोड़ मैं कहाँ जाती? जाती भी तो गंगा मैया को छोड़ मुझे और कहाँ शरण मिलती? मैं क्या कम ऊधमी हूँ?

फिर काफी देरतक चुप बैठ रही और उसके बाद बोली—सभी तो जानते थे कि मैं तुम्हारी ही पूजा करती हूँ। दास-दासी, सरदारजी, वन के पशु-पक्षी तक सभी तो जानते थे। क्या एक तुम्हीं नहीं जानते थे?

इसके बाद वह गाँठ छोड़कर उठ बैठी और बोली—चलूँ, देर होरही है। अभी तो बहुत-सा सामान बाँधना बाक़ी पड़ा है। दिनभर बाँधती रही फिर भी काम पूरा नहीं हुआ।

'चल, मैं भी साथ चलता हूँ।' और शेखर भी उठ बैठा।

जब दोनो दरवाजे के बाहर आगये तो सुभगा बोली—थोड़ा ठहर जाओ।

वह कमरे में जाकर दीया उठा लाई और उसे ऊँचाकर शेखर के कुन्दन-से दमकते चेहरे को देखती हुई बोली—पता नहीं सबेरे सबके सामने प्रकाश में ठीक से देख भी सकूँगी या नहीं; इसलिए अभी ही अच्छी तरह देखलूँ।

और तब स्नेहपुलकित कण्ठस्वर में मुस्कराते हुए उसने कहा—मैंने धोखा तो नहीं खाया है। गौरी ने प्रसन्न होकर मुझे रतन ही दिया है।

फिर फूँक मारकर दीया बुझा दिया और झट-से प्रणाम करे भाग गई।

शेखर

१

बुन्देलखण्ड की सीमा पर अवस्थित नालदुर्ग का पहाड़ी क़िला समुद्र की सतह से डेढ़हजार फुट की ऊँचाई पर था। वहीं नरसिंगपुर राज्य की उत्तरी सीमा समाप्त होती थी। क़िले के पीछे की ओर बबूल और दूसरे कटीले वृक्षों का घना जंगल था। इस जंगल के उसपार दुआबा की भूमि और आगरा, अयोध्या एवं प्रयाग के इलाक़े लगते थे। क़िले के तीन ओर सागौन के दरख्तों से ढका पहाड़ी प्रदेश था। इस पार्वतीय अञ्चल में आदिवासियों की बस्ती थी। वे जंगली दरख्तों को काटकर उसकी आमदनी से जीवन-यापन करते थे। नरसिंगपुर से नालदुर्ग आने के लिए इन्हीं पहाड़ों में होकर एक पगडण्डी बनी थी।

बुन्देलखण्ड में घुसते ही अंग्रेज़ों ने इस क़िले पर कब्जा किया और सैनिक चौकी के रूप में इसका उपयोग करते रहे। ऊँचाई पेर होने के कारण यहाँ की हवा अपेक्षाकृत ठण्डी थी। पास के जंगलों में शिकार खेलने की भी काफी सुविधा थी। इसलिए अंग्रेज़ों को यह जगह पसन्द आगई। वे गर्मियों की छुट्टियाँ भी यहीं बिताने लगे। इसके सिवा इस क़िले की एक उपयोगिता और भी थी। अपनी ऊँचाई और दुर्गमता के कारण यह क़िला दुर्भेद्य समझा जाता था। सारे बुन्देलखण्ड में बग़ावत होजाने पर भी जबतक रसद-पानी समाप्त न होजाता यहाँ के अंग्रेज़ अपने आपको सुरक्षित रख सकते थे।

मोटे तौर पर क़िले के दो हिस्से थे। एक ऊपर की गढ़ी और दूसरा नीचे का परकोटा। गोरी पलटन और उसके अफ़सर ऊपर की गढ़ी में रहते थे। हिन्दुस्तानी पलटन और काले अफ़सर परकोटे में रहते थे। तोपखाना और बारूद-गोला रखने की जगह भी नीचे परकोटे में ही थी। ये हिस्से जान-बूझकर नहीं किये गये थे। वास्तव में क़िले की बनावट ही इस ढंग की थी कि वह अपने आप दो हिस्सों में बँट गया था।

परकोटे और गढ़ी के बीच में एक डेढ़सौ फुट ऊँचा पहाड़ था। गढ़ी इसी पहाड़ पर बनाई गई थी और उसकी ऊँचाई तीस फुट के करीब थी। गढ़ी में प्रवेश करने का दरवाजा एक ऊँचे बुर्ज के निचले खण्ड में था। गढ़ी में जाने वाले को सबसे पहले बुर्ज के अन्धकारमय निचले खण्ड में जाना पड़ता था। वहाँ से दाहिनी ओर की सीढ़ियों द्वारा दूसरे खण्ड में पहुँचकर अन्दर मैदान की ओर लेजाने वाली सीढ़ियाँ उतरना होती थीं। उस मैदान में पहुँचने के लिए ये तीन दरवाज़े पार करना अत्यन्त आवश्यक था। तभी गढ़ी में प्रवेश किया जासकता था। गढ़ी का मुख्य दरवाज़ा और बाक़ी के दोनों दरवाज़े इतने छोटे थे कि उनमें होकर हाथी, घोड़े या बड़ी तोपें अन्दर नहीं जासकती थीं। गढ़ी के पीछे की ओर इस बुर्ज के ठीक सामने, एक ऐसा ही दूसरा बुर्ज था। लेकिन उस बुर्ज में जाने के लिए लोहे के एक पुल पर होकर जाना पड़ता था। असल में वह बुर्ज बारूदखाने के लिए बनाया गया था, इसीलिए उसे गढ़ी की खास दीवार से इतना दूर रखा था। इन दिनों उस बुर्ज में जनरल डेनियल का पुस्तकालय था। किताब हाथ में लेकर लोहे के डेढ़सौ फुट ऊँचे पुल पर होकर आने-जाने वाले जनरल को जंगल में लकड़ी काटने वाले लोग अकसर ही देखा करते थे।

क़िले का मुख्य प्रवेशद्वार एक ही था। वह नरसिंगपुर से आने वाली पगडण्डी की ओर बना था। परकोटे में एक छोटी खिड़की पिछवाड़े बबूल के जंगल की ओर भी बनी हुई थी, लेकिन कई वर्षों से वह बन्द करदी गई थी।

जनरल की ओर से कुछ मिशनरी आदिवासियों में प्रचार कार्य भी करते थे। उन लोगों में उन्होंने छोटे-छोटे अस्पताल और पाठशालाएं खोल रखी थीं। जनरल डेनियल बुन्देलखण्ड एजेन्सी के सबसे बड़े फौजी अफ़सर होने के साथ ही साथ रेसिडेण्ट भी थे। इसलिए हर महीने कुछ दिनों के लिए उन्हें झाँसी, ओरछा, नरसिंगपुर आदि रियासतों का मुआयना करने के लिए भी जाना पड़ता था। उनकी अनुपस्थिति में नरसिंगपुर कौन्सिल का प्रेसिडेण्ट जानसन फौज के इन्चार्ज अफसर की हैसियत से काम देखता था।

सैनिक अफ़सरों को शिक्षा देने के लिए वहाँ एक फौजी स्कूल भी था। जानसन ने अपनी देखरेख में राजशेखर को उसी स्कूल में भर्ती करने का निश्चय किया था।

जानसन खुद राजशेखर को अपने साथ लेकर नालदुर्ग आया था। गढ़ी में पहुँचने के बाद जनरल के बंगले की बाजू में दो छोटी-छोटी कोठरियाँ दिखलाते हुए उसने शेखर से कहा—यह है तुम्हारे रहने की जगह। राजशेखर ने अन्दर जाकर देखा: दोनों कोठरियाँ झाड़-बुहारकर पहले ही साफ कर दी गई थीं। एक कोने में पानी का मटका भरा रखा था। एक कोठरी रहने के लिए और दूसरी खाना पकाने के लिए थी। पहली में एक पलंग था और उसके सिरहाने की ओर शीशा टँगा गया था। दूसरी कोठरी में एक सिगड़ी और कोयले का थैला पड़ा था। दीवाल से लटक रहे लकड़ी के भूले पर धुले-मँजे बर्तन करीने से सजाये गये थे। दोनों कोठरियाँ इतनी छोटी थीं कि उनमें इससे ज्यादा सामान रखने की गुँजाइश ही नहीं थी। शेखर ने एकबार कोठरियों की ओर और दूसरीबार अपने साथ आये हुए सामान की ओर देखा। पूरा गाड़ीभर सामान था। माँ और सुभगा अन्त घड़ीतक सामान भरती ही गई थीं। 'दो गादियाँ तो होनी ही चाहिये, महाराजा की काश्मीरी शाल और तिब्बती कम्बल जरूर बाँधना। फर्श पर बिछाने के लिये बुखारा के दो कालीन रखना मत भूल जाना। पूजा के लिये वह ऊनी आसन साथ देना, जिसे तूने हाल ही में बुना है। दो

बड़े तकिये और कढ़ी हुई रेशमी गिलाफें तो रख ही दे। मिलने-जुलने वाले आएँगे तो उनके आदर-सत्कार के लिए पानदान होना ही चाहिये । वह लाल हीराकनी जड़ा पानदान भी रखदे ।' पहनने के लिए कई तरह की ऊनी, रेशमी, सूती और जरी की पोशाकें साथ दी थीं । पानी भरने के लिए पीतल की दो बड़ी बटलोइयाँ, चाँदी की थाली, कटोरे और ग्लास-लोटे भी साथ आये थे। दिवानखाने में रखने के लिए हाथी-दाँत के पाये-वाली एक छोटी-सी टेबल और ईरानी गालीचे वाला चाँदी मढ़ा सोफा भी भेजा था । एक पेटी में पाँच-सात जोड़ जूते थे। दूसरी पेटी दवा-दारू की थी। रोज़ दूध में डालने के लिए काश्मीर की बढ़िया केशर और जावित्री आदि मसाले की एक अलग पेटी थी । एक छोटा-सा इत्रदान भी था । इतना सब होते हुए भी देवकी को सन्तोष नहीं हुआ था। वह आखरी घड़ीतक सुभगा को यह या वह रखने और बाँधने का आदेश देती रही थी। और जब शेखर के चलने का वक्त आगया तो उसने कहा था कि बाकी बचा सामान किसी के हाथ भेज देगी । सच पूछा जाय तो स्वयं शेखर को भी इतना सामान ज्यादा या ग़ैर ज़रूरी मालूम नहीं हुआ था। वह विशाल महल में रहता आया था और उसका खयाल था कि नालदुर्ग में उसके रहने के लिए कमसे कम चार-छह कमरे और एक-आध दीवान-खाने वाला बंगला तो दिया ही जायगा । परन्तु वहाँ आकर क्या देखता है कि और तो और उसके बंगले में जूते रखने तक की जगह नहीं थी।

सबसे पहले उसने अपने हथियारों को सँभाला । जो बहुत से हथियार वह साथ लाया था उनमें से एक छह चेम्बर की लम्बी नाली वाली बन्दूक, सातफेर का एक रिवाल्वर, एक किरच, साँप की जीभ-सी लपलपाती एक बढ़िया तलवार और एक मजबूत मिर्जापुरी लाठी रखली और उन्हें पलंग के पास वाली अल्मारी में रख दिया। पलंग पर दरी बिछाई और सिरहाने तिब्बती कम्बल रखा। पिता की काश्मीरी शाल भी रखली। जो दो-चार पेटी कपड़े साथ आये थे उनमें से चार जोड़े सैनिक वर्दी और दो ओवरकोट निकाल लिये ।

फिर दर्वाज़े पर जो बूढ़ा अर्दली खड़ा था उससे पूछा—क्यों बाबा, मेरे नौकर कहाँ रहेंगे ?

बूढ़े ने जवाब दिया—हुजूर, यहाँ नौकरों के रहने की कोई जगह नहीं है। दिनभर मैं आपकी खिदमत में रहूँगा; परन्तु रात में मैं भी नीचे अपने कमरे में चला जाऊँगा। सिर्फ आपको ही दो कमरे दिये गये हैं। अन्यथा देशी सिपाही तो एक कमरे में दो-दो के हिसाब से रखे जाते हैं।

शेखर ने साथ आये सभी नौकरों को वापिस कर दिया और उन्हें कड़ी हिदायत करदी कि वे यहाँ के बारे में न तो माँ को और न सुभगा को ही कुछ बतलाएँ। साथ ही उसने एक पत्र भी इस आशय का लिख दिया कि नालदुर्ग में सरकार ने उसके आराम का पूरा प्रबन्ध किया था, आवश्यक नौकर-चाकर भी दिये गये थे, इसलिए वह घर के नौकरों को लौटा रहा था।

शेखर ने घर छोड़ते समय ही यह तै कर लिया था कि नालदुर्ग में उसे कितना ही अपमान दुःख या लज्जा क्यों न भुगतना पड़े वह माँ को इस सबकी जानकारी कदापि नहीं होने देगा। वहाँ आते ही उसे पता चल गया कि नालदुर्ग में वह राजकुमार नहीं समझा जायेगा; और वह कितना ही प्रयत्न क्यों न करे कोई उसके उस दावे को मंजूर नहीं करेगा। यह ठीक था कि किसी जमाने में नागदुर्ग नरसिंगपुर राज्य का ही एक क़िला था और रियासत ने ही अंग्रेज़ों को वह दिया था। लेकिन अब उस बात की ऊहापोह करने से सिवा लज्जा और ग्लानि के कुछ भी हाथ नहीं आने का। उस बीती बात को दुहराना व्यर्थ था। शेखर ने समझ लिया कि वह वहाँ एक साधारण सैनिक की हैसियत से लाया गया है इसलिए देशी पलटन के एक सामान्य सैनिक की तरह रहना और वैसा ही व्यवहार करना उसके लिए उचित भी होगा। और वैसा ही करने का उसने निश्चय भी किया।

उसने कल सवेरे घर छोड़ा था। दिनभर नहाना-धोना न होसका था इसलिए अर्दली से पूछा—क्यों भाई, यहाँ कहीं नहाने की कोई जगह भी है?

'जी हुजूर।'

'देखो भाई, हुजूर-बुजूर कहने की कोई ज़रूरत नहीं। मेरा नाम है राजशेखर। तुम राजशेखर या खाली शेखर ही कह सकते हो, समझे न?'

'जी हुजूर।'

'फिर वही हुजूर? खैर, यह बतलाओ कि नहाने की जगह कहाँ है?'

'अगर हुजूर को स्नान करना हो तो मैं पानी यहीं लादेता हूँ।' इतना कहकर अर्दली ने बाल्टी उठाई। परन्तु शेखर ने उसके हाथ से बाल्टी छीनते हुए कहा—

'मुझे हुजूर और सो भी लँगड़ा हुजूर तो बनना नहीं है। चलो आगे हो। बतलाओ, स्नानघर कहाँ है?'

परकोटे पर छोटे-बड़े नलों वाली एक विशाल टंकी थी, जिसमें चड़स से पानी भरा जाता था। वहीं नहाने की जगह थी और जब शेखर वहाँ पहुँचा, दो गोरे टॉमी जाँघिये पहने एक दूसरे पर छींटे उड़ाते हुए नहा रहे थे। नवागन्तुक को उन्होंने साश्चर्य देखा और अपनी भाषा में धीरे से कुछ कहा, जिसे शेखर समझ न सका।

शेखर नहाकर बदन पोंछने लगा; लेकिन वे दोनों अभीतक उसीतरह धींगा-मुश्ती करते नहा रहे थे। शेखर बदन पोंछ चुका था कि एक टॉमी द्वारा उड़ाये हुए छींटे उसके बदन पर आकर गिरे। शेखर ने साफ-सुथरी उर्दू में उनसे कहा—जनाब-ए-मन, ज़रा खबरदारी रखिये। मुझे फिर से नहाना होगा।

यह कहकर उसने नल की टोंटी खोली और दुबारा नहाने लगा। यह देख दोनों टामियों को बड़ा कुतूहल हुआ और उनमें से एक ने धीरे से

शेखर की पीठ पर चुल्लू भर पानी डाल दिया। पहले ही दिन शेखर किसी फिरंगी के साथ कोई झगड़ा मोल लेना नहीं चाहता था इसलिए चुप लगाये नहाता रहा। लेकिन वह जैसे ही नहाकर उठा फिर छींटे उड़े और उनमें से एक ही-ही-ही कर हँसने लगा।

उस हँसी में समस्त हिन्दुस्तानियों के प्रति एक ऐसा अपमान था, जो किसी भी मर्द बच्चे में हजार बिच्छुओं के डङ्क की वेदना उत्पन्न कर देता। मानो उस हँसी के द्वारा वह गोरा टॉमी कह रहा था—देखली तेरी शेखी!

इस अपमान ने शेखर के तन-बदन में होली सुलगा दी। उसने लपक कर छींटे उड़ाने वाले टॉमी को पकड़ लिया। उसका साथी उसे बचाने आये उसके पहले घूँसे की एक ही चोट में उसे मार गिराया और दूसरे के सामने खड़े होकर सिंह की-सी गर्जना की—तू भी आजा!

शेखर का रौद्ररूप और कसीला बदन देखकर दूसरा अपनी जगह ही ठिठक कर खड़ा रह गया। एक कदम भी आगे बढ़ने की उसकी हिम्मत न हुई। चड्स वाला, बूढ़ा अर्दली और उसी ओर आरहा कमांडिंग अफ़सर यह देखकर हक्का-बक्का रह गये। एक काला आदमी किसी अंगरेज़ को मारे और सो भी गढ़ी के अन्दर, यह बात सर्वथा उनकी कल्पना से बाहर की थी।

घूँसा खाकर गिरने वाला टॉमी नीचे पड़ा ज़ोरों-से चिल्ला रहा था। कपड़े धोने का पत्थर उसके सिर में लग गया था और खून बहने लगा था।

लेकिन शेखर इस निश्चिन्त ढंग से, मानो कुछ हुआ ही न हो, अपना बदन पोंछ रहा था। ठीक उसी समय छात्रावास के कुछ गोरे अफ़सर विद्यार्थियों ने आकर उसे घेर लिया। उनमें से कइयों के हाथ में हॉकी स्टिकें थीं कमांडिंग अफसर भी दौड़ा आया और शेखर तथा उन अंग्रेज युवकों के बीच में खड़ा होगया।

वे युवक चिल्ला रहे थे—कौन है यह ? कौन है यह काला आदमी ? मारो, मारो इस नीगर (हबशी) को !

और उनमें से एक ने लपककर शेखर के सिर पर हॉकी का वार किया। परन्तु शेखर गाफ़िल नहीं था। फुर्ती से एक ओर हटकर वार बचा गया और चिल्लाकर अर्दली से कहा—ज़रा मेरी लाठी तो लाना।

उसने उन लाल मुँह वालों की सारी खुमारी उतार देने का निश्चय कर लिया था। उसे सबसे ज्यादा गुस्सा तो इस बात पर आरहा था कि न तो कोई कुछ पूछना ही है न कोई बात ही करता है और सीधे आकर वार ही कर बैठे हैं। जैसे ही अर्दली ने लाकर लाठी दी शेखर ने उसे कसकर पकड़ लिया। फिर कमाण्डिंग अफ़सर को, जो शेखर पर हमला करने वाले अंग्रेजों को समझा-बुझाकर लौट जाने के लिए कह रहा था, धक्का देकर दूर हटा दिया और ललकार कर बोला—क्या चाहते हो ? मुझे मारने का इरादा है ? तो आजाओ। देखें, किसकी माँ ने सेर घी खाया है ?

और लाठी का वह उस्तादी हाथ घुमाया कि सारी भीड़ चार क़दम पीछे हटगई। दो-एक ने हॉकी से वार करने की कोशिश भी की लेकिन शेखर ने उनकी हाकियों के टुकड़े ही उड़ादिये। फिर लाठी रोककर उसने शान्ति से कहा—अगर मेरी बात सुनना चाहते हो तो चुप खड़े होजाओ और शान्ति से सुनो।

भीड़ में से अधिकाँश इस मुक़ाबले के लिए तैयार होकर नहीं आये थे। फिर भी वे यह तो कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि इसतरह एक काला आदमी अंग्रेज़ों को डराकर चला जाय। भीड़ में से शोर उठा—इसे जनरल के सामने ले चलो।

कमाण्डिंग अफ़सर झट से शेखर के पास पहुँचा और बोला—हाँ, चलो ! जनरल के पास चलना मँजूर करलो। मैं तुम्हारी ओर से गवाही दूँगा।

भीड़ उसे और घायल टॉमी को बीच में किये जनरल डेनियल के बंगले पर पहुँची। कमांडिंग अफसर अर्दली के साथ बातें करता हुआ उनके पीछे-पीछे चला आरहा था।

परकोटे की ओर वाले बरामदे में आरामकुर्सी डाले जनरल हाल की आई डाक देख रहे थे। पास ही एक कुर्सी पर बीसेक साल की एक नवयुवती बैठी चाय तैयार कर रही थी। समीप ही एक नौकर ट्रे में चायदानी, दूध, शक्कर आदि सामान लिये खड़ा था। क्षणभर के लिए शेखर की आँखों के आगे माँ का कमरा, सुभगा, माधवी आदि के परिचित चेहरे नाच गये लेकिन दूसरे ही क्षण वह तनकर खड़ा होगया।

इस भीड़ को देखते ही जनरल कुर्सी पर से उठ बैठे और बोले—यह क्या ऊधम मचा रखा है?

गोरों ने शोर मचाकर आसमान सिर पर उठा लिया था। जनरल ने उन्हें शान्त कर पूछा तो जवाब मिला—अगर इसतरह काले आदमी गोरों को मारने लगेंगे तो यहाँ एक भी यूरोपियन रह नहीं सकेगा।

उस घायल सैनिक को देखते ही युवती पूछ बैठी—मूरहेड, तुम?

जनरल ने समीप जाकर उसकी चोट की देखभाल की उसे आश्वासन दिया और फिर अपराधी की ओर मुड़े। साँचे में ढले अंगों वाला एक सुन्दर सुशोभन युवक उनके आगे खड़ा था। खरे कुन्दन-सा दमकता उसका रूप था। चौड़ी छाती और लोहे-के खम्भे-से कन्धे। लम्बी भुजाएँ धनुष के दण्ड-सी ही सीधी और ठोस थीं। जनरल ने उसके सिर से पाँव तक एक निगाह डाली। उसके खड़े रहने के ढंग में न तो लापर्वाही थी और न अपराधी का-सा भाव ही। वह सिर्फ एक जाँघिया पहने था। गले में एक कीमती माला थी। हाथ में मानिक जड़े बाजूबन्द थे। एक हाथकी मुट्ठी में लाठी पकड़े था। सिर के बाल गीले और बिखरे हुए थे और कन्धों

तक लटक रहे थे। मूछों की रेख फूट रही थी। निष्कलुष चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज और आभा थी। चाय तैयार करने वाली युवती भी युवक के उस स्वस्थ सुन्दर रूप को देखकर आश्चर्यचकित रह गई थी।

जनरल ने पूछा—तुम कौन हो?

राजशेखर के जवाब देने से पहले ही सिख कमांडिंग अफ़सर आगे आया और सलाम कर बोला-नरसिंगपुर के महाराज कुमार श्री राजशेखर।

जनरल और उसकी बेटी राजशेखर की ओर क्षणभर के लिए देखते ही रह गये। कमांडिंग अफसर ने सारी घटना कह सुनाई। टामियों ने शेखर को गन्दी गालियाँ दी थीं आदि कुछ नमक-मिर्च उसने अपनी ओर से भी उसमें मिला दिया था। उसकी बात पूरी होजाने पर जनरल ने अर्दली से पूछा—क्यों, यह सच कह रहे हैं?

अर्दली ने सलाम कर कहा—जी हाँ, हुजूर।

जब गोरे अफसरों को मालूम हुआ कि मार-पीट करने वाला व्यक्ति एक सामान्य सैनिक नहीं बल्कि नरसिंगपुर का राजकुमार है तो उनका उत्साह भी ठण्डा पड़ गया। परन्तु फिर भी उन्होंने कहा—माना कि अपराध मूरहेड का है; परन्तु राजशेखर को मार-पीट करने के बदले नियमानुसार कर्नल से इसकी शिकायत करना चाहिये थी। गोरे अफ़सर पर हाथ उठा बैठना कहाँतक उचित है? अगर इस मामले को यों ही छोड़ दिया तो किसी भी काले आदमी के लिए साहब लोगों पर हाथ उठाना मामूली बात होजायेगी।

थोड़ी देरतक कुछ सोचते रहने के बाद जनरल ने शेखर से पूछा—आपको कुछ कहना है?

'कर्नल जानसन ने मेरी माताजी को आश्वासन दिया था कि अपने धार्मिक मामलों में मुझे यहाँ पूरी स्वतंत्रता रहेगी। कोई उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। लेकिन आज पहले ही दिन वह वचन भँग किया गया है।

मैं नहा चुका था और इन्हें दो बार चेतावनी दे चुका था फिर भी जान-बूझकर इन्होंने छींटे उड़ाकर मुझे अपवित्र किया है। मेरे खयाल में तो इन्हें कड़ी सजा मिलनी चाहिये ताकि दूसरों को उससे सबक़ मिल सके।'

'जानसन साहब की आपकी माताजी के साथ क्या बातचीत हुई उसकी जानकारी न तो मुझे है और न इन सिपाहियों को; और न मैं यही जानता हूँ कि आपकी माताजी को ऐसा आश्वासन क्यों दिया गया है? परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि आपने अपराध किया है और उसकी सजा आपको दी ही जायेगी। फिर भी चूँकि आप यहाँ के कायदे-कानून से अनभिज्ञ हैं मैं सिर्फ पाँच दिन कालकोटरी (एकान्तवास) की सजा आपको देता हूँ।'

'तो क्या मैं इसका यह अर्थ लगाऊँ कि जानसन साहब ने जो आश्वासन दिया है उसकी कोई क़ीमत नहीं?'

'जबतक मैं जानसन साहब से मिलकर आश्वासन के सम्बन्ध में पूरी जानकारी हासिल नहीं कर लेता कुछ नहीं कह सकता। संत्री इन्हें यहाँ से ले जाओ।'

शेखर तो वहाँ से एक क़दम भी हटने के लिए तैयार नहीं था; परन्तु कमाण्डिंग अफ़सर उसका हाथ पकड़कर उसे वहाँ से दूर ले जाते हुए बोला—आपकी किस्मत सिकन्दर है कि सस्ते में निपट गये। अगर कोई और हिन्दुस्तानी होता, तो कोड़े की सजा मिलती और नौकरी से हाथ धोना पड़ता।

शेखर के कमरे के आगे पहुँचने पर कमाण्डिंग अफ़सर ने उससे विदा मांगते हुए उसके कान में धीरे से कहा—मेरे जैसा कोई काम-काज हो तो निस्संकोच कहियेगा। मुझे अपना ही आदमी समझियेगा। मेरा नाम करतारसिंह है और मैं सरदार सोहनसिंह का लड़का हूँ।

यह सुन शेखर की खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। 'अच्छा, आप सरदारजी के बेटे हैं?' और वह भावावेश में उसे छाती से लगाने जा ही

रहा था कि शेखर को रोकते हुए वह बोला–जल्दबाजी में ऐसा-वैसा कुछ न कर बैठना। काम पड़ने पर रहमान अर्दली के हाथ खबर भेज देना। मैं दौड़ा चला आऊँगा।

'एक काम तो यह कीजिये कि मेरे साथ जितना सामान आया है उसे नीचे की पलटन में बँटवा दीजिये। मैंने अपने लिए आवश्यक चीज़ें रखली हैं। बाकी के लिए मेरे कमरे में जगह ही नहीं है।'

२

कालकोठरी का नाम सुनकर शेखर पहले तो ज़रा सोच में पड़ गया था। परन्तु जब वह कालकोठरी में बन्द कर दिया गया तब उसने पाया कि बचपन में कालकोठरी की जो रोंगटे खड़े कर देने वाली कहानियाँ उसने सुन रखी थीं वैसी कालकोठरी यह नहीं थी। हाँ,सील उसमें ज़रूर थी। कोठरी पाँच हाथ लम्बी और चौड़ाई में भी उतनी ही थी। जमीन में तीनेक हाथ गहरी थी और अच्छा खासा आदमी हाथ के सहारे कूदकर बाहर आसकता था। कोठरी में तीन हाथ लम्बा और डेढ़ हाथ चौड़ा सलाखों वाला फाटक लगा था, इसलिए उजाला भी भरपूर आता था। सलाखों वाले फाटक के साथ ही साथ लकड़ी के पल्ले भी जड़े थे। पहले कैदी को तहखाने में बन्द कर लकड़ी के फाटक जड़ दिये जाते थे और वह अन्धेरी कब्र में बन्द होजाता था। लेकिन जब से जनरल डेनियल आये उन्होंने यह प्रथा बन्द कर दी थी। वह इसतरह की बर्बर प्रथा के सख्त खिलाफ थे। उनका कहना था कि हम मनुष्य को मानव-निर्मित वस्तुओं से भले ही बिलग करदें परन्तु प्रकृति-निर्मित वस्तुओं से बिलग करने का हमें कोई हक नहीं। यदि ऐसा करेंगे तो वह हमारा अक्षम्य अपराध होगा। हवा और प्रकाश प्राणीमात्र को ईश्वर की देन है और वह सबको समानरूप से उपलब्ध किये गये हैं। उन्हें छीनने का अधिकार भी सिर्फ ईश्वर को ही है।

फौजी छावनी में इसतरह की बातें हास्यास्पद होसकती हैं। लेकिन उन दिनों गोरी पलटन में ऐसी धार्मिक वृत्ति वाले कई मेजर जनरल थे। उनका उद्देश्य हिन्दुस्तान का धन लूटना नहीं था। वे तो इस देश की पिछड़ी

और मूल जातियों को भगवान ईसा-मसीह का पवित्र सन्देश सुनाने के लिए घर छोड़कर आये थे। उनके दूसरे सैनिक मित्र उन्हें मज़ाक में 'बीशप जनरल' या 'बीशप कर्नल' आदि नामों से पुकारते थे। अपने नाम के ही अनुरूप इस कोटि के सैनिक अधिकारी दयावान और उदार होते थे। जब उनकी फौज लड़ाई के मैदान में न होती तो वे अफसर 'बिशप' बनकर काले सिपाहियों को इसाई धर्म का महत्व समझाया करते थे। सिपाहियों को उनका यह धर्मप्रचार ज़रा भी अच्छा नहीं लगता था लेकिन उन अफ़सरों की सरलता और उदारता के कारण विरोध भी नहीं करते बनता था। जनरल डेनियल इसी कोटि के 'बिशप जनरल' थे। उनके एक बड़े भाई 'कमाण्डर-इन-चीफ' के 'एडजुटेण्ट जनरल' थे इसलिये जनरल डेनियल के साथ धर्म-प्रचार के सम्बन्ध में विरोध होते हुए भी उनके संगी-साथी उसे कभी प्रगट नहीं करते थे। एक जानसन ही था जो जनरल के इस धार्मिक उन्माद की सायंकालीन चाय-पार्टियों में खिल्लियाँ उड़ाने से बाज नहीं आता था। परन्तु डेनियल उसके सभी आक्षेपों और व्यंग-बाणों को हँसी में उड़ा देते थे। ज्यादा होता तो कह देते—भाई मैं सिर्फ जनरल ही नहीं, इसाई भी हूँ। लेकिन साथ ही जनरल का जानसन पर स्नेह और श्रद्धा दोनों ही थे। वह अकसर कहते थे कि जानसन जैसा कुशल और समझदार अफसर सारी फौज में दूसरा नहीं।

जब शेखर को सजा हुई तो जानसन दो दिन की यात्रा की थकावट उतारने के लिए पड़ा खर्राटे ले रहा था। सायंकाल में वह शेखर को जनरल से मिलाने के लिए ले जाने वाला था। जब वह वहाँ पहुँचा तो उसे सारी घटना का पता चला। कालकोटरी की सजा की बात मालूम होते ही वह सीधा उधर गया और शेखर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए हाथ की छड़ी से सलाखों पर वार किया।

कोठरी में चहल-कदमी करता हुआ शेखर रुक गया और सामने की दीवाल से पीठ सटाकर वह हँसता हुआ बोला—पहले ही दिन मेरा स्वागत-सत्कार तो खूब करवाया आपने।

'अपना भाग्य सराहो कि इतने सस्ते छूट गये हो तुम।'

शेखर की हँसी लोप होगई। उसने जानसन की ओर से निगाहें हटालीं और फिर चहल-कदमी करता हुआ बोला—कलतक जिसे 'आप' और 'हुजूर' कहकर सम्बोधन करते थे और अब भी जिसकी माँ के आगे कोर्निश बजाते हो उसे आज निराधार पाकर तुम्हारे व्यवहार में यह आश्चर्यजनक परिवर्तन होगया है, क्यों? मैंने तो सुन रखा था कि अंग्रेज़ लोग हम हिन्दुस्तानियों कि अपेक्षा अधिक सभ्य और संस्कृत होते हैं। यही है तुम्हारी सभ्यता और ऐसे ही तुम अपने दिये वचनों का पालन करते हो?

'कुँवर साहब, वहाँ मेरी हैसियत रियासत के एक नौकर की है और तुम यहाँ एक सिपाही की हैसियत से हो जबकि मैं सैनिक अफसर की हैसियत रखता हूँ। मैंने यह वचन अवश्य दिया है कि तुम्हारे धार्मिक आचार-व्यवहार में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं किया जायगा; लेकिन यह वचन कब दिया था कि गोरे अफसर पर हमला करने की सजा भी तुम्हें नहीं दी जायेगी?

'तुमने मुझसे, मेरी माँ या और किसी से इस कालकोठरी, यहाँ के अपमान और अकेलेपन का उल्लेख तक नहीं किया था? तुम तो बार-बार यही कहते रहे थे कि मुझे योग्य राजा बनाने और तत्सम्बन्धी आवश्यक शिक्षा देने के लिए नालदुर्ग ले जारहे हो?'

जानसन को तत्काल कोई जबाव नहीं सूझ पड़ा। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद वह बोला—कुँवर साहब, यह भी मालूम है या नहीं कि इस तहखाने को किसने बनवाया है? यह तहखाना बनवाया था आपके पूर्वजों ने। और इसमें अनेकों अपराधियों और निरपराधियों को जंजीरों से बाँधकर, भूखे-प्यासे रखकर और तिल-तिलकर उनकी जान ली गई है। अन्तःपुर की कई रानियों के आँसुओं से इस तहखाने की धरती भीगी है। उन दिनों तो यहाँ यह दरवाजा भी नहीं था। अपराधी के लिए प्रकाश के दर्शन दुर्लभ थे। आदमी की शक्ल देख पाना भी असंभव था। सिर्फ एक गड्ढा था जिसकी राह

अपराधी को अन्दर ढकेल देते थे। हम भले ही सभ्य न हों परन्तु आपके पूर्वजों की तुलना में क्या हमारा व्यवहार ज्यादा अच्छा नहीं है? अब रही बात वचन देने और उसे पूरा करने की। ज़रा यह तो बतलाओ कि स्वयं तुम राजा लोग अपने वचन के कैसे और कितने पाबन्द हो? फिर किस मुँह से हमारे वचन की बात कहते हो? दुनिया में तुम राजाओं जैसा अधम और नीचा वर्ग दूसरा और कोई नहीं है। कहीं बेटा बाप की मुखालफ़त कर रहा है तो कहीं माँ बेटे को कत्ल करने के मन्सूबे गढ़ रही है। कहीं बेटी माँ को और कहीं पत्नी पति को ज़हर देने का षडयन्त्र रच रही हैं। तुम्हारे राज-दरबार हर तरह के षडयन्त्रों के अड्डे हैं। अविश्वास के समन्दर में तो तुम अपनी नाव खेते हो और हमसे विश्वास और आश्वासन की माँग करते हो? निज़ाम अयोध्या के नवाब को ज़हर खिलाता है, आनन्दी अपने पति नारायणराव को मरवा डालती है, राघोबा उसके राजवंश को उखाड़ फेंकने के लिए हमें भड़ौंच और अष्टी के इलाके देता है। कहाँतक गिनाऊँ इस चाण्डाल चौकड़ी को? सबके सब शैतान की औलाद हैं। लॉर्ड डेलहौज़ी ने इन्हें मिटाकर धरती पर से एक नरक ही साफ कर दिया है।

'और ज़रा अपने यहाँ के राजाओं को तो देखो! वे कहाँ दूध के धोये हैं?'

जानसन ने अकड़कर शान के साथ कहा—हमारे यहाँ राजा हैं ही नहीं। कभी एक राजा था! उसकी हालत यहाँ के राजाओं से भी गई गुजरी थी। लेकिन हमने उसका सफाया कर दिया। आज इंग्लैण्ड में हमारा राज्य है। ब्रिटिश साम्राज्य अन्तःपुर के षड्यन्त्रों पर नहीं ब्रिटिश जनता की न्याय-निष्ठा, बुद्धिपूर्ण निर्णयों और स्वातंत्र्य प्रेम पर अवस्थित है। और यही हमारी श्रेष्ठता है।

राजशेखर के पास इसका कोई जवाब नहीं था। वह निरुत्तर रह गया।

वह कह सकता था कि हमारे नरसिंगपुर के राजमहल में ऐसा कुछ नहीं होता। परन्तु वह कोई उत्तर नहीं था। क्योंकि हिन्दुस्तान के हर

छोटे-बड़े रजवाड़े में यही सब होरहा था और इससे इन्कार नहीं किया जासकता था। किसी भी रियासत की जनता यह नहीं कह सकती थी कि राजा हमारा है, और राजा हमारा चुना हुआ, प्रतिनिधि है। कईबार रियासतों का पूरा कार-बार अन्तःपुर की दासियों, खुशामदी मुसाहबों और हिजड़ों तक के हाथ में चला जाता था। जनता पर भीषण अत्याचार भले ही न होते हों, लूटपाट से सारा देश भले ही तबाह न होरहा हो परन्तु इस बात से तो इन्कार नहीं ही किया जासकता कि आत्म-निर्णय के अधिकार पर स्थापित जनता का शासन ही ऊँचे दर्जे की सभ्यता है। इसमें मीन-मेख निकालने की तो कोई गुँजाइश ही नहीं थी। और वह इस बात को भी अच्छी तरह से जानता था कि स्वयं वासुदेव को भी इन राजे-रजवाड़ों से सख्त नफरत थी; और इसीलिए उन्होंने जीवनभर किसी राजा का आश्रय ग्रहण नहीं किया था। अतएव युद्ध में पराजित योद्धा की तरह वह मौन रह गया।

'बोलो, जवाब दो। क्या मैं झूठ कह रहा हूँ?'

'लेकिन इससे यह कहाँ साबित होता है कि तुम्हारे यहाँ का जन-साधारण हमारे यहाँ के जन-साधारण से ऊँचा या श्रेष्ठ है?'

'श्रेष्ठ है ही। हमारे यहाँ के जन साधारण ने अपने यहाँ के अत्याचारी राजशासन को उलट दिया। क्या इतना पुरावा काफी नहीं है? यदि रिचर्डसन या पोलक हिन्दुस्तान में पैदा हुआ होता तो वह यहाँ की सड़ी-गली शासन व्यवस्था को कभी सिर झुकाकर बर्दाश्त न करता। चार्ल्स को बन्दी बनाकर उसका शिरच्छेद करनेवाली वहाँ की साधारण जनता ही तो थी।'

'शायद तुम्हारा कहना ही सच हो तुम्हारे यहाँ का जन-सामान्य हमारे यहाँ के जन-सामान्य से श्रेष्ठ ही हो, लेकिन इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं होता कि उस श्रेष्ठता की बदौलत तुम्हें हम पर अत्याचार करने हमारे साथ छल-कपट करने हमारी आज़ादी छीनकर अपना गुलाम बनाने और हमें धर्मच्युत करने का हक़ मिल गया है!'

'चुप रहो। दूसरों पर मिथ्या आरोप लगाने से पहले ज़रा अपनी हालत पर गौर करो? तुम्हारे देश में आज़ादी है ही कहाँ? जिसे हम लूट रहे हैं, वह तो खाली ढोल की पोल है।'

तिरस्कार भरे स्वर में यह कहकर जानसन वहाँ से चला गया।

आसमान में बादल घिर आये थे। पानी बरसने को होरहा था। जनरल के बंगले से स्त्री-पुरुषों की सम्मिलित हँसी का स्वर सुनाई पड़ रहा था। और शेखर बड़ी देरतक अन्यमनस्क भाव से कोठरी में बन्द शेर की भाँति चक्कर काटता रहा। जानसन की बातों ने उसके विचारों को एक नई दिशा में मोड़ दिया था। एक प्रश्न विराटरूप धारण किये उसके सामने आ खड़ा हुआ था। जानसन की सारी बात का सार यह था कि जिस देश की सारी सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था सड़ गई हो, जिस देश की जनता उस सड़ियल व्यवस्था को डर से नहीं बल्कि उदासीन भाव से निभा लेती हो, केवल निभा ही न लेती हो अन्धश्रद्धालु होकर उसकी पूजा भी करती हो उस देश में आज़ादी और धर्म, नीति और न्याय हो भी सकते हैं या नहीं? उस देश की संस्कृति को कौन से आधार पर ऊँचा माना जाय? वह देश आज़ाद हुआ तो क्या और गुलाम भी रहा तो क्या? वहाँ के लोगों को तो किसी तरह पेट का गड़हा भरने को मिल जाय और वे सन्तुष्ट होजाएँगे।

बाहर पानी बरसना शुरू होगया था। किले के पिछवाड़े वाले पहाड़ी नाले में बाढ़ आगई थी और उसकी आवाज़ शेखर अपने तहखाने में भी सुन रहा था।

काफी देरतक चहल-कदमी के बाद शेखर ने ज़ोर से कहा—मान लिया कि हम पिछड़े हुए हैं, हम मूर्ख हैं लेकिन इससे तुम्हारा दमन और हम पर किये जाने वाले तुम्हारे अत्याचारों का औचित्य प्रमाणित नहीं होता। यदि यह भी मानलें कि तुम हमसे श्रेष्ठ हो तो भी उस श्रेष्ठता की बदौलत

हमें गुलाम बनाने का तुम्हारा दावा सच नहीं ठहरता। यदि उस दावे को सच मानलें तो निरीह पक्षियों की हत्या करने वाले बाज का दावा भी सच मानना पड़ेगा। यदि तुम्हारे तर्क को स्वीकार करलें तो मानना पड़ेगा कि अशक्त शिशु, अनाथ नारी और निर्बल तथा निराधार व्यक्तियों को शक्तिशाली के आगे जीने का कोई हक़ ही नहीं है। तुम्हारे तर्क के अनुसार तो दुनिया में 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' के सिद्धान्त को सच मानना पड़ेगा और धरती से दया-माया, धर्म-न्याय आदि का सर्वथा लोप ही होजायगा। या फिर इन मानवी गुणों को पाशविक शक्ति की गुलामी कर उसी की जय-जयकार करना पड़ेगी। तुम्हारी बात को सच मान लेने पर हिंसा, अत्याचार, विश्वासघात, बैर, छल-कपट सभी को उचित मानना होगा! कितने भीषण हैं ये विचार यह तो कभी हो ही नहीं सकता! यदि यह होजाय तो पृथ्वी रसातल में चली जायेगी। फिर इस धरती पर रहना चाहेगा ही कौन? जहाँ दूसरों पर अत्याचार करने में ही आनन्द माना जाय, निष्ठुरता ही सद्गुण समझा जाय, भीषण पाशविक वृत्तियाँ ही मर्दानगी की सूचक हों, जहाँ दूसरों का दुःख देख दिल करुणा से पसीजता न हो, जहाँ प्रेम, स्नेह, धैर्य, न्याय और समदृष्टि न हो वहाँ जीकर कोई करेगा ही क्या?

'अपने अस्तित्व की सारी शक्ति लगाकर मैं तुम्हारी बात से इन्कार करता हूँ। मैं अपने जीते जी तुम्हारी साम्राज्य-लिप्सा को कभी उचित नहीं मानूँगा। भगवान के दरबार में हमें अपनी मूर्खता और भोलेपन की सजा मिलेगी पर उससे भी कड़ी और बढ़ी सजा तुम्हें पर-पीड़क असुरों के रूप में दी जायेगी। यह मत भूलो कि लाखों-करोड़ों की सम्मति मिल जाने से भी पाप पुण्य नहीं होजाता है। सारी दुनिया की सम्मति मिल जाने पर भी पाप तो पाप ही रहेगा।

३

दूसरे दिन सवेरे जनरल डेनियल अपने नियमित समय से कुछ पहले ही जाग गये। छज्जे में जाकर उन्होंने सुना कि कोई मन्द मधुर कण्ठस्वर से संस्कृत के श्लोक गारहा था। पानी बरसना बन्द होगया था। बादल बिखर गये थे। आकाश निरभ्र होगया था। स्थिर नीले जल में तैरते हुए सफेद कमल की तरह आसमान की सतह पर चन्द्रमा धीरे-धीरे तैर रहा था। वर्षा-जल से निखरे हुए जंगल और पहाड़ चाँदनी में चमक रहे थे। सारे क़िले में शान्ति का राज्य था। अभी उठने की घण्टी बजने का वक्त भी नहीं हुआ था। जंगल की ओर से स्फूर्तिदायक, आलस्य और अपवित्रता को हरने वाले शीतल, मन्द और सुगन्धित पवन के झोंके आरहे थे। और हवा के उन झोंकों पर चढ़कर अनुष्टुप् छन्दों का तालबद्ध गीति-स्वर चला आरहा था। ऐसा लगता था मानो कोई यन्त्र प्रकृति के सौन्दर्य से प्रेरित होकर भक्ति भरे स्वर में प्रकृति की प्रार्थना कर रहा हो।

वह स्वर सुनकर डेनियल को हठात् ही आज से आठ साल पहले के वे सुखद दिन याद होआये। उन दिनों उन्हें जनरल का ओहदा नहीं मिला था। वह अभी कर्नल ही थे और बाग़ी अर्जुन और वासुदेव के विद्रोह को दबाने और उन्हें जीवित या मृत-दशा में पकड़ लाने के लिए उन्हें अपनी सेना के साथ इन जंगलों की चप्पा-चप्पा जमीन की खाक छानना पड़ी थी। आखिर रामगंगा के किनारे दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई और उसमें डेनियल की बुरी तरह हार हुई थी। उन्हें वहीं घायल हालत में

छोड़कर उनकी फौज भाग खड़ी हुई थी और माँस नोचने वाले सियारों से अपनी जान बचाने के लिए बेहोश होरहे डेनियल को एक टूटी किरच का ही सहारा शेष रह गया था। उस समय भी रात का यही पिछला प्रहर था। ठीक इसीतरह सारी रात पानी बरसा था। ऐसे ही ब्राह्ममूर्त में कोई उन्हें कन्धे पर उठाकर एक गुफा में ले गया था। उस गुफा में गर्मी थी, प्रकाश था, वहाँ सिगड़ियाँ जल रही थीं और उन्हीं जैसे पाँच-सात घायल वहाँ पड़े थे, जिनकी सार-संभाल की जारही थी। किसी की मरहमपट्टी होरही थी, किसी को दवा पिलाई जारही थी और किसी के घाव धोये जारहे थे।

और उस सेवा-सुश्रूषा के बीच गुफा के भीतरी कक्ष से ऐसा ही शान्त मधुर और प्रवाह पूर्ण स्वर इस देश की लाख-लाख जनता के लिए माँ के पवित्र और पोषक दूध-सा रामायण-गान गा रहा था। उस स्वर के साथ बीच-बीच में तम्बूरे की झंकार और बंसी की टेर भी सुनाई दे जाती थी।

फिर जनरल डेनियल को दो हफ्ते की वह सेवा-सुश्रूषा याद आई, जिसकी होड़ जनम देने वाली माँ भी नहीं कर सकती थी। और फिर याद आया रोज सवेरे का वह रामायण-गान और प्रातःवेला में किसी सोते के किनारे, सागौन के झुरमुट में किसी शिला पर बैठकर वासुदेव के साथ की गई आध्यात्म-चर्चाएँ। उन्हीं दिनों जनरल के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ था। उन दिनों की याद कर जनरल कभी-जभी अपने एकाकी जीवन के बिरल क्षणों को प्रकाशमय बना लेते थे। उस दिन सवेरे-सवेरे पवन पर चढ़कर आते हुए उसी अनुष्टुप् छन्द को सुनकर उन्हें आठ साल पहले की वे सभी बातें एक-एक कर याद हो आई थीं।

भिनसारे ही गुफा में से निकलकर वासुदेव और वह स्वयं एक पहाड़ी पगडण्डी पर होकर चले जारहे थे। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। दिशायें अरुणोदय की आभा से रक्तिम होरही थीं। वन के पक्षियों का मंगलगान शुरू होगया था। वन-वासियों के झोंपड़ों से धुआँ गेण्डुली मारे ऊँचा उठ रहा था।

नीचे धारा की ओर से अर्जुन, सहदेव, लक्ष्मण और चन्द्रभलु के हँसने और पानी में कूदने की आवाज़ आरही थी। आगे-आगे वासुदेव चले जारहे थे। कद उनका डेनियल से भी दो मुट्ठी ऊँचा था। डील-डौल ऐसा गठीला था कि पुराण-कालीन रोमनों को भी देखकर ईर्ष्या होने लगे। लेकिन वासुदेव के डील-डौल की विशेषता यह थी कि उनकी भाव-भंगी और चाल-ढाल से रोमनों की विजयाकाँक्षा या माँसलिप्सा प्रगट नहीं होती थी। देखने वाले के मन में सिर्फ यही भाव उत्पन्न होते थे कि यह जो नररत्न चला जारहा है यह न तो किसी से डरना जानता है और न किसी के आगे झुकना ही जानता है; साथ ही किसी को डराना या झुकाना भी इसका काम नहीं है। सुख न तो इसको लुभा सकता है और न इसके आगे गर्व से माथा ऊँचा कर खड़ा ही हो सकता है। न यह सृष्टि को तुच्छ समझकर उसका निरादर करता है न उसको सर्वस्व समझकर उसमें लिपटता ही है। दुनियादारी के क्षुद्र स्वार्थों, लालसाओं और दुःख-शोकों से यह कभी का परे होगया है।

वासुदेव के पीछे खुद डेनियल एक लकड़ी के सहारे चल रहे थे। ठण्ड से बचने के लिये उन्होंने ओवरकोट पहन रखा था। और उन दोनों के पीछे चली आरही थीं वासुदेव की पुत्री सुभगा, जो साक्षात् शिशिर के अवतार-सी मालूम पड़ रही थी। उसने पिता की धोती, अंगोछी और लोटा ले रखा था।

कुछ दूर चलकर वासुदेव सागौन की एक उभरी हुई जड़ पर बैठ गये और डेनियल की शंका का समाधान करने लगे—यह आपका भ्रम है। जिसकी सेवा करना होती है पहले उसके जैसा बनना पड़ता है। अपने आपको उसमें घुलाना-मिलाना पड़ता है। पृथ्वी में समाये बिना पानी पृथ्वी की कोई सेवा नहीं कर सकता। वृक्ष की जड़ में, तने में, टहनियों और पत्तों में सर्वत्र पानी है। लेकिन तुम उस पानी को विलग नहीं कर सकते। वृक्ष में वह इस तरह घुलमिल गया है कि उसका विश्लेषण कर यह कहना

असंभव है कि इतनी जड़ और इतना पानी या इतने पत्ते और इतना पानी है। यदि ऐसा किया जाय तो वृक्ष वृक्ष ही नहीं रहेगा। वृक्ष मिटकर मात्र काष्ठ-खण्ड रह जायगा। यदि तुम भारतवर्ष का सुधार करना चाहते हो, हमें अपनी ऊँची संस्कृति का ज्ञान कराना चाहते हो तो सबसे पहले तुम्हें हममें घुल-मिलकर एक होना पड़ेगा। और इस दिशा में पहला सही कदम यह होना चाहिये कि हमारे प्रति तुम्हारी जो घृणा है, जो तुच्छ-भाव है उसे प्रेम और समता में परिवर्तित किया जाय। आत्मा का अपमान कर उसे ऊँचा उठाने की सारी बात व्यर्थ है, बेमानी है। यदि आत्मा मिट्टी होती, लकड़ी या पत्थर होती तो तुम काट-पीटकर या ठोक-बजाकर उसे मन चाहे ढंग से गढ़ सकते थे। लेकिन यही तो मुश्किल है कि आत्मा जड़ पदार्थ नहीं है, वह चेतन है। और तुमने उसी चेतन आत्मा को, ज्ञान ग्रहण करने वाली हमारी उसी आत्मा को अपमानित कर विरोधी बना लिया है। विरोधी बनाने के बाद अब तुम कितनी ही शुभेच्छायें क्यों न व्यक्त करो हमारी आत्मा के लिए वे सब चिकने घड़े पर पड़ी बूँदों के समान हैं। और असल में तो हमारा सुधार करने की तुम्हारी सारी बातें ही भ्रामक हैं। स्वयं तुम्हारे ही साथ इस बात को लेकर जबर्दस्त धोखा-धड़ी की गई है। तुम्हीं बतलाओ, यदि हिन्दुस्तानियों का सुधार करने के लिए ही अंग्रेज़ यहाँ आये होते तो फिर यह काले-गोरे का भेद क्यों है? यह दमन अत्याचार और जाति-द्वेष क्यों है?

'और तुम हमारा क्या सुधार करोगे?' उनका स्वर जरा ऊँचा होगया था—तुम, जो हमारे धर्म को बहम, हमारे साधु-सन्तों को पागल और ढोंगी, हमारे शास्त्र-पुराणों को कपोल-कल्पनाएँ समझते हो और हमारे यहाँ के स्वातन्त्र्य वीरों को विद्रोही करार देकर गोलियों से उड़ाते हो। हमारा सारा रीति-रिवाज ही जिन्हें फूटी आँखों नहीं सुहाता ऐसे तुम हमारी क्या सेवा करोगे?

थोड़ी देर तक शान्ति बनी रही उसके बाद वासुदेव ने फिर कहना शुरू किया—इस भ्रम में कदापि मत रहना कि तुम्हारे मिशन के अस्पतालों में जो गरीब-गुरबे दवा-दारू के लिए आते हैं वे तुम्हें आदर की दृष्टि से देखते होंगे। समय आने पर वे ही तुम्हारे मिशन की सारी सम्पत्ति को तहस-नहस कर देंगे और उसमें आग लगा देंगे। कारण बिलकुल स्पष्ट है। मनुष्य की आत्मा को धोखा देना इतना सरल नहीं है जितना कि तुमने समझ रखा है। मूलनिवासी भी इतना तो समझते ही हैं कि ये गोरे यहाँ हमेशा से नहीं थे। बाहर से आकर अचानक यहाँ के मालिक बन बैठे और इनके मालिक होने के दिन से ही इस शान्त और सम्पन्न देश की तबाही शुरू हुई है। तुम्हारी सारी सेवा 'निहाई की चोरी कर सुई का दान' करने के समान है। अपने इस कृत्य से न तो तुम हमारा ही कोई भला कर सकते हो और न अपनी सारी जाति को ही पाप से बचा सकते हो।

'क्या इस पाप का कोई भी प्रायश्चित नहीं है?'

'है और अवश्य है। यदि तुम इस देश के बन जाओ इस देश के निवासियों के साथ घुल-मिल जाओ तो अवश्य अपने आपको उस महान पाप से बचा सकते हो। जिसतरह पानी धरती में समा जाता है उसी तरह तुम हमारे इस महान राष्ट्र में समा जाओ। हमारे देश की यही तो विशेषता और महानता है कि अपना बनकर आनेवालों को वह अस्वीकार नहीं करता, उन्हें छाती से लगा लेता है। जो कोई पुत्र बनकर यहाँ रहने आया है उसे इस देश की धरती ने अपना दूध पिलाया है। फिर आनेवाला किसी भी देश, किसी भी जाति और किसी भी वर्ग का क्यों न हो? चाहे वह काला हो या गोरा, पीला हो या लाल, उसकी नाक लम्बी हो या चपटी, उसकी भाषा यावनी हो या ब्राह्मी किसी के साथ भेदभाव नहीं किया है। जो बालक बनकर माँ की गोद में सोना, माँ के चरणों में खेलना और माँ की पूजा करना चाहता है उसके लिए माता का निर्व्याज स्नेह गंगा-जमुना की धारा की तरह हमेशा

छलकता रहा है। अपनी जननी जन्मभूमि के इसी रूप में तो हमें उस जगन्नाथ के दर्शन होते हैं जो अपनी शरण में आनेवाले से बाल-सुलभ भक्ति और विश्वास के सिवा और कुछ नहीं चाहता है।'

'तो क्या हम इंग्लैण्ड को छोड़ दें?'

यदि यहाँ रहना चाहते हो तो छोड़ना ही होगा। तुम्हारे ही तो किसी दार्शनिक का मत है कि 'आदमी एक साथ दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता।'

'तो क्या इसमें इंग्लैण्ड का तिरस्कार नहीं होगा? और यदि आपके बतलाए रास्ते पर चला जाय तो प्रत्येक देश अपने को श्रेष्ठ प्रमाणित करने का प्रयत्न करेगा और तब श्रेष्ठता स्थापित करने की लड़ाइयाँ शुरू हो जाएँगी।'

'मैं देश को श्रेष्ठ मानने की बात नहीं कह रहा, मैं तो कह रहा हूँ कि देश से प्रेम करना सीखे। जो प्रेम करना जानता है और जिसे प्रेम मिला है उसे परायों की निन्दा करने का अवकाश ही कहाँ है? ईर्ष्या, द्वेष तो उनके लिए है जो प्रेम से परिचित नहीं।'

'आप देश किसे कहते हैं?'

'मैं देश किसे कहता हूँ?' वह क्षणभर के लिए रुक गये पूर्वदिशा में फैलती हुई सूरज की लाली की ओर देखने लगे। फिर एक दृष्टि हरियाली से लदे जंगलों, चमकती नदियों और घास-फूस से छाई झोंपड़ियों पर डालकर बोले—मैं इस सबको देश कहता हूँ। इस देश की धरती पर बसने वाले, देश की मिट्टी को जोत-बोकर सम्पन्न बनाने वाले मेरे देश-बन्धु हैं। जो कोई उनका बाल भी बाँका करता है, उनके जीवनक्रम में व्यवधान डालता है वह मेरे देश का कट्टर दुश्मन है।

इतना कहकर वे चुप होगये और प्रकृति के सौन्दर्य-रस का पान करने लगे। जब अघा गये तो बोले—जनरल! कईबार मेरे मन में यह प्रश्न

उठता है कि इस धरती पर इतनी हँसी-खुशी और आनन्द के होते हुए भी आदमी लड़ना क्यों चाहता है? क्यों शान्ति के बदले युद्ध और विग्रह में उसे सन्तोष मिलता है? क्या तुम्हारे स्काटलैण्ड में इसतरह के पहाड़ नदियाँ और जंगल नहीं हैं?

'हैं क्यों नहीं, इनसे भी सुन्दर हैं।'

'फिर यहाँ क्यों आये हो।'

'पूरी बात तो मैं भी नहीं जानता पर सुना है कि वहाँ की आबादी बहुत बढ़ गई है।'

'जब मैं वहाँ था तो मैंने भी इसीतरह की बात सुनी थी। लेकिन इसके लिए लड़ाई-झगड़ा करने की क्या जरूरत है? यहाँ आकर शान्ति से भी तो रह सकते हो। बिना झगड़ा-फसाद किये रहने के लिए मकान बनाकर रहो, तुम्हें कौन मना करता है? खाली रहने के लिए साम्राज्य-लिप्सा और दूसरे देशों को गुलाम बनाने की क्या जरूरत है? तुम्हारे देशवासियों को ही नहीं परन्तु युद्ध-पीड़ित समस्त मानव जाति को ही कोई यह क्यों नहीं समझाता कि पृथ्वी विशाल है। उसकी छाती पर बसने के लिए काफी स्थान खुला पड़ा है। इस वसुन्धरा के गर्भ में अक्षय भण्डार भरे पड़े हैं और उसकी खनिज सम्पति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। फिर रहने की जगह और खाने-पहिनने की वस्तुओं के लिए ये लड़ाइयाँ क्यों? माँ-बाप और अनाथ-बेवाओं के ये आँसू क्यों? यह लूट-पाट, मार-पीट और आगज़नी क्यों?

यह कहते-कहते वासुदेव के चेहेरे पर जो अकथनीय वेदना उभर आई थी उसे जनरल आज भी नहीं भूले थे।

और उसी दिन से लोगों को यह बात समझाने का उन्होंने सङ्कल्प ले लिया था। वासुदेव की कैद से लौटने के बाद पहला ही काम उन्होंने यह किया कि फौजी बारकों में इसाई धर्म के प्रचार के लिए जाना बन्द

कर दिया, और वनवासियों में पादरियों की ओर से जो इसाई-धर्म का प्रचार कार्य किया जाता था उससे भी अपने आप को अलग कर लिया। इतना करने के बाद उन्होंने जिस देश का शोषण उनके देशबन्धु कर रहे थे उस देश की आत्मा को पहिचानने और उससे साक्षात्कार करने का प्रयत्न शुरू किया। क्योंकि उस देश की आत्मा को पहिचाने बिना उसमें घुल-मिल जाने का अन्य कोई उपाय भी तो नहीं था।

उन्होंने एक सिख सिपाही से ग्रन्थसाहब पढ़ना शुरू किया। मौलवी साहब उन्हें कुरानशरीफ पढ़ाने लगे। एक महाराष्ट्रीय शास्त्री जी देवभाषा के अनन्त ज्ञान-भण्डार का उन्हें परिचय करवाने लगे। इसतरह पिछले छह वर्षों से जनरल डेनियल वासुदेव के बतलाये मार्ग पर चल रहे थे। जैसे-जैसे समय बीतता गया उनका विश्वास पक्का होता गया कि जिस देश और जिस धर्म की वह निन्दा करते रहे वह देश और धर्म सर्वथा कापुरुषों का देश और धर्म नहीं है और ठीक भी था। इस देश ने भी चन्दावत, राठोड़, दुर्गादास और प्रतापसिंह जैसे माँ के लालों को पैदा किया था। इस देश में अभी कल ही छत्रपति शिवाजी, समर्थ रामदास, अर्जुनदेव और तेगबहादुर जैसे स्वाधीनता के उत्कट पुजारियों का डंका बज रहा था। सेंट पॉल और सेंट फ्रान्सिस ऑफ एसिसी से मिलते-जुलते सन्त तुकाराम, गुरु नानकदेव, कबीर और सहजानन्द, जैसे साधु-महात्मा भी इस मूर्च्छित देश की झोंपड़ियों में जन्म ले चुके थे। रानी एलिजाबेथ से भी अधिक प्रतापवान् और पुण्यात्मा प्रातःस्मरणीया महारानी अहिल्याबाई यहीं पैदा हुई थीं। रोमन और ग्रीक नारियों से भी अधिक शीलवती राजपूत वीरांगनाओं की यहाँ कमी नहीं थी। मिलान और नात्रेदाम व पेरिस के देव-मन्दिरों का गौरव भी जिनके आगे फीका पड़ जाय ऐसी अजन्ता और एलौरा की गुफाएँ, वेरुल, देल-वाड़ा और ताजमहाल की इमारतें यहाँ हैं। ज्ञानियों में श्रेष्ठ शंकराचार्य, बुद्धों में सर्वश्रेष्ठ भगवान तथागत, भक्तशिरोमणि चैतन्य महाप्रभु, कविकुल गुरु कालिदास और भवभूति, राजाओं में श्रेष्ठ नृपति देवानांप्रिय अशोक

और राजनीति में कुशल चाणक्य इस प्राचीन राष्ट्र की गोद में खेल चुके हैं। जब यूरोप के अधिकांश देश बर्बर अवस्था में से गुजर रहे थे यहाँ के जंगलों में ऋषि-मुनि वेद और उपनिषद् के सूत्र गारहे थे। भगवान कृष्ण के वैष्णवी संकल्प, लोकसंग्रह के लिए किये गये योगीराज नीलकण्ठ के विषपान, राम-सीता की लोकोत्तर प्रतिज्ञाओं, भीष्म पितामह द्वारा की गई आर्य संस्कृति की उदात्त कल्पना, भगवान वेदव्यास का वह दर्शन जो प्राणि-मात्र के भले के लिए है और शुक्राचार्य की मृत्युञ्जयी ज्ञान-दीक्षा पर इस राष्ट्र की नींव रखी गई है। और इसीलिए अपने और पराये लोगों द्वारा की गई मर्मान्तक चोटें खाकर भी यह राष्ट्र जीवित खड़ा है।

ज्यों-ज्यों यह बात स्पष्ट होती गई डेनियल का इस देश के प्रति जो खयाल चला आता था वह भी बदलता गया। धीरे-धीरे स्थिति यह होगई कि उन्हें इस देश की बुराइयाँ दिखना बन्द होगयीं और अब इंग्लैण्ड भी पहले के समान श्रेष्ठतर देश नहीं रह गया। विश्व-नागरिकता की उदात्त भावना उनके विचारों में प्रस्फुटित होने लगी। जिस भावना को आत्मसात् करने के लिए लोगों को सम्पूर्ण विश्व के सुन्दर और असुन्दर स्वरूप की एकान्त आत्मीयता के साथ अनुभूति करना होती है और फिर भी जो आत्मबोध बिरलों के ही भाग्य में लिखा होता है वह अब उनके लिए हस्तामलकवत् होगया था।

आज की प्रत्यूष वेला में रामायण के उस मधुर पाठ को फिर से सुनकर उनके मन में वे सब सुखद-संस्मरण ताजा होउठे थे। जनरल डेनियल नीचे उतरे और तहखाने की ओर चल दिये। सवेरे के झुट-पुटे में युवक शेखर एक हाथ में बंशी लिये चहल-कदमी करता हुआ सुन्दरकाण्ड के श्लोक गारहा था।

जनरल ने सीखचों के सामने खड़े होकर पूछा—कहाँ सीखा है यह रामायण का पाठ?

जनरल को सामने देखकर शेखर क्षणभर के लिए स्तंभित रह गया। उसे लगा कि उसकी आवाज से ही जनरल की नींद में बाधा पड़ी है।

उसने उत्तर दिया—यदि मेरे गाने से आपकी नींद में बाधा पड़ी हो तो कृपया क्षमा करें। रोज सवेरे उठकर मुखाग्र-पाठ की मेरी बुरी आदत पड़ गई है। कल से इस बात का खयाल रखूँगा।

उसके इस सहज संकोच और विनयशीलता से जनरल को मन ही मन बड़ी प्रसन्नता हुई। बोले—नहीं, नहीं। मुझे तो बड़ी प्रसन्नता हुई सुनकर। कहाँ सीखा है आपने यह स्तोत्र-वाचन?

'बचपन में अपनी माताजी के गुरुदेव से सीखा था।'

'क्या नाम है गुरुदेव का?'

'गुरुवर्य श्रीवासुदेव महाराज।'

'वासुदेव? वही वासुदेव तो नहीं जिन्हें छह वर्ष पूर्व......'

'जी हाँ वही वासुदेव, जिन्होंने आपकी सेवा-सुश्रूषा की थी और जिन्हें छह वर्ष पूर्व आपकी सरकार ने फाँसी टाँग दिया है।'

'आपने यह सब उन्हीं से सीखा है?'

'जी हाँ, बरसों पहले की बात है। तब मैं बच्चा ही था। वह मेरे धर्मपिता भी थे।'

'उनके एक कन्या भी थी न?'

'जी हाँ, थी और अब भी है?'

'इस समय वह कहाँ है?'

'क्या कीजियेगा पूछकर? कहीं पिता की बाकी रहगई सजा तो उसे देने का विचार नहीं है?'

'नहीं भाई ! मैं तो सिर्फ कृतज्ञतावश पूछ रहा था। उन लोगों ने बड़े प्रेम से मेरी दवा-दारू कर मुझे बचाया था। यही समझो कि उन्हीं की बदौलत आज जिन्दा खड़ा हूँ।

'अभी वह हमारे यहाँ माताजी के पास है।'

'उचित स्थान पर ही है।' फिर एक नजर तहखाने के अन्दर डालकर बोले—अन्दर पानी भर गया मालूम पड़ता है।

'जी हाँ, बारिश का पानी सलाखों से अन्दर आगया, इसीलिए तो जल्दी उठ गया और आपको भी जगा दिया।' और शेखर हँस दिया।

जनरल इस तरह सिर खुजलाते हुए चले गये मानों शेखर की उस प्रसन्न मुद्रा ने उन्हें शर्मिन्दा कर दिया हो।

*　　　　*　　　　*

शेखर कोठरी में चक्कर लगाता रहा। सवेरा होगया था। शौच मुख-मार्जनादि के लिए बाहर निकालने को अभी सिपाही नहीं आया था। उसीकी प्रतीक्षा थी कि एक युवती आती दिखाई दी। यह वही युवती थी जो कल जनरल के पास बैठी चाय बना रही थी। पास आकर सलाखों में से दातुन अन्दर खिसकाती हुई बोली—यदि तुम जनरल के साथ चाय का निमन्त्रण स्वीकार कर सको तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी।

शेखर ने विस्मय पूर्वक पूछा—मुझसे कह रही हैं ?

'हाँ तुम्हीं से कह रही हूँ। तुम्हीं न नरसिंगपुर के राजकुमार हो ?'

शेखर के जवाब देने से पहले ही वह वहाँ से चली भी गई। मानों शेखर की स्वीकृति-अस्वीकृति की उसके मन कोई कीमत ही न हो। शेखर के मन में आया कि बुलाकर कहदे माफ कीजियेगा, मैं आ न सकूँगा। फिरंगियों के हाथ की चाय वह कैसे पी सकेगा ? लेकिन दूसरे ही

तथा यह सोचकर कि शायद यह अशिष्टता समझी जाय चुप रह गया। जाने न जाने के उसके निर्णय से पहले ही वह युवती तो अदृश्य भी होगई थी।

हस्बमामूल वक्त पर सिपाही ने आकर हवालात का दर्वाजा खोला और शेखर बाहर निकला। बाहर आते ही उसने अर्दली के हाथ अपने कपड़े मंगवाये। फिर हाते के नल के नीचे नहाकर वह तहखाने में बन्द होने जा ही रहा था कि जनरल की लड़की ने आकर कहा—चलो, जनरल तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

बिशाल दीवानखाने में चारों ओर कोच पड़े थे और बीच में की खाली जगह में एक गोल टेबल के चारों ओर कुर्सियां रखी गईं थीं। जब शेखर वहाँ पहुँचा कुर्सियों पर जनरल, उनकी बेटी और वह अंग्रेज़ युवक जिसे कल शेखर ने पीटा था, बैठे हुए थे। शेखर को उस अंग्रेज़ युवक की उपस्थिति से इतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना प्रवेश द्वार के ठीक सामने भगवान तथागत बुद्ध की मूर्ति को देखकर हुआ। मूर्ति के नीचे गुरु नानकदेव और ईसामसीह की तस्वीरें रखी हुई थीं। एक सैनिक अफसर और सो भी सर्वोच्च अफसर के दीवानखाने में बुद्ध की मूर्ति का होना सच ही आश्चर्यजनक बात थी। उसके पहुँचने पर जब जनरल ने उठकर उससे हाथ मिलाया तब यही प्रश्न शेखर के मन में चक्कर लगा रहा था।

'कल मैं तुम्हें पहचान न सका।' जब शेखर कुर्सी पर बैठ गया तो जनरल ने कहा—और आज भी यदि तुमने सवेरे-सवेरे जगा न दिया होता तो पता नहीं कबतक पहचान न पाता?

चाय तैयार करती हुई युवती ने कहा—पिताजी ने सुबह ही मुझे बतलाया कि तुम्हारे रामायण के पाठ से कैसे वह जल्दी उठ बैठे।

'यह मेरी पुत्री एमिली है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे समाज-शास्त्र का अध्ययन कर हाल ही हिन्दुस्तान आई है। और यह हैं मि०

मूरहेड। कल की घटना को भूलकर दोनों एक दूसरे को माफ करदो इसीलिए मैंने इन्हें भी बुला लिया है।' जनरल ने उपस्थित व्यक्तियों से शेखर का परिचय करवाते हुए कहा।

शेखर अंग्रेज़ी तौर-तरीकों और दीवानखानों में की जाने वाली औपचारिक बातों से सर्वथा अनभिज्ञ था; इसलिए उसने सकुचाते हुए कहा—क्षमा तो मुझे ही माँगना चाहिये, क्योंकि इन पर आक्रमण तो मैंने ही किया था।

इतना कहकर वह चुप होगया और उसने मूरहेड की ओर देखा। उसका चेहरा गुहा-मानव से ही अधिक मिलता-जुलता था। इस समय वह शेखर और जनरल की बातचीत न सुनने का ढोंग-सा करता हुआ अंग्रेज़ी में एमिली के साथ बातचीत कर रहा था।

'मि. मूरहेड २६ वीं पलटन के कप्तान हैं। बड़े ही होशियार गोलन्दाज हैं। मि. जानसन का इरादा तुम्हें इन्हीं की पलटन में भर्ती करने का है।' जनरल मूरहेड की प्रशंसा कर रहे थे, परन्तु वह एक हठीले रीछ की भाँति इस ओर ध्यान दिये बिना एमिली के साथ बातचीत करने में मशगूल हो रहाथा। जनरल नें आगे कहा—लेकिन तुम्हें चाय पर बुलाने का एक दूसरा कारण भी है। मैं श्री वासुदेव का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और तुम्हारे आगे उस कृतज्ञता को प्रगट करने के लिये ही मैंने तुम्हें बुलाया है।

लेकिन शेखर का ध्यान जनरल की बात की ओर इतना नहीं था जितना भरी जानेवाली चाय की प्यालियों की ओर। जल्दी ही चाय की एक प्याली और दूसरा भक्ष्य-अभक्ष्य उसके सामने भी रखा जायगा और उसे खाने-पीने के लिए कहा जायगा। और यह विचार उसे अन्दर ही अन्दर कँपाये दे रहा था।

और जहाँ बाघ का डर था वहीं साँझ भी हुई। एमिली ने चाय की प्याली, बिस्कुट की प्लेट और डबलरोटी का टुकड़ा उसके सामने रखते

हुए कहा–शुरू करो। शेखर बड़े असमंजस में पड़ गया। उसकी समझ में नहीं आया कि वह क्या करे और क्या न करे? मारे दुःख और डर के उसका चेहरा फक् होगया। दुःख तो इस बात का था कि मेजवान के ही घर में उसका अपमान करना पड़ेगा और डर इस बात का था कि व्यर्थ ही एक झगड़ा मोल लेना पड़ जायगा।

उसने दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा–क्षमा कीजिये। मैं इसमें से कुछ भी नहीं ले सकूँगा।

एमिली और मूरहेड तो आँखें फाड़े उसे देखते ही रह गये। परन्तु जनरल ने शीघ्रतापूर्वक स्थिति को सँभालते हुए स्पष्टीकरण किया–यह सब तो तुम ले ही सकते हो। मैं जानता था कि तुम आने वाले हो इसलिए मैंने टेबल पर से 'चिकन्स' आदि पहले ही हटवा दिये हैं। बिस्कुट, डबलरोटी और मक्खन में तो तुम्हें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

पूरी बात तो शेखर की समझ में नहीं आई। वह सिर्फ इतना ही समझ सका कि उसके आने से पूर्व इस सज्जन अफ़सर ने उसकी भावनाओं का ख्याल कर यहाँ से कोई अभक्ष्य पदार्थ हटवा दिया है। पता नहीं वह अभक्ष्य पदार्थ क्या था? गोमांस भी होसकता था।

उसने फिर विनम्रता और सरलता पूर्वक कहा–मैं ब्राह्मण हूँ। इसमें की एक भी वस्तु स्वीकार नहीं कर सकूँगा।

मूरहेड ने एकदम खड़े होकर कहा–एमिली, यह तो सरासर हमारा अपमान है। काला आदमी फिर हमारा अपमान कर रहा है। अपना अपमान मैं भूल सकता हूँ, लेकिन जनरल का अपमान कभी नहीं भूल सकता। अभी मेसमें जाकर सबको इसकी सूचना देता हूँ। ऐसे सूअरों को अपनी सीढ़ी ही क्यों चढ़ाते हो?

एमिली भी मूरहेड के साथ उठ गई थी। उसे भी शेखर पर गुस्सा आरहा था। यदि ऐसा ही था तो निमन्त्रण क्यों स्वीकार किया? जनरल ने अपनी उदारता के कारण इतना बड़ा सम्मान दिया था परन्तु इस अकृतज्ञ

आदमी को अपने ही मेजबान के मुँह पर अपनी पवित्रता की शेखी मारते और मेजबान की जाति को छोटा बतलाते ज़रा भी शर्म नहीं आई थी।

स्वयं शेखर को भी दुःख होरहा था। लेकिन निस्तार का कोई मार्ग नहीं दीख रहा था। गोभक्षकों के हाथ की चाय भी वह कैसे पी सकता था? उसने रुष्ट होकर जाते हुए मूरहेड का हाथ पकड़कर अनुनय भरे स्वर में कहा—मैं आप से क्षमा माँगता हूँ। यदि आप इसीतरह चले गये तो मुझे और जनरल को बड़ा ही दुःख होगा।

'मैं तुम काले आदमियों की धूर्तता अच्छी तरह समझता हूँ।' दूसरी-बार उसके मुँह से 'काले आदमी' सुनकर शेखर ने उसका हाथ छोड़ दिया, और मूर्ति की तरह स्थिर खड़ा रह गया। जब मूरहेड बाहर चला गया तो जनरल के पास जाकर शेखर ने धीरे-से कहा—मुझे बड़ा ही खेद है कि मेरी बेवकूफी की वजह से आपके नाश्ते में खलल पड़ा। यदि पहले ही इन्कार कर देता तो यह समय काहे को आता? मुझे क्षमा कीजियेगा।

लेकिन जनरल तो इस बीच निश्चिन्त होकर चाय पी रहे थे। शेखर को चिन्तित देखकर हँसते हुए बोले—मेरे नाश्ते में तो किसी तरह का खलल नहीं पड़ा; क्योंकि मैं तुम्हारे जाति और छूआछूत विषयक विचारों से अच्छी तरह परिचित हूँ। अबकी बार तुम्हें बुलाऊँगा तो किसी ब्राह्मण रसोइये से सारी तैयारियाँ करा लूँगा। अपने-अपने खयाल ही तो हैं। मुझे तो इसमें अपमान जैसी कोई बात नहीं मालुम पड़ती। परन्तु तुम एमिली को मनाओ।

शेखर एमिली के पास जाकर बोला—मैं न तो तुम्हारे इतना पढ़ा-लिखा हूँ न तुम्हारे रीति-रिवाज ही जानता हूँ। सरस्वतीदेवी मुझसे रूठी हुई हैं, लेकिन भगवान ने तुम्हें खूब ज्ञान दिया है इसलिए उदारतापूर्वक मेरी गलती को क्षमा कर देना।

और यह कहकर वह दर्वाज़े की ओर मुड़ा। एमिली को अब शेखर की सरलता में कोई सन्देह नहीं रह गया था। दूसरे, वह मूरहेड की

उद्दण्डता पर भी मन ही मन लज्जित होरही थी। इसलिए शेखर के साथ दर्वाज़े तक आई और जब वह सीढ़ियाँ उतरने लगा तो बोली–चाय पी ही लेते तो क्या जाति चली जाती?

शेखर ने मुड़कर उत्तर दिया–शायद चली भी जाती और यदि जाति-च्युत होजाता तो उसका तो प्रायश्चित भी कर सकता था। लेकिन अपने घर बुलाकर अतिथि का अपमान करने, उसीके मुँह पर उसके हीन वर्ण होने का बारम्बार उल्लेख कर हँसी-मजाक करने के पाप का प्रायश्चित तो ढूँढ़े भी न मिलता और इसीलिए मैं चाय न पी सका।

४

अपनी कोठरी में लौट आने के बाद शेखर ने महसूस किया कि यदि उसने इतनी कड़ी बात न कही होती तो ज्यादा अच्छा होता। क्योंकि उसका जवाब सुनते ही क्षणभर के लिए एमिली के चेहरे का रंग उड़ गया था। इसलिये दुबारा अवसर मिलने पर इस भूल को सुधारने का उसने मन ही मन निश्चय-सा कर लिया।

दूसरे दिन सिपाही ने कोठरी का ताला खोलकर दातुन देते हुए कहा—जनरल की लड़की दे गई है। पूरे चार दिन तक यही क्रम चलता रहा। कभी कदास जनरल आजाते और थोड़ी देर इधर-उधर के कुशल समाचार पूछकर लौट जाते थे।

पाँचवें दिन सवेरे जनरल ने आकर कहा—आज तुम्हें नाश्ते के लिए बुलाकर तुम्हारे और एमिली के बीच समझौता कराने का मैंने तै कर रखा था; लेकिन वह तो कल सुबह से ही नीचे मिशन के दवाखाने में चली गई है और अभीतक लौटकर आई नहीं है। इसलिये चाहते हुए भी तुम्हें निमन्त्रण नहीं दे सकता।

'कहाँ गई हैं वह?'

'जंगल में यहाँ से पाँचेक मील के फासले पर मिशन की ओर से हमारा एक अस्पताल और मदरसा है। एमिली हर आठवें दिन वहाँ जाती है। उसकी तो बड़ी इच्छा है कि वहीं रहकर काम की देखभाल करे; परन्तु मुझ बूढ़े आदमी को किसके भरोसे छोड़कर जाय? कल सुबह से

गई हुई है, कल शाम को ही उसे लौट आना चाहिये था। अवश्य ही किसी आवश्यक काम की वजह से रुक गई होगी। अभी पता चल जायगा। पर उसकी अनुपस्थिति के कारण तुम्हें बुलाने की मेरी मन की मन में ही रह गई इसका मुझे बड़ा दुःख है।

'मैं तो स्वयं ही लज्जित हूँ कि मेरी वजह से आप सब लोगों को दुःखित होना पड़ा। एमिली से कह दीजियेगा कि सारा सम्बन्ध केवल खाने-पीने तक ही नहीं है। अपने धार्मिक विश्वासों के कारण उनके हाथ की बनी चीज़ नहीं खासकता, इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि मैं उनका अपमान कर रहा हूँ। उनके मन का समाधान तो किसी दिन उनका सन्मान करके ही कर सकूँगा। आज तो कैसे कह दूँ ?' और अर्दली से अपना सामान उठवाकर वह अपने कमरे में चला आया। कमरे के दरवाज़े पर उसका और उसकी सैनिक टुकड़ी का नम्बर लगाया जाचुका था।

वह काले बरदारों की देशी पलटन में भर्ती किया गया था। सामान रखकर वह अपनी टुकड़ी की ओर जा ही रहा था कि रास्ते में करतारसिंह से भेंट होगई। पाँचों दिन उसी ने खाना भिजवाया था। उसने शेखर को सलाम किया और रोककर धीरे-धीरे बातें करने लगा—हमें सारी बात का पता चल गया है। आपको जानबूझकर मूरहेड के हाथ के नीचे तैनात किया गया है ताकि वह आपको परेशान कर सके। लेकिन घबराने की कोई जरूरत नहीं है। ड्यूटी के समय आप किसी तरह की गफलत मत करना। ज़रा भी इधर-उधर किया तो वह खोपड़े पर सवार हो जायगा।

'यह मूरहेड है कौन ?'

'विलायत के किसी बड़े भारी ज़मींदार का बेटा है। अव्वल नम्बर का बदमाश है। बाज लोगों के मुँह से तो यह भी सुना है कि जनरल की लड़की से उसकी शादी होने वाली है।'

'एमिली के साथ ?'

'हाँ; वही, जो उस दिन बैठी चाय बना रही थी। आपने तो उसे कई-बार देखा होगा। आज खाना आपकी कोठरी पर नहीं भेजूँगा। हमारे साथ लंगर में ही खाना। सब सिपाही आपसे मिलने के लिए उत्सुक हैं। और दूसरे भी कुछ काम हैं।'

शेखर परेड के मैदान की ओर चला गया। वहाँ उसकी टुकड़ी कवायद कर रही थी। मूरहेड आज छुट्टी पर था। उसकी जगह एक दूसरा बिना मूछों वाला गोरा जवान कवायद करवा रहा था। शेखर के लिए तो वह सारी फौजी कवायद हँसी-खेल थी। इसतरह कील मारना और घोड़े कुदाना तो वह कभी का सोहनसिंह से सीख चुका था। शेखर की फुर्ती और सफाई देखकर टुकड़ी के बड़े-बूढ़े देशी सिपाही तक खुश होगये। तीन घण्टे की कमर तोड़ कवायद के बाद 'डिसमिस' का हुक्म दिया गया और सब अपनी-अपनी कोठरियों की ओर चल दिये। शेखर भी करतारसिंह की लाइन का पता पूछता हुआ उधर चल दिया। एक साधारण-से बड़े कमरे में बड़ी-सी मेज़ पर सफेद दस्तरखान बिछाये दस-पन्द्रह सिपाही बैठे उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

शेखर के अन्दर प्रवेश करते ही सबने खड़े होकर उसे फौजी ढंग से सलाम किया और करतारसिंह ने लेजाकर उसे बीच की कुर्सी पर बैठा दिया। फिर धीरे से उसके कान में कहा—एकदिन इसीतरह राजा बनाकर भी बैठाएँगे।

फिर भोजन करते-करते करतार ने सभी से परिचय करवाया।

'यह बाईं ओर बैठे ओरछा के बुन्देले राजपूत हैं। प्रतापसिंह नाम है। फौज में सूबेदार के ओहदे पर हैं। उनके पड़ोस में घुँघराले बालों वाला वह जवान रामचन्द्र मालुसरे मराठा है और डिप्टी कप्तान है। और वह जो कोने में बैठे हैं न वह तात्या साहब हैं।' अन्तिम शब्द करतार ने बहुत ही धीमे स्वर में कहे थे।

शेखर ने चौंककर उधर देखा। तात्या साहब को वह पहचानता था। अर्जुन काका जब कभी छठे-छमाहे घर आते थे तो उनके साथ उन्हें भी देख चुका था। तात्या साहब की आँखों में ज्वाला की प्रच्छन्न लपटें-सी उठ रही थीं। चेहेरे पर दृढ़ निश्चय की छाप थी। कपाल प्रशस्त और ऊँचा था। डाढ़ी नुकीली और लम्बी थी। पहुँचे हुए योगी की निर्लेपता और शान्ति का उनके चेहरे पर साम्राज्य था। उनका नाम सुनते ही शेखर अपनी जगह से उठा और उनकी चरण-रज लेने के लिए आगे बढ़ा।

तात्या साहब ने उसका हाथ पकड़ लिया और हाँ-हाँ, मैं तो...कहकर बहुतेरा रोका परन्तु उनकी चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ाने के बाद ही शेखर ने उन्हें छोड़ा और फिर बोला—इतने बरसों में एकबार भी दर्शन देने की कृपा नहीं की!

'मैं इधर था ही नहीं। बहुत दूर ठेठ गुजरात की ओर जा निकला था। बीच में दो-एक बार आया भी था परन्तु न तो तुम मिले और न सुभगा ही।'

फिर कमरे में धीरे-धीरे कनफुसकियाँ होने लगीं। किले में बारूद का जखीरा कितना था, गोरी फौज का कौन-कौन अफसर छुट्टी पर था, नई भर्ती कबसे होने वाली थी और उसमें कितने आदमी लिये जाने वाले थे, जंगल में कहाँ—कहाँ चौकियाँ बनाई जासकती थीं आदि सभी विगतों पर शामतक चर्चा होती रही। इस बीच तात्या साहब को प्रणाम करने के लिए सिपाहियों का आना-जाना भी लगा ही रहा। वह भी सभी को अम्बाला, पेशावर, लखनऊ, दिल्ली आदि के समाचार बतलाते हुए कहते थे—सुना जाता है कि निजाम की ओर हमने जो दूत भेजे थे वे पकड़े गये हैं और सरकार को हमारे षडयन्त्र का पता चल गया है। इसलिए सम्भव है कि वह हमारी वफादारी की परीक्षा ले। यदि ऐसा अवसर आये तो भूलकर भी सामना मत करना। अन्तिम तारीख तक वफादार बने रहना।

कभी अपने ही किसी साथी को गोली मारना पड़े तब भी मत हिचकिचाना। यदि फिरंगियों को ज़रा भी भनक पड़ गई तो इस क़िले के साथ ही साथ सारे बुन्देलखण्ड की बाजी भी बिगड़ जायेगी।

जब सभा बरखास्त हुई तो शेखर ने करतार से पूछा—आज मूरहेड परेड में दिखाई नहीं दिया?

'दिखता कहाँ से? वह तो खोज में गया है।'

'किसकी?'

'जनरल की उसी छोकरी की। रघुवीर उसे उड़ा ले गया है।'

'रघुवीर! एमिली को उड़ा ले गया है?'

'हाँ।'

'शेखर वहाँ से सीधा जनरल के बंगले पर पहुँचा।

जनरल अपनी सैनिक वर्दी पहिन रहे थे। शेखर उन्हें सलाम कर खड़ा हो गया।

'मैं इजाज़त चाहता हूँ।'

'बोलो।'

मिस एमिली की तलाश में जाना चाहता हूँ।'

'मूरहेड गया है; परन्तु अभीतक कोई खोज-खबर नहीं इसलिये मैं स्वयं जाने की तैयारियां कर रहा हूँ।'

'पहले मुझे कोशिश कर लेने दीजिये। यदि कल सबेरे इस समय तक लौटकर न आजाऊँ तब आप निकलियेगा।'

'तुम्हें संकट में नहीं डालना चाहता। फिर तुम्हारी माँ ने तुम्हें अमानत के रूप में यहाँ भेजा है।'

'लेकिन मैं अब नाबालिग नहीं हूँ ।'

'अच्छी बात है । परन्तु जानसन से मिलकर आदमी साथ में ले जाना । परमात्मा करे तुम्हें सफलता मिले ।'

'ज्यादा आदमियों की ज़रूरत नहीं । सिर्फ अकेला करतारसिंह काफी होगा ।' फिर दौड़ा हुआ अपने कमरे पर आया । फुर्ती से रीछ के चमड़े का बना ओवरकोट पहिना, जेब में रिवाल्वर रखा । कारतूस की पेटी गले में डाली । रहमान से वल्लम और बन्दूक लेने के लिये कहकर अस्तबल में घोड़ा लेने पहुँचा ।

फिर करतार की लाइन के बाहर ही घोड़े को खड़ा रखकर वहीं से बैठे-बैठे उसे आवाज़ देकर बुलाया ।

करतार ने बाहर आकर पूछा–इस समय कहाँ चले ?

'एमिली को खोजने जारहा हूँ । तुम भी साथ चलते हो न ?'

सुनकर करतार तो विस्मयविमूढ़ ही रह गया । उसकी समझ में नहीं आया कि शेखर और एमिली का ऐसा क्या सबन्ध है जो वह उसे ढूँढ़ने जारहा है । फिर पास आकर धीरे से बोला–परन्तु आपके जाने की ज़रूरत ही क्या है ? यदि कोई उड़ाकर ले गया तो हमारी बला से ।'

'ज़रूरत होने न होने की बात तो रास्ते में बतलाऊँगा। अभी झट से तैयार होकर मेरे साथ चले चलो । मैं जनरल से कहता आया हूँ कि करतारसिंह को साथ ले जारहा हूँ ।'

'परन्तु उसे उड़ाने वाला तो हमारा ही अपना आदमी है ।'

'हमारा आदमी है ? किसने कहा कि हमारा आदमी है ?'

'जी हाँ, रघुवीर हमारा ही आदमी है ।'

'कौन कहता है ?'

'मेरी बात का यकीन न हो तो तात्या साहब से पूछ देखिये ।' करतार ने उसके कान में कहा ।

वह फुर्ती से घोड़े पर से नीचे कूद पड़ा और एक ही छलांग में कमरे के अन्दर पहुँच गया ।

तात्या साहब बैठे नक़शा बना रहे थे । शेखर ने उन्हें साष्टांग प्रणाम कर पूछा—क्या जनरल की लड़की को उड़ाने का षडयन्त्र हमारी ओर से किया गया है ?

'जनरल डेनियल आज यहाँ से चले गये हैं, वही पूछ रहे हो क्या ?'

'जी हाँ ।'

'नहीं तो ।'

शेखर ने करतार की ओर देखकर कहा—बस, होगया न इतमीनान ? बोलो चलते हो ?

अब तात्या साहब ने नक़शे पर से आँखें उठाते हुए पूछा—कहाँ जाने की बात कर रहे हो ?

'एमिली की तलाश में ?'

'तुम्हारे जाने की क्या ज़रूरत है ? गोरी फौज है तो सही जाने के लिए । फिर हम क्यों जायें ?' तात्या साहब ने कहा ।

'मैं भी यही कहता था ।' करतार ने उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा ।

'हमारे जाने की कोई ज़रूरत नहीं है ? क्या कह रहे हैं आप ? स्त्री का अपहरण करने वाले आततायी को सजा देना हमारा नहीं तो किसका काम है ? या फिर अपहरण करने वाला आदमी हमारे दल का है इसलिए उसके कुकृत्य की उसे कोई सजा ही नहीं दी जाय ?'

शेखर की विह्वलता का कारण ढूँढ़ निकालने के लिए तात्या साहब ने थोड़ी देर तक उसके चेहरे की ओर टक लगाकर देखा और फिर बोले—आततायी को सजा देने का काम हमारा नहीं सरकार का है और सरकार के पास आदमियों की कोई कमी नहीं है। फिर हमारी जिन्दगी इतनी सस्ती नहीं है कि इस ज़रा-सी बात के लिए उसे खो दें। यदि हमें मरना ही है तो हम अपना काम करते-करते मरेंगे।

अन्तिम वाक्य पर तात्या साहब ने काफी ज़ोर दिया था।

'लेकिन यह तो बड़े ही कमीनेपन की बात है। इस पाप की सजा तो उसे मिलना ही चाहिये। साथ ही यहाँ तो लोगों का यह ख्याल भी है कि खुद हमारी अपनी सम्मति इस काम में है।'

'रघुवीर तो है ही चोट्टा। उससे हमें कुछ लेना-देना नहीं। वह जाने उसका काम जाने। उसी तरह जनरल जाने उसकी लड़की जाने। हमें किसी से मतलब ?'

'मतलब क्यों नहीं ? यदि आपकी उपस्थिति में रघुवीर ऐसा करे तो क्या आप उसे रोकेंगे नहीं ?'

'हर समय और हर उम्र में सैद्धान्तिक चर्चाएँ नहीं की जातीं कुँवर साहब ! मेरी तो यही सलाह है कि ऐसी न कुछ-सी बात के लिए अपनी जान जोखम में न डालें।'

'मैंने तो उसे छुड़ाने का बीड़ा उठाया है और उसे साथ लेकर ही लौटूँगा।' शेखर ने उन्हें फिर साष्टाँग प्रणाम किया और दरवाज़े की ओर मुड़ा।

तात्या साहब ने फिर कहा—लेकिन उस अंग्रेज़ लड़की की जान बचाने के लिए इतनी बड़ी गोरी फोज है तो सही। वह उसे बचा लेगी। तेरा

उससे क्या सम्बन्ध है ? फिरंगी लड़की के लिए क्यों अपनी जान जोखम में डालता है ?

'मैं दुश्मन गोरी हुकूमत का हूँ; गोरी लड़की का नहीं।' और वह लपकता हुआ बाहर निकल गया ।

उसके चले जाने के बाद तात्या साहब ने कहा—मर्द बच्चा है । करतार तू उसके साथ जा । मुझे वहाँ खतरा दिखलाई पड़ रहा है । आवश्यकता पड़ने पर रघुवीर को यह रूमाल दिखला देना ।

और उन्होंने करतार को एक सफेद रूमाल दिया, जिसके बीच में सौ पंखुड़ियों वाला एक लाल कमल बना हुआ था ।

करतार जब अपने घोड़े पर सवार हुआ तो शेखर और रहमान के घोड़े की टापों की गूँज शून्य में विलीन हो चुकी थी ।

५

शेखर को रघुवीर के अड्डे की कोई जानकारी नहीं थी । वासुदेव के दल के साथ उसने रघुवीर की ख्याति एक अचूक निशानेबाज के रूप में सुन रखी थी । लेकिन अर्जुन और वासुदेव की गिरफ्तारी के बाद जब सारा दल तितर-बितर होगया तो रघुवीर भी कहीं चला गया था । इधर चार-छह महीनों से उसका नाम फिर सुनाई पड़ने लगा था । लोगों का कहना था कि उसने ओरछा के जंगलों में डेरा डाल रखा है । लेकिन स्वप्न में भी किसी को यह ख्याल नहीं हुआ था कि वह ठेठ यहाँ तक आ पहुँचेगा ।

रहमान इस ओर की चप्पा-चप्पा जमीन से परिचित था । क़िले के फाटक से बाहर आते ही शेखर ने उससे कहा— दो नम्बर के मिशन अस्पताल की ओर चलो ।

शाम होगई थी । जंगल में अन्धेरा घिरने लगा था । अपने झुण्ड से बिछुड़ा हुआ कोई पशु हाँफता-काँपता हुआ भागा जारहा था । बाकी जंगल में सन्नाटा था । सिर्फ घोड़ों की टापों की गूँज और सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी । पिछली रात पानी बरसने के कारण पहाड़ी नालों में बाढ़ आगई थी और उससे घोड़े बिदककर अकसर काबू से बाहर होजाते थे । कभी-कभी बिजली कौंध जाती थी और तब सागवान का सारा जंगल भूतों की महफिल-सा मालूम पड़ने लगता था ।

जब वे मिशन अस्पताल के आगे पहुँचे तो पाया कि किसी ने तार की बागुड़ काट डाली है। अस्पताल का भवन अन्धेरा पड़ा था। शेखर अपने घोड़े की लगाम रहमान के हाथ में देकर बरामदे में पहुँचा। दीवाल पर गोलियों के निशान थे। दरवाज़ा कुल्हाड़ों की चोट से तोड़ा गया था। अन्दर सब कुछ अस्त-व्यस्त दशा में था। काँच की टूटी हुई बोतलें जमीन पर बिखरी पड़ी थीं। अलमारियों के किवाड़ भी तोड़ डाले गये थे। बीमारों की चारपाइयाँ तक साबुत नहीं छोड़ी गई थीं। शेखर ने ज़ोर से चिल्लाकर पूछा—कोई भीतर है? लेकिन उसकी प्रतिध्वनि गूँजकर रह गई। उसने फिर दुबारा पूछा—कोई भीतर है? और तीसरी बार अन्दर के कमरे में जाकर चिल्लाया—कोई भीतर है? लुटेरे कहाँ गये?

इस बार एक हलकी-सी आवाज़ सुनाई दी—मैं यहाँ हूँ। तुम कौन हो?

शेखर ने आवाज़ का अनुसरण कर पाया कि एक कोने में गुड़ी-मुड़ी हुआ कोई बूढ़ा पड़ा था। वह उसका हाथ पकड़कर बाहर खींच लाया और उससे पूछा—कैसे क्या हुआ और लुटेरे किधर को गये हैं?

बूढ़े ने हकलाते हुए जवाब दिया—डाकू कल शाम को आये थे। दरवाज़े भीतर से बन्दकर हमने और मेमसाहब ने उनका काफी देरतक मुकाबला किया। लेकिन वे दरवाज़े तोड़कर अन्दर घुस आये। हम बिलकुल निहत्थे थे; फिर भी मेमसाहब ने दवाइयों के शीशों से मार-मारकर तीन-चार डाकुओं के सिर फोड़ दिये। आखिर पाँव में गोली खाकर वह गिर पड़ीं और दुश्मन उन्हें घसीटकर ले गये।'

'किधर को ले गये?'

'यह तो मालूम नहीं मालिक। मैं तो अपंग और बूढ़ा हूँ। लेकिन सुबह लोगों के मुँह से सुना है कि डाकू बेतवा की गुफाओं में देखे गये थे।'

घोड़े पर छलांग मारते हुए शेखर ने रहमान से कहा—बेतवा की गुफाओं की ओर चलो।

'यहाँ से बीस कोस दूर है।'

'चले चलो।'

इधर कई दिनों से बेतवा की इन गुफाओं में लूट-पाट और मार-धाड़ करने वाले डाकुओं ने अपना अड्डा जमा रखा था। बेतवा नदी वहाँ दो पहाड़ों के बीच होकर बहती थी। नदी का पाट कहीं साधारण तालाब जितना चौड़ा था तो कहीं इतना सँकरा था कि हरिण इस पार से उस पार सहज ही कूदकर आ जासकते थे। इन सँकरी जगहों में पानी का बहाव इतना तेज़ था कि हाथी के लिए भी सँभलना मुश्किल होजाता था। नदीमें बाढ़ आने पर घाटी में जाने के सब रास्ते बन्द होजाते थे, क्योंकि जितने भी रास्ते थे वे सब नदी की धारा पर होकर ही जाते थे। जहाँ नदी एक छोटे-से तालाब की-सी शकल में होकर बहती थी उसके ठीक मुहाने पर गुफाएँ बनी हुई थीं। लोगों का कहना था कि नदी की धारा ने पहाड़ को काट-काटकर कालान्तर में ये गुफाएँ बनादी होंगी। मगर बाद में वहाँ आकर बसने वालों ने उन्हें काट-छाँटकर भव्य प्रासाद का रूप दे दिया था। गुफाओं तक ले जाने वाला रास्ता नदी के किनारे होकर जाता था और वह इतना दुर्गम था कि डाकुओं के सधे हुए घोड़े भी उसपर नहीं चल सकते थे। पैदल चलने वाले भी ज़रा-सा पाँव चूकते ही नदी की गहरी और तेज़ धारा में गिरकर हमेशा के लिए लोप होजाते थे।

शेखर और रहमान तेज़ी से घोड़े दौड़ाते अपने गन्तव्य की ओर बढ़े चले जारहे थे। कभी घोड़े पत्थरों से टकरा जाते थे और कभी साँप या चीते को देखकर बिदक उठते थे। चन्द्रोदय से पहले ही दोनों सवार गुफाओं तक पहुँच जाना चाहते थे अन्यथा उनके देखे जाने का डर था। लेकिन अन्धेरे के कारण वे अकसर रास्ता भटक जाते थे और यों देर पर देर होरही थी। रास्ते में यहाँ-वहाँ छितराई हुई झोंपड़ियाँ थीं। उनके निवासियों से पूछने पर कोई जवाब नहीं मिलता था। उलटे लोग उन्हें देखकर मारे डर के अपनी झोंपड़ियों में छिप जाते थे। मुट्ठी भर चाँदी

के सिक्के देने पर भी कोई आदिवासी उन्हें नदी तक पहुँचाने के लिए तैयार नहीं होता था ।

'जहाँतक आप टोप नहीं उतारेंगे ये आदिवासी सीधे मुँह जवाब भी न देंगे । ये आपको अंग्रेज़ समझते हैं । इसलिए डाकुओं का पता मालूम होते हुए भी हमें ग़लत दिशा बता देंगे ।'

शेखर ने फौरन टोप उतार लिया और घोड़े को ऐड़ जमाते हुए पूछा—वासुदेव इन्हीं गुफाओं में रहते थे न ?

'जी हाँ, काका साहब और उनके साथी इन्हीं गुफाओं में रहते थे । लेकिन उन दिनों का तो समाँ ही निराला था । वे कुछ डाकू-लुटेरे तो थे नहीं जनाब; जंगे आज़ादी के सिपाही थे। बस समझ लीजिए कि लड़ाई की ही फिज़ाँ थी । काका साहब की जंगल में एक दो नहीं पूरी बाईस चौकियाँ थीं । किसी की मजाल थी कि अन्दर चला आता ? देखते ही गोली मार देने का हुक्म था । मगर फिर भी कैदियों को कभी तकलीफ नहीं दी । और घायलों की तीमारदारी का पक्का बन्दोबस्त था । आपको तो मालूम ही है कि अपने जंडेल साब भी पकड़े गये थे । मगर वह खातिरदारी और तीमारदारी की गई कि घर पर भी क्या नसीब होगी ? और पूरे पन्द्रह दिन बाद आँखों पर पट्टी बाँधकर ठेठ अपने किले के फाटक पर लाकर छोड़ गये ।'

शेखर के मन में आया कि कहदे काका साहब ने बाप की जान बचाई थी और मैं बेटी की जान बचाने जारहा हूँ ।' पर मौन ही रहा ।

'लेकिन, जनाब, यह रघुवीर तो कम्बख्त हमेशा से ऐसे ही नापाक करम करता आया है । बस, पूरा चिड़ीमार समझिये ।' बूढ़ा रहमान बिना रुके अपनी दास्तान सुना रहा था ।

काफी दूर निकल आने के बाद उसने कहा—अब उतर जाइये घोड़े . यहाँ से आगे नहीं जासकते ।

दोनो ने अपने घोड़े एक पेड़ के तने से बाँध दिये । शेखर ने रिवाल्वर हाथ में ले लिया और दोनो नदी की रपट में उतरने लगे । चाँद निकलने की तैयारी में था । अँधेरा मिटता जारहा था । नदी की रपट के ऊपर ही एक छोटा-सा मन्दिर बना हुआ था । दोनो रपट पर चढ़ ही रहे थे कि रहमान ने शेखर को धक्का देकर नीचे गिरा दिया और स्वयं भी फुर्ती से लेट गया । एक तीर सनसनाता हुआ उनके ऊपर से होता हुआ निकल गया । दोनों उलटे पाँव खिसकते हुए नीचे आये और एक गड़हे में छिप गये ।

थोड़ी देर बाद दो आदमियों की आवाज़ सुनाई दी ।

'मैंने अच्छी तरह देखा था । ज़रूर एक आदमी था । साहब की टोपी मुझे साफ दिखालाई पड़ रही थी ।'

'अन्धेरे में तुझे भ्रम होगया होगा ।'

'हर्गिज़ नहीं । मेरी आँखें गीध से भी तेज़ हैं । मुझे भ्रम हो ही नहीं सकता । यहीं तो खड़े थे । ज़रा पाँव के निशान तो देखने दे ।' और दोनों कमर झुकाकर पाँव के निशान ढूँढ़ने लगे । रहमान गड़हे के अन्दर से सिर निकालकर उनकी सारी हलचलों को देख रहा था ।

'यह रहे पाँव के निशान । अब बचकर कहाँ जायगा साला !' उनमें से पहले ने शेखर के बूट के निशान बतलाते हुए कहा और दो क़दम आगे बढ़कर अधिक सतर्कतापूर्वक टोह लेने लगा । रहमान के और उसके बीच में लगभग चार क़दम का फासला रह गया था । शेखर उसे गोली मारने ही वाला था कि रहमान ने इशारे से उसे रोक दिया । फिर बाज की तरह झपट्टा मारकर उस मुड़े हुए आदमी पर टूट पड़ा और उसे पलक झँपाने का भी अवसर दिये बिना मुँह में कपड़ा ठूँस दिया । दूसरा आदमी डरकर दो क़दम पीछे हट गया और भागने का रास्ता देख ही रहा था कि शेखर उस पर चढ़ बैठा । जिस आदमी को शेखर ने नीचे गिराया था

वह शक्ल-सूरत से चौकीदार नहीं मालूम पड़ता था, बल्कि हरकारा लगता था।

रहमान पहले आदमी के हथियार छीन उसकी मुश्कें बाँध उसे घसीटता हुआ जब शेखर के पास लाया तो वह हरकारे को एक वृक्ष के तने से बाँधे पूछताछ कर रहा था।

हरकारे से उन्हें पता चला कि रघुवीर शाम के वक्त गुफा की ओर गया है। उसके साथ एक गोरी मेम, एक गोरा साहब और तीन-चार दूसरे कैदी थे। रास्ते में चार चौकियाँ पड़ती थीं और हर चौकी में दो-दो सन्त्री तैनात थे।

रहमान ने हरकारे की तलाशी लेकर उसके पास के सब कागज़ात अपने हवाले किये और दोनों को वहीं बाँधकर आगे बढ़े। रहमान का मन्शा तो चौकीदार को जान से मार डालने का था; परन्तु शेखर की अस्वीकृति के कारण विवश होकर रहजाना पड़ा।

वहाँ से आगे बढ़े तो रहमान ने शेखर को अपने जूते निकाल लेने के लिये कहा। फिर कभी सीधे, कभी चारों हाथ-पाँवों से और कभी पेट के बल खिसकते हुए चलने लगे। चन्द्रोदय से पहले ही गुफाओं तक पहुँच जाने में खैरियत थी। आम और सागौन के सूखे पत्ते रास्ते पर बिछे हुए थे और इस बात की सावधानी रखना भी अत्यन्त आवश्यक थी कि कहीं पत्तों की खड़खड़ाहट चौकीदारों को चौकन्ना न करदे। दूसरी चौकी के समीप पहुँचकर रहमान ने कहा—एक भी गोली का इस्तेमाल किये बगैर हमें मंजिले मक़सद तक पहुँचना होगा। नहीं तो सारा मामला खटाई में पड़ सकता है।

फिर जहाँ खड़े थे वहाँ से वह नीचे की उतराई की थाह लेने लगा। साठेक हाथ की निचाई पर नदी बह रही थी। ढाल पर कहीं-कहीं वृक्ष की जड़ें उभरी हुई थीं और बीचों-बीच एक पीपल का पेड़ खड़ा था। रहमान

बिल्ली की तरह सावधानी से पाँव रखता और कूदता-फाँदता नीचे की ओर उतरने लगा। शेखर ने भी उसका अनुसरण किया। सुभगा के साथ इस तरह वह सैकड़ों बार पहाड़ी ढालों पर उतर चुका था। आज की उतराई में अन्तर केवल यही था कि पत्थरों से सिर फूटने के साथ ही साथ बन्दूक की गोली से भी सिर फूटने का अन्देशा था। जब नदी की सतह आठेक हाथ शेष रह गई तो दोनो ने पाया की अब कूदकर उतरने के सिवा और कोई मार्ग नहीं है। क्योंकि आठ-आठ हाथ ऊँची सीधी-सपाट चट्टानें थीं। दोनों कूदकर समीप की एक झाड़ी में छिप गये। तत्काल कगार पर नालबन्द जूतों के नीचे सूखे पत्तों के कुचले जाने की आवाज़ सुनाई दी। दोनों साँस रोके पड़े रहे। थोड़ी देर बाद जूतों की आवाज़ वापिस हुई और दूर चली गई। तब कहीं दोनो के जी में जी आया।

अच्छी तरह देख-भालकर बाहर निकले और ढोकों से टकराते, पत्थरों से ठोकरें खाते, कभी कमर तक गहरे पानी में चलते हुए आगे बढ़े। थोड़ी दूर चलने के बाद फिर कगार पर चढ़कर पगडण्डी पर हो लिये। तीसरी चौकी का सन्त्री सोगया था। रहमान ने ठगों की-सी सफाई से उसके गले में फन्दा डालकर गिरफतार कर लिया। मुँह में कपड़ा ठूँस हाथ-पाँव बाँधकर करौंदे की झाड़ी में फेंक दिया और वहाँ से आगे बढ़े।

चलते-चलते दोनो नदी के सबसे ऊँचे कगार पर पहुँचे। वहाँ से नदी तीन सौ हाथ नीचे बहती थी। चाँद निकल आया था। सामने छोटा-सा तालाब दिख रहा था। उसका पानी निस्पन्द था और चन्द्रमा की किरणें उसमें प्रतिबिम्बित होरही थीं पेड़ की पत्तियों से छनकर आने वाली चन्द्र-किरणों ने जमीन पर रुपहरी पच्चीकारी-सी करदी थी।

रहमान ने लम्बी साँस लेकर कहा—नारियल के कुँज वाली वह जो अमराई दिख रही है न, हमें वहीं पहुँचना है। इतना कहकर उसने पड़की लगाई और ढाल से नीचे उतर गया।

शेखर को बूढ़े रहमान की यह फुर्ती देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। जब वे अन्तिम चौकी के समीप पहुँचे तो रहमान टोह लेने के लिए एक पेड़ पर चढ़ गया। नीचे उतरकर उसने कहा—चार आदमी हैं और चारों जाग रहे हैं। बीच में हुक्का घूम रहा है। उनकी आँख बचाकर निकलना आसान नहीं मालूम पड़ता। कोई तरीका सोचना होगा।

दोनो थक गये थे इसलिए बैठकर सुस्ताने लगे। शेखर ने रहमान से पूछा—क्यों रहमान चाचा, डर नहीं लगता?

'डर, किसका डर?'

'यही मौत का डर।'

अजी कुँवर साहब, जिसने मौत से ही निकाह किया हो वह उससे क्यों डरने लगा?

'लेकिन मानलो कि तुम मर गये तो बीबी-बच्चों का क्या होगा?'

'उनका खुदा मालिक है। और बीबी तो मुझसे भी ज्यादा शेरदिल है। बाकी यह समझ लीजिये कि जिस दिन से सिपाही अपनी सिपाही-गिरी से दिल चुराने लगेगा ज़मीन में बरकत नहीं रह जायगी। सौदागर हजारों-लाखों का नुकसान होने पर भी अपने चेहरे पर शिकन नहीं आने देता। फिर हम तो सिर का सौदा करते हैं। डरने-रोने से कैसे काम चलेगा? मैं ज्यादा इल्म तो जानता नहीं; सिर्फ एक बात जानता हूँ कि जब तलक अंजल-आबदाना बाकी है कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता; लेकिन जिस दिन रिजक-रोटी खतम हुई बड़े से बड़ा औलिया भी बचा नहीं सकता। फिर काम चोरी कर मुँह में कालिख लगाने से फायदा? काम-धन्धे में हरामखोरी करना दोगलों का काम समझता हूँ जनाब।'

शेखर ने संभ्रमपूर्वक उस बुड्ढे मुसलमान सिपाही की ओर देखा और फिर कहा—चचा, इस गोरी छोकड़ी को बचाने के लिए तुम मेरे साथ क्यों आये? तुम भी करतारसिंह की तरह इन्कार कर सकते थे।

'फिर कभी वक्त आने पर बतलाऊँगा । अभी तो इतना ही कहना काफी है कि खुदा ने हर औरत को एक-सा बनाया है । हर औरत की आबरू ऊँची है । मुट्ठी आटे के लिए अपना सिर कलम करवाने वाले हम सिपाही अगर किसी औरत की आबरू बचाने के लिए मर सकें तो कयामत के दिन जन्नत नसीब होगी ।'

अत्यन्त सरल भाव से यह बात कहकर रहमान उठा और पगडण्डी छोड़कर ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर हो लिया । सीधे तालाब की ओर उतर जाना तो असम्भव था । इसलिए सूखे पत्तों पर हलके पाँवों से चलते दरख्तों की ओट लेते कभी धरती पर लेटते और पेट के बल खिसकते हुए दोनो आगे बढ़ने लगे ।

अब चौकी सिर्फ डेढ़सौ गज के फासले पर रह गई थी । पहाड़ की चोटी वहाँ से चारसौ गज से ज्यादा दूर नहीं थी । अन्धेरे में इस दूरी को पार कर जाना मामूली बात थी । लेकिन चाँद निकल आया था और इसलिए चौकीदारों की निगाह बचाकर आगे निकल जाना आसान नहीं रह गया था ।

चौकी से ठीक नाक की सीध में पहाड़ की चोटी तक एक पगडण्डी जाती थी । इस समय उस पगडण्डी पर एक सन्त्री कन्धे पर बन्दूक लिये घूम रहा था ।

रहमान ने शेखर के कान में कहा—यहाँ मैं गिरफतार होजाता हूँ । वे मुझे पकड़ने में मशगूल रहें तबतक आप आगे निकल जाइयेगा ।

'और यदि तुम्हें मार डाला ?'

'आप उसकी फिक्र न करें । मैं कोई न कोई तरकीब निकाल ही लूँगा । यह बन्दूक लीजिये और अल्लाह का नाम लेकर फैर कीजिये । निशाना

मेरे पाँव में लगे। सिर्फ चमड़ी छिल जाय। देखिये खुदा के लिए कहीं हड्डी ही न तोड़ दीजियेगा।'

शेखर एक वृक्ष की ओट होगया और उसने वहाँ से फैर किया। रहमान ज़ोर से चीखता हुआ पगडण्डी पर निकल आया। पगडण्डी पर टहलने वाला संत्री और चौकी पर बैठे हुए बाक़ी तीनों आदमी बन्दूक की आवाज़ सुनकर चौकन्ने होगये और जिस ओर से बन्दूक छूटने की आवाज़ आई थी उसी ओर को लपके। लेकिन रहमान लँगड़ाता हुआ विपरीत दिशा की ओर भागा और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा—इधर भाग कर गया है, इधर। वह जारहा है, वह! दौड़ो-दौड़ो!

चौकी को सूना पाकर शेखर वृक्ष की ओट से बाहर निकला और पंजों के बल दौड़ता हुआ चौकी को पार कर गया।

गुफा के मुँह पर अलाव में एक मोटा-सा कुन्दा लगाये तीन-चार आदमी बैठे आग सेक रहे थे। उनके हाथों में लम्बे-लम्बे भाले थे। एक आदमी जल्दी-जल्दी कुछ कह रहा था और शेष दम साधे उसकी बात सुन रहे थे। आग के उजाले में शेखर ने उस आदमी को देखते ही पह-चान लिया। वह पहली चौकी का सन्त्री था और किसी तरह छूटकर उससे पहले आ पहुँचा था। वह कह रहा था—एक साहब और उसके साथ एक और आदमी इस ओर आया है। उन्होंने हमारे पहरेदारों को मार डाला है। जल्दी से सरदार को इसकी खब कर दो। अभी बन्दूक का जो धड़ाका हुआ वह उसीका होना चाहिये।

एक आदमी उठकर अन्दर चला गया। थोड़ी देर बाद गुफा के अन्दर से एक ताड़-सा लम्बा आदमी बाहर निकला। उसके हाथ में बन्दूक थी। वह इतना लम्बा था कि बन्दूक उसके हाथ में खिलौने-सी लग रहा थी। उस लम्बे आदमी के साथ पाँच-सात और आदमी भी अन्दर से बाहर निकल आये और चौकीदार से पूछने लगे—कहाँ है साहब? किधर है वह साहब?

शेखर अपना टोप पहिनकर झाड़ी में से बाहर निकला और पाँचेक क़दम आगे आकर रुक गया; फिर साफ-सुथरी जबान में बोला—यह हूँ मैं। बोलो, क्या कहना है साहब से ?

उस साहब की हिम्मत देखकर लोग-बाग क्षणभर के लिये आश्चर्यचकित रह गये। फिर भाले वालों ने अपने भाले सँभाले और लम्बे आदमी ने बन्दूक से निशाना साधा।

शेखर निडरतापूर्वक दो क़दम और आगे बढ़ आया और अपने कोट के बटन खोलने लगा। बटन खोलकर उसने छाती नंगी कर दी। कन्धे पर से बन्दूक उतारकर एक ओर को फेंक दी। जेब से रिवाल्वर निकाला और उसमें भरे हुए कारतूस उन्हें बतलाकर उसे भी नीचे रख दिया। फिर कारतूस की पेटी उतार फेंकी। सिर का टोप झाड़ी में उड़ा दिया और सिर ऊँचाकर मुस्कराता हुआ बोला-मारना चाहते हो तो मार डालो। अपने गुरु-भाइयों के हाथों मरने ही आया हूँ।

लोगों को यह सुनकर और भी अचरज हुआ।

'पहिचाना मुझे ?' शेखर ने पूछा। और पहाड़ों से प्रतिध्वनि-सी उठी हाँ-हाँ। एक आदमी ने मशाल जलाकर शेखर के आगे की। मशाल के उजाले में स्फटिक-से सुन्दर और सुशोभन उसके चेहरे को वे देखते ही रह गये। बड़ी देरतक कोई कुछ न बोला, या ज्यादा सही, बोल ही न सका।

'मैं हूँ राजशेखर। महाराजा श्रीवर्धन का पुत्र। अमरशहीद श्री अर्जुनदेव का भतीजा और गुरुवर्य श्री वासुदेव महाराज का शिष्य। आप लोगों के हाथों मरकर मुक्त होने आया हूँ।' और वह अपनी छाती खोलकर खड़ा हो गया।

यह सुनकर लोग-बाग महाराज राजशेखर की जय-जयकार का निनाद करने लगे। एक आदमी ने आगे बढ़कर बन्दूक उसके कन्धे में पहनादी, कोट के

बटन लगाकर रिवाल्वर जेब में रखी और हाथ पकड़कर बोला—अन्दर पधारिये।

राजशेखर ने कहा—मैं आपके पास एक काम से आया हूँ।

'फर्माइये! हम अमरशहीद श्री वासुदेव महाराज और अर्जुनदेव के सैनिक हैं।'

'मैं आप लोगों को आपकी गलती बतलाकर दण्ड देने के लिए आया हूँ।'

'फर्माइये! आपकी सजा सिर माथे पर।'

'क्या यह सच है कि आप लोग एक गोरी युवती को पकड़ लाये हैं?'

'हाँ!' रघुबीर ने पहलीबार मोटी आवाज़ में कहा।

'उसे वापिस करदो।'

'नहीं कर सकते।' रघुबीर ने ही कहा।

'क्यों करदें?' दूसरे सब लोग एक साथ पूछ बैठे।

'देखो रघुबीर! अभीतक मैंने तुम्हारे आगे हथियार नहीं डाले हैं। हथियार तो मैंने अपने गुरुजी और काका साहब के इन साथियों के आगे डाले हैं। यदि ये लोग मुझे मारकर इस तालाब में फेंक भी देंगे तो भी मैं मुँह से कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन एक असहाय और निर्बल नारी पर हाथ उठाने वाले, उसे गोली से घायल कर घसीट ले जाने वाले नरपशु से तो मैं कभी बात नहीं करूँगा। और यदि बात करना ही पड़ी तो इससे करूँगा।' उसे रिवाल्वर दिखलाते हुए शेखर ने कहा।

रघुबीर को बन्दूक तानते देखकर भी शेखर की भौंहों में बल न पड़े। उसने उसी निर्भीकता से कहा—अपनी निशानेबाजी का तुझे बड़ा घमण्ड है; परन्तु यहाँ भी कोई कुम्हड़बतियाँ नहीं हैं कि अँगुली देखकर मुर्झा जाएँगे। मैंने भी श्री वासुदेव के चरणों में बैठकर चाँदमारी सीखी है।

फिर रघुबीर की तनी हुई बन्दूक की रत्तीमात्र परवाह किये बिना उसके साथियों की ओर मुड़कर बोला—आप पूछ रहे हैं कि गोरी मेम को क्यों लौटा दें ? कहते हैं कि संगति का असर होता है और देख रहा हूँ कि यह बात सोलह आने सच है। यदि आप लोगों ने इस कुल-कलङ्क की संगति न की होती तो आज यह सवाल ही आपके मन में पैदा न होता...

अभी उसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि रघुबीर ने घोड़ा दबा दिया और गोली सनसनाती हुई शेखर के माथे पर होकर निकल गई। रघुबीर के ही एक साथी ने झटका देकर बन्दूक की नली ऊँची कर दी थी, जिससे वह निशाना चूक गया था।

शेखर ने उसकी ओर मुड़कर कहा—सच ही तू कुलांगार है।

और फिर उसके साथियों की ओर मुड़कर बोला—गोरी मेम को लौटाने का आप कारण पूछ रहे हैं। लेकिन मैं पूछता हूँ कि श्री वासुदेव और श्री अर्जुनदेव ने भी कभी किसी औरत को कैद किया था ? मुझे बतलाइये, इस गोरी मेम ने आपका क्या बिगाड़ा है ? इससे आपकी क्या दुश्मनी है ? आप लोग क्षत्रिय हैं। क्षत्रिय तो गौ और स्त्री का प्रतिपालक होता है। औरत की आबरू के लिए प्राणोत्सर्ग करने में भी आगा-पीछा नहीं करता। और यह क्यों भूल जाते हैं कि आप उन वासुदेव के अनुयायी हैं, जिन्होंने फिरंगी कैदियों को भी चङ्गा कर ससम्मान वापिस भेजा था ?

'सच है, सच है !' एक बूढ़े ने सिर हिलाते हुए कहा।

'उन दिनों इस गुफा में परमात्मा निवास करते थे, क्योंकि किसी लुटेरे, डाकू और अधर्मी के पाँव यहाँ नहीं पड़े थे। लोग इन गुफाओं की ओर संभ्रम पूर्वक देखते थे क्योंकि भगवान के नाम पर घरबार छोड़कर देशभक्ति की धुनी रमानेवाले वीर पुरुषों का यह निवास-स्थान थीं। उन वीरों ने धन-दौलत, बाल-बच्चे और दुनिया के समस्त सुखों को स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर न्योछावर कर दिया था। वे डाकू या लुटेरे नहीं थे कि

चाँदी के टुकड़ों के लिए किसी को पकड़कर ले आते और यातनाएँ दे-देकर मार डालते। वे तो अपने दुश्मनों तक की मरहम-पट्टी कर उन्हें चंगा करते थे। सदाचार के उनके नियम बड़े ही कड़े थे। स्नान करती हुई महिला की दिशा में भूलकर जाना भी भारी अपराध समझा जाता था। उन्हीं ने हमें सिखलाया है कि हमारी लड़ाई विदेशी राज्य से है। उसकी फौज से लड़ो। उसके अफसरों को मारो–पकड़ो। लेकिन निरीह स्त्रियों पर हाथ उठाने में, उन्हें गोली मारने में कौनसी बहादुरी है? यदि आज अर्जुन काका जीवित होते तो जानते हैं आप लोगों को इस अपराध के लिए क्या सजा दी जाती?'

कोई कुछ न बोला। सभी ने शर्म से अपने सिर नीचे कर लिये। सभी जानते थे कि उन दिनों ऐसे अपराध की सजा मौत थी।

'दुर्योधन, जयद्रथ, दशानन और सहस्रार्जुन जैसे पराक्रमियों को भी नारी का अपहरण कर आखिर कुत्ते की मौत मरना पड़ा। वासुदेव के अजेय अनुयायी भी क्या उसी पथ का अनुसरण करना चाहते हैं?'

'नहीं-नहीं!' सब एक स्वर में पुकार उठे। कितने ही वृद्ध योद्धाओं की आँखों से शर्म और ग्लानि के आँसू बह रहे थे। रघुबीर का सिर भी मारे शर्म के नीचा होगया था।

'यह वही गुफा है, जहाँ रोज सवेरे रामायण का पाठ किया जाता था, वेद की ऋचाएँ और उपनिषद् के स्तोत्र गाये जाते थे। जिन गुफाओं ने अधर्म से लोहा लेकर धर्म की स्थापना करने वाली शूरता को जन्म दिया था आज उन गुफाओं की तुमने क्या दशा कर डाली है? वहाँ से शराब की दुर्गन्ध आरही है और उसकी पवित्र धरती पर बन्दी नारी की निःश्वासों का स्वर सिर धुनकर रोरहा है। आज तुमने इस पवित्र स्थान को अत्याचारों का अड्डा बना दिया है। कितना अक्षम्य अपराध किया है तुम लोगों ने? एक रावण के पाप से सोने की सारी लंका जलकर राख हुई थी; तुम सब लोगों के पाप से...'

लेकिन उसकी बात पूरी होने से पहले ही भालेदारों ने अपने भाले फेंक दिये और बूढ़े सैनिक हाथों में मुँह छिपाकर बच्चों की तरह सिसक-सिसक कर रोने लगे।

'लेकिन फिरंगी भी तो अवध की बेगमों और सिन्ध की नारियों का अपहरण कर रहे हैं, उन्हें लूट रहे हैं और उनकी बेइज्जती कर रहे हैं।' रघुबीर ने कहा तो सही परन्तु उसकी आवाज़ काँप रही थी।

'हाँ जानता हूँ। लेकिन यह भी जानता हूँ कि आज आर्यावर्त में रावण का जो साम्राज्य स्थापित हुआ जारहा है उसका मूलोच्छेद मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ही कर सकते हैं और इसीलिए राम की सेना तैयार होरही है। रावण तो अत्याचार करता ही है। मगर राम भी अत्याचार-अनाचार करने लगें तो फिर राम और रावण में फर्क ही क्या रह जायगा? रघुबीर, हम मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र की सेना के सैनिक हैं। नारी की रक्षा करना उस सेना का धर्म है। एक नारी के उद्धार के लिए उस सेना ने समुद्र पर सेतु बाँधकर नारी के प्रति अपने सन्मान को व्यक्त किया था।'

राम का नाम सुनते ही रघुवीर के हाथ-पाँव फूलने लगे। जूड़ी के रोगी की तरह उसे कँपकँपी आने लगी; फिर भी उसने साहस बटोर कर कहा—तू गोरी फौज के साथ है। तेरी वर्दी गोरी फौज की वर्दी है। हम कैसे मानलें कि तू विद्रोहियों के साथ है? कैसे मानलें कि तू हमें धोखा नहीं दे रहा है?

'तेरा यह प्रश्न उचित ही है। आज से छह वर्ष पूर्व श्री वासुदेव के मृतक शरीर को छूकर मैंने माता देवकी के सामने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक इस देश से फिरंगी हुकूमत की जड़ न उखाड़ दूँगा चैन न लूँगा। आज फिर से उन्हीं शहीदों के इस तीर्थ में, उन्हीं की मुक्ति सेना के समक्ष यहाँ की धूलि सिर माथे चढ़ाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि क्रान्ति ही

मेरा धर्म है, क्रान्ति ही मेरा सर्वस्व है। उसी के लिए हँसते-हँसते इस शरीर को न्योछावर कर दूँगा। क्रान्ति से पराङ्मुख होने की अपेक्षा अपने ही हाथों अपनी छाती में छुरा भोंककर मर जाऊँगा और यदि कायरतावश ऐसा न कर सकूँ तो तुम्हीं मुझे मृत्यु-दण्ड देकर उस भीषण पाप से मुक्त कर देना। अपने गुरुतीर्थ में यहाँ की धरती और आसमान तथा यहाँ के चाँद और सितारों को साक्षी बनाकर अपने गुरुदेव की मुक्ति-सेना के समक्ष अपने हथियारों की सौगन्ध लेकर मैं यह प्रतिज्ञा दुहरा रहा हूँ।'

इतना कहकर शेखर ने वहाँ की धूल अपने सिर से लगाली।

'वासुदेव की मुक्ति-सेना के सैनिक बन्धुओ! तुम्हारे समक्ष न्याय के लिए खड़ा हूँ। यदि मुझे अपराधी समझते हो तो मैं सीना खोलकर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। बिना किसी पशोपेश के गोली मार दो। यदि सच्चे अपराधी को सजा देना चाहते हो तो वह भी तुम्हारे सामने खड़ा है। या तो मुझे गोली मार दो या उस गौराङ्ग कन्या को मुक्त कर दो।' और शेखर छाती पर दोनो हाथ बाँधकर एक अनोखे गौरव से उनके सामने खड़ा होगया।

टोली में के वृद्ध सैनिक काफी देर तक नीचे बैठे आँसू बहाते रहे। अन्त में एक व्यक्ति ने आँसू पोंछकर खड़े होते हुए कहा—अपने राजमहल में तो पधारिये।

एक सैनिक मशाल लेकर आगे-आगे हो लिया। शेष शेखर को अपने बीच में कर अन्दर दाखिल हुए। किसी ने कहा—'श्री राजशेखर की जय।' और गुफा जयध्वनि से गूँज उठी।

राजशेखर ने सबसे ऊँची अवाज़ में श्री वासुदेव का जय-जयकार किया और फिर तो गुफा श्री वासुदेव और उनकी मुक्ति-सेना के जय-जयकार से निनादित होने लगी।

× × ×

गुफा में से बेहोश एमिली को उठाकर जब सब लोग बाहर निकले तो उन्होंने रघुबीर को औंधे मुंह नीचे पड़ा पाया। उसने अपने ही हाथों सीने में गोली मारली थी।

६

जब शेखर बेहोश एमिली को डोली में लेकर वापिस लौट रहा था तो रास्ते में उसे रहमान मिला। चौकीदार उसे रस्सियों से जकड़े लिये चले आरहा थे। शेखर को देखकर रहमान हँस दिया। जब चौकीदारों ने अपने साथियों से सारा किस्सा सुना तो बड़े ही विस्मित हुए और उन्होंने आदरपूर्वक शेखर को प्रणाम किया।

करतार उन्हें नदी के कछार में ही मिल गया। शेखर ने वृक्ष के तने से बँधे घोड़ों को छोड़ते हुए कहा—रहमान चाचा, तुम थक तो गये होगे; लेकिन डोली देर से पहुँचेगी और उधर जनरल साहब चिन्तित होरहे होंगे इसलिए तुमको आगे जाना पड़ेगा।

एमिली अभीतक होश में नहीं आई थी। अर्ध चैतन्यावस्था में वह सिर्फ इतना ही समझ सकी थी कि जो विपत्ति उस पर आ गिरी थी उसमें से वह किसी तरह बच गई है।

रघुबीर के साथी शेखर को नदी के कछार तक विदा करने आये थे। रास्ते में शेखर ने उन्हें मूरहेड को छोड़ने और जबतक तिथि निश्चित् न होजाय शान्ति बनाये रखने की बात भी समझा दी थी। इसलिए जब शेखर का दल आधी दूरतक पहुँचा मूरहेड भी उनसे आमिला। इस समय उसके हाल बेहाल होरहे थे। सिर पर टोपी नहीं थी। पाँव नङ्गे थे। वर्दी फट गई थी और किरच के दो टुकड़े होगये थे। उसकी आँखें

रातभर जागने और चिन्ता तथा अपमान से लाल होरही थीं। डाकुओं ने उसे भूखा-प्यासा एक कोठरी में बाँधकर डाल दिया था। छोड़ा भी तो यह चेतावनी देकर कि 'जाओ बेटा, थोड़े दिन और बाहरी दुनिया की हवा खालो, आखिर तो तुम्हें मरना है ही।' शेखर के प्रति उसकी ईर्ष्या इस समय सौगुनी बढ़ गई थी। उसे सबसे ज्यादा गुस्सा तो इस बात पर आरहा था कि शेखर उसकी कोठरी के आगे से चुपचाप निकल गया; न तो उसकी ओर देखा और न उसे छोड़ने के लिए ही कहा। बस, एमिली को उठाकर चलता बना। इस समय उसका चेहरा अपमान, ईर्ष्या और गुस्से से आग बबूला होरहा था। रास्ते भर वह कुछ न बोला। धन्य-वाद के दो शब्द कहना तो दूर रहा उसने शेखर से रुख तक नहीं मिलाया था।

जब शेखर और उसके दल ने किले में प्रवेश किया दस बज गये थे। हँसते हुए भारतीय सैनिक उसका स्वागत करने के लिए खड़े थे। शेखर ने उनका अभिवादन स्वीकार किया। गढ़ी में गोरे सैनिक भी उसे सलामी देने के लिए कतार बाँधे खड़े थे। बंगले के बरामदे में जनरल डेनियल और कर्नल जानसन खड़े थे। उन्हें देखते ही शेखर ने आगे बढ़कर अभि-वादन किया और बोला—लौटने में देर होगई; लेकिन मजबूरी थी। डोली वालों को तेज़ चलाना घातक होता।

जानसन ने उसे शाबाशी देते हुए कहा—तुम्हारी यह वीरता हमेशा याद रखी जायेगी।

बूढ़े डेनियल की प्रसन्नता का तो कोई ठिकाना ही नहीं था। उन्हें तो अपनी खोई बेटी वापिस मिली थी। जब उन्होंने सुना कि एमिली को डाकू बेतवा की गुफाओं में लेगये हैं तो उन्होंने उसकी आशा ही छोड़ दी थी। बरसों पहले अफगानिस्तान के पहाड़ी इलाके में वह अपना जवान बेटा गँवा चुके थे। पत्नी भी उसके थोड़े ही दिन बाद मर गई थी। अब बुढ़ापे की आशा यह लड़की ही बची रह गई थी। यही उनका

सब कुछ थी । लड़का, लड़की, माँ, साथी, मित्र जो समझो सब वही थी। पिता की दर्शन-शास्त्र में दिलचस्पी थी और पुत्री की समाज-शास्त्र में। दोनो चाय की टेबल पर बैठे घण्टों विचार-विनिमय किया करते थे। बरसों से जनरल का सारा भार एमिली ने अपने ऊपर लेलिया था। वही उनका पत्रव्यवहार सँभालती थी। उनके लेख, विवरण आदि टाईप करती थी। मिशन के कामों में उनका हाथ बँटाती थी। उनके भोजन और चाय-नाश्ते की व्यवस्था करती थी। स्नानघर में नये धुले कपड़े, साबुन, टावेल आदि रखना; उनकी मेज़ की सब चीज़ें यथास्थान रखना, पुस्तकालय का प्रबन्ध आदि सभी उसीके जिम्मे था। यदि एमिली घर में न होती तो जनरल की अक़्ल ही गुम होजाती थी। जब से एमिली ने होश सँभाला, आक्सफोर्ड के दो सालों को छोड़कर वह बराबर पिता के ही पास रही थी। और बुढ़ापे में तो वही उनके अँधियारे जीवन का उजाला भी थी। उसके अभाव में जनरल की दशा अन्दर ही अन्दर खोखले होगये वृक्ष की-सी होजाती थी। जीवन-रस से हीन वह उदास और खोखला वृक्ष जिस पर अँकुर नहीं आते, जिसके पत्ते सूख गये हैं, जिसके फूलों की महक उड़ गई है, जहाँ कोयल, तोते, मैना आदि पक्षियों ने आना छोड़ दिया है और जिसकी सूखी टहनियों में मकड़ियों ने जाले बनाना शुरू कर दिये हैं। एमिली के अभाव में ऐसे उदास और एकाकी जीवन की कल्पना ने जनरल को इतना हतबुद्धि कर दिया था कि जब रहमान ने आकर उन्हें उसके कुशल समाचार सुनाये तो बेचारे बूढ़े को हाथों से क्रास बनाकर दयालु ईसामसीह का आभार मानने तक का होश भी नहीं रह गया था। उन्हें लगा कि वासुदेव ने दुबारा उनकी जान बचाई है।

शेखर का हाथ अपने हाथ में लेकर और अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसे दबाकर वह बोले—तुम्हारे इस उपकार को कभी नहीं भूल सकता।

शेखर के हर्ष की भी कोई सीमा नहीं थी। आखिर उसने साबित कर ही दिया कि काला आदमी गोरे से किसी तरह हीन नहीं है।

क़िले के एक-एक अंग्रेज़ को काले आदमी की श्रेष्ठता स्वीकार करना पड़ी थी। अब भले ही जिसके जो जी में आये चिल्लाता रहे।

वहाँ से लौटकर अपने कमरे पर पहुँचा तो रहमान ने नहाने के लिए गरम पानी, साबुन और धुले कपड़े की व्यवस्था कर रखी थी और स्वयं दर्वाज़े पर बैठा बन्दूक साफ कर रहा था।

शेखर ने कृतज्ञतापूर्वक उसकी ओर देखते हुए पूछा—चाचा, तुम थकते नहीं?

'आपके जैसा मालिक देखकर थकावट भी कोसों दूर भाग जाती है।'

'घर से जो सामान आया था उसमें से तुमने भी कुछ लिया या नहीं?'

'ना, मैंने तो कुछ भी नहीं लिया पर आपके लिये चन्दन की एक छोटी-सी पेटी रखली है। उसमें महारानी साहिबा की एक तस्वीर, एक अँगूठी और चन्द गहने थे।'

'बहुत अच्छा किया। मैं तो उसे भूल ही गया था।'

सुभगा ने उसे विदाई में वह पेटी भेंट की थी।

फिर शेखर ने अपने गले से रत्नजटित हार निकालकर रहमान के गले में डाल दिया। हार गले में पड़ते ही रहमान इसतरह उछल पड़ा मानों गले में साँप लिपट गया हो और फुर्ती से हार को गले में से निकाल फेंका। फिर कभी उस हार की ओर और कभी शेखर की ओर पागल-सा देखने लगा।

'क्यों चाचा, चौंक क्यों गये? मैंने वह हार तुमको देदिया।' शेखर ने झुककर हार उठा लिया और पुनः रहमान को पहनाने का प्रयत्न करने लगा।

'ना, हुजूर, मुझे बख्शिये।' रहमान ने हाथ जोड़कर आजिज़ी करते हुए कहा।

'चाचा, तुम इन्कार करोगे तो मुझे बड़ा दुःख होगा।'

'अगर हुजूर की यही मर्जी है तो लाइये हाथ में दीजिये।' रहमान ने आँचल फैलाकर हार लेलिया। फिर उसे सिर-आँखों पर चढ़ाकर तीनबार शेखर पर न्योछावर कर उसके पाँवों पर रख दिया और बोला—अपने आक़ा की खिदमत को हीरे-मोती से आँककर मैं उसकी अहमियत को कम नहीं करूँगा।

शेखर गद्गद् होगया। उसने हार को माँ की तस्वीर वाली पेटी में इस तरह सँभालकर रख दिया मानों वह कोई अनमोल और पवित्रतम वस्तु हो।

*   *   *

दुपहर बाद स्वयं जनरल शेखर की कोठरी के आगे आकर खड़े होगये और अन्दर झाँककर बोले—आज शाम को तो तुम्हें आना ही पड़ेगा।

शेखर ने खड़े होते हुए कहा—आपने स्वयं कष्ट क्यों किया? किसी नौकर को भेज देते।

'उपकार का बदला श्रेष्ठता के प्रदर्शन से नहीं दिया जाता' और जनरल चले गये।

शाम को जब शेखर जनरल के बंगले पर पहुँचा तो वह दीवानखाने में जानसन के साथ बैठे बातें कर रहे थे। शेखर को आया देख उसे एमिली के कमरे में पहुँचाकर फिर दीवानखाने में लौट आये। पास ही के कमरे में एमिली का पलङ्ग था। पलङ्ग के एक ओर चार-पाँच कुर्सियाँ और एक छोटी-सी मेज़ पड़ी थी। मेज़ पर ताश के पत्ते, सिगरेट की डिब्बियाँ और राखदानी (एशट्रे) आदि रखी हुई थी। दीवाल से लगी अल्मारी में और आलों में पुस्तकें करीने से लगाई गई थीं। अल्मारी के निचले खण्ड में काँच, कंघा, ब्रश आदि चीज़ें पड़ी थीं। कमरे में सलीब पर लटके हुए ईसा

की एक तस्वीर भी थी। एक नौकर एमिली के पैताने की ओर बैठा हुआ था।

शेखर को देख एमिली हँसी और उसने उठने का प्रयत्न किया; लेकिन नौकर ने रोक दिया। एमिली का चेहरा पीला पड़ गया था। घाव में से ज्यादा खून बह जाने के कारण वह कमज़ोर भी बहुत होगई थी। बैठने के लिये कुर्सी की ओर इशारा कर उसने शेखर से हँसते हुए कहा—अपमान का बदला लेना भी खूब जानते हो तुम!

प्रत्युत्तर में शेखर केवल हँस दिया।

'मैंने तो निश्चय कर लिया था कि हमारा और पापा का अपमान करने वाले का कभी मुँह भी नहीं देखूँगी। इसीलिये तो सबेरे जब पापा दातुन देने के लिये भेजते थे तो पहरेदार को दे देती थी। लेकिन तुम भी क्या कम अभिमानी हो? सामान्य शिष्टाचार के नियमों तक को तुमने खूँटी पर टाँग दिया। कृतज्ञता के दो शब्द भी कहने की ज़रूरत नहीं समझी!'

एमिली के बोलने का ढङ्ग ऐसा था मानों वह और शेखर वर्षों साथ रहे हों और शेखर मात्र उसका परिचित ही नहीं अति निकट का सम्बन्धी हो। शेखर को यह निकटता अच्छी न लगी। वह इस गौराङ्ग बाला की मैत्री और परिचय नहीं चाहता था। चाहना तो दूर उसने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी। हाँ, वह एमिली के जातिगत अभिमान को, गोरे होने की उसकी मग़रूरी को ज़रूर तोड़ना चाहता था। इसलिये धीरे से बोला—मैं शिष्टाचार के ऐसे नियमों से परिचित नहीं हूँ।

'लेकिन हम तो तुम्हें शिष्टाचार के ये सब नियम सिखलाएँगे। अगर इङ्ग-लैण्ड में तुमने किसी स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार किया होता तो वह तुम्हारा मुँह भी न देखती।' और वह फिर हँसी।

शेखर असमंजस में पड़ गया। नारी से उसका विशेष साबका नहीं पड़ा था। स्त्री के नाम पर माँ और सुभगा को छोड़ वह और किसी को जानता

ही न था। उसने मन ही मन माँ और सुभगा से एमिली की तुलना की। उसने उन्हें पर-पुरुष के साथ कभी भी हँसकर बातें करते हुए नहीं देखा था। जब बात करना होती तो मर्यादा का पूरा निबाह करते हुए संक्षेप में की जाती थी। केवल दो दिन के परिचित युवक के सामने अपने शरीर के सारे अवयवों को यों निर्लज्जतापूर्वक थिरका कर क्या सुभगा कभी उसके साथ यों हँस-बोल सकती थी? कदापि नहीं। चाहे उस युवक ने सुभगा की जान ही क्यों न बचाई हो; परन्तु फिर भी उससे वह इस तरह खुलकर न तो बोल ही सकती थी न व्यवहार ही कर सकती थी।

जबकि यहाँ वह अंग्रेज़ युवती उसके साथ इस तरह खिलखिलाकर बोल रही थी और ऐसा व्यवहार कर रही थी मानों बरसों पुराना परिचय हो और शेखर पर उसका अधिकार भी हो। एमिली के प्रति उसका मन एक तीखी घृणा से भर आया।

शेखर ने अपने मन के भावों को छिपाना बिल्कुल ही नहीं सीखा था। जो मनमें होता वही उसके चेहरे पर अंकित होजाता था। मन की बात को चेहरे पर प्रतिबिम्बित न होने देने की कला वह जानता ही नहीं था।

एमिली की सधी हुई आँखें फौरन ही इस बात को ताड़ गईं। उसे समझते देर न लगी कि शेखर बेमन से 'हाँ' 'हूँ' कर रहा है। लेकिन उसकी समझ में यह बात नहीं आपाई कि उसने शेखर को उबा देने वाली ऐसी कौन सी बात कह दी थी। वह बड़ी देरतक चुप पड़ी रही। फिर मन ही मन बोली--आभिजात्य वंश का गर्व है इसे। और दुबारा अधिक स्वाभाविक ढङ्ग से बातचीत का प्रयत्न शुरू किया।

'तुम्हें अंग्रेज़ी नहीं आती?'

'नहीं।'

'बिलकुल नहीं आती?'

एक अक्षर भी नहीं। और मुझे कहाँ कम्पनी सरकार की नौकरी करना है कि सीखता।'

शेखर के बोलने का ढङ्ग ही कुछ ऐसा था कि एमिली अपनी हँसी न रोक सकी। बोली—तुम तो इस तरह कह रहे हो मानो कम्पनी सरकार की नौकरी करने वाले ही अंग्रेज़ी सीखते हों। कम्पनी के पत्र-व्यवहार के सिवा क्या अंग्रेज़ी भाषा में पढ़ने और सीखने के लिए कुछ है ही नहीं?

शेखर को अपनी बात समझने का अवसर दिये बिना ही वह उसी झोंक में बोलती चली गई—और तब तो तुम फ्रेञ्च सीखोगे ही क्यों? मानलो कि कम्पनी की नौकरी ही करना हुई तब भी तुम्हारे तर्क के अनुसार फ्रेञ्च सीखने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं।

वह फिर हँसी और हाथ लम्बाकर अल्मारी से एक पुस्तक निकालकर बोली—यह पुस्तक 'प्लेटो' की 'रिपब्लिक' है। प्लेटो, जिसे तुम लोग अफलातूँ कहते हो। अफलातू यूरोप का एक श्रेष्ठ विचारक और दार्शनिक था। इस अल्मारी में उसके और कितने ही साथी बैठे हुए हैं। सुकरात, डायोजिनिस, एपिकस, काण्ट, सन्त-सायमन्ड, रूसो, बेन्थाम आदि तुम्हारे महर्षियों की कोटि के ही हमारे महर्षि भी होगये हैं। लेकिन तुम उनकी वाणी सुन नहीं सकते। दूसरों के मुह से सुनकर भी उसे समझ नहीं सकते। सत्सङ्ग करने की तो तुम्हारे शास्त्रों की भी अनुमति है। कम्पनी की नौकरी करने के लिए न सही परन्तु अपने महर्षियों से तुम्हारा सत्सङ्ग कराने के लिए तो मैं तुम्हें अंग्रेज़ी पढ़ाऊँगी ही। कम्पनी का क्या ठिकाना। आज है और कल नहीं। परन्तु उन महर्षियों की वाणी तो तुम्हारी भागीरथी की पावन धारा की भाँति सैकड़ों वर्षों से उसी अस्खलितरूप में प्रवाहित होती चली आरही है और होती चली जायगी। सिर्फ अपनी कूपमण्डूकता के कारण हम उससे, उसके प्राणदायी सलिल से वंचित रह जाते हैं। अफलातूँ...

यदि जनरल न आगये होते तो कह नहीं सकते उसका यह लेक्चर कबतक चलता रहता। उन्होंने आकर उलहने के स्वर में कहा—क्यों

तेरी बकवास फिर शुरू होगई न? अब आगे से मैं यहाँ किसी को लाऊँगा ही नहीं।

फिर कुर्सी पर बैठकर बोले–जानसन के साथ ज़रूरी काम में लग जाने से देर होगई। भोला, महाराज से टेबल और नाश्ता लाने के लिए कह।

जनरल ने सिगरेट सुलगाकर पीते हुए पूछा–रघुवीर मर गया?

'जी हाँ! नारी अपहरण के पाप के प्रायश्चित स्वरूप उसने आत्म-हत्या करली।'

'क्या यह सच है कि उन लोगों ने तुम्हारे आगे अपने हथियार डाल दिये थे?'

'जी नहीं, मैंने ही उनके आगे अपने हथियार डाल दिये थे।'

'ऐसा क्यों किया?'

'वे लोग मेरे पुराने मित्र थे। आप तो जानते ही हैं न कि अर्जुनदेव मेरे काका लगते थे।'

'हाँ, जानता तो हूँ। क्या यह भी सच है कि तुमने मूरहेड को नहीं छुड़वाया?'

'सच है भी और नहीं भी। असल में मेरे ही कहने से उनकी रिहाई हुई है। परन्तु यदि वे लोग उन्हें छोड़ना न चाहते तो भी मैं उसके लिए उनसे झगड़ा नहीं ही करता।'

इसी बीच महाराज ने आकर एक ओर पानी छींटा और टेबल लगाकर उसपर थोड़े से फल और जलेबी आदि मिष्टान्न की तश्तरियाँ सजादीं।

'अब तो जाति जाने का डर नहीं है न?' एमिली ने लेटे ही लेटे हँसकर पूछा।

हमारे शास्त्रों में आपद धर्म के लिए अपवादों की गुँजाइश भी छोड़ी गई है। बिलकुल पत्थर की लकीर थोड़े ही खिंच जाती है।'

'पत्थर की लकीर तो नहीं ही खिंचती होगी; परन्तु अपवाद भी गोरों के लिए तो नहीं ही होगा। शास्त्रों में ज़रूर यह लिखा होगा कि मेजवान का अपमान भी क्यों न करना पड़े परन्तु गोरों के हाथ का छुआ खाद्य-पदार्थ कभी न खाया जाय।'

'एमिली, तू बड़ी दुष्ट है।' जनरल ने कहा।

'हाँ, शास्त्राज्ञा तो यही है। लेकिन यह सिर्फ उसका पूर्वार्द्ध है। उत्तरार्द्ध में ऐसी व्यवस्था दी गई है कि मेजवान के उस अपमान के प्रायश्चित में विदेशी मेजवान-पुत्री को भी थोड़ी सी प्रसादी का भोग लगाकर रिझाना चाहिये; नहीं तो उनके शास्त्रों के रूठ जाने का अन्देशा है।'

तीनों व्यक्ति खिलखिलाकर हँस पड़े।

जनरल ने कहा—एमिली तुम्हें अंग्रेज़ी पढ़ाने की अनुमति चाहती है। परन्तु यह जबान की इतनी तेज़ है कि मुझे डर लगता है कि कहीं किसी दिन तुम्हें नाराज़ न करदे।

'उसका तो ऐसा कोई डर नहीं; परन्तु पढ़ने में मेरा मन ही नहीं लगता।'

जनरल ने चाय का प्याला मुँह से लगाते हुए कहा—कुछ लोग इतने क्षमाशील होते हैं कि बड़े से बड़ा अपमान भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

'ना, पापा, बल्कि ऐसा कहिये कि कुछ लोग ऐसे हिकमती होते हैं कि ज़हर का दाँत ही उखाड़ लेते हैं।' एमिली ने पूर्ववत् लेटे ही लेटे कहा।

'आप लोग व्यर्थ मुझे इतना ऊँचा चढ़ा रहे हैं।'

जब एमिली से विदा होकर वह अपने कमरे की ओर चला तो जनरल ने उसे बरामदे के एक कोने में लेजाकर कहा—तुमने मूरहेड को न छुड़ाकर अच्छा नहीं किया । ऐसा भेद-भाव तुम्हें नहीं करना चाहिये था ।

'जनरल साहब, मैं न तो डाकुओं को पकड़ने गया था और न मूरहेड को छुड़ाने ही । एक दिन अनजाने आपकी पुत्री का अपमान कर बैठा था सो उन्हें छुड़ाकर उस अपमान का प्रतिकार करने गया था ।'

और जनरल को कुछ कहने का मौक़ा दिये बिना ही वह जल्दी से चला गया ।

७

शेखर का जीवन-क्रम एक बँधे-सधे नियम के अनुसार चलने लगा था। सवेर-साँझ परेड के मैदान पर जाता था। दुपहर में घण्टा भर जानसन से कानून पढ़ता और दो घण्टे एमिली से अंग्रेज़ी सीखता था। रात में हिंदुस्तानी सैनिकों की बारक में सोने चला जाता था। एमिली के प्रति आरम्भ में जो घृणा थी वह भी अब नहीं रह गई थी। इतने दिनों के परिचय में एक बात उसकी समझ में आगई थी कि इङ्गलैण्ड की महिलाएँ झूठी लाज-शरम में विश्वास नहीं करतीं।

शेखर मेधावी विद्यार्थी था। एमिली का पढ़ाने का उत्साह भी कुछ कम नहीं था; साथ ही काम लेने में भी वह बड़ी ही सख्त थी। किसी दिन आलस्यवश या काम ज्यादा रहने से यदि शेखर लिखकर न ला पाता तो एमिली की डाँट–फटकार शुरू होजाती थी।

'आज आगे का सबक़ बन्द। पहले कल का पाठ लिखकर बतलाओ।'

'कल दोनो दिन का साथ लिखकर बतला दूँगा।'

'नहीं, मुझे तो आज ही चाहिये। अभी यहीं बैठकर लिखो।'

'यहाँ बैठकर लिखते नहीं बनेगा।'

'क्यों नहीं बनेगा। तुम बैठकर लिखो। मैं बरामदे में चली जाती हूँ।'

'लेकिन कल लिखकर लाने में हर्ज ही क्या होजायगा? आज जानसन साहब ने कई नक़शे दे दिये थे। उन्हें बनाने बैठा तो पाठ लिखना रह गया।'

यह सुनते ही एमिली बरसने लगती—जानसन साहब के नक़्शे बड़े जरूरी थे क्यों ? और यह पढ़ाई तो किसी काम की ही नहीं है ! बोलो ?

लेकिन शेखर चुप लगा जाता। असल में सैनिक शिक्षा और व्यूह रचना के नक़्शे बनाने में उसका जितना मन लगता था उतना और किसी काम में नहीं लगता था। लेकिन उस सम्बन्ध में एमिली के साथ वाद-विवाद करने की उसकी हिम्मत ही नहीं होती थी। वह जानता था कि एमिली की जबान तलवार की धार से भी ज्यादा तेज़ है और वाद-विवाद में उससे पार पाना उसके वश का नहीं है।

'पहले मेरी बात का जवाब दो। लिखना फिर। बतलाओ, जानसन की पढ़ाई ज्यादा ज़रूरी है और यह बिलकुल ही ग़ैर ज़रूरी है ?'

'नहीं, ऐसा तो नहीं है। यह भी ज़रूरी तो है ही।'

'फिर इसे पूरा क्यों नहीं किया ?'

इसका वह क्या जवाब देता ? और जवाब देकर एमिली को चुप भी तो नहीं किया जासकता था। इसलिए शेखर अपराधी बालक-सा मौन रहकर झट से लिखने बैठ जाता था।

लिखते-लिखते कभी सिर उठाकर देखता तो एमिली को चुपचाप उसकी आज्ञाकारिता पर हँसते हुए पाता था।

और बस, एमिली की वह हँसी देखकर शेखर का सारा उत्साह भङ्ग हो जाता था। वह एमिली को शिक्षक की श्रद्धा से देखता था और एक शिक्षक के नाते उसकी समस्त डाँट-फटकार, आदेश, उपदेश सुन लेने को तैयार था। लेकिन इस तरह एमिली उस पर हँसे यह उसकी बर्दाश्त के बाहर की बात थी। वह काग़ज़-कलम एक ओर खिसकाते हुए कहता—

'बस, मैं अब नहीं लिखने का।'

'क्यों ?'

'तुम बाहर क्यों नहीं गईं ?'

'लो, यह चली । और न भी जाऊँ तो तुम्हारा क्या बिगाड़ती हूँ ? मैं चुप बैठी अपना काम कर रही हूँ, तुम अपना काम करो । और यदि शर्म आती हो तो पर्दा तानकर बैठो ।'

और फुलझड़ियों सी हँसी हँसती हुई वह बाहर चली जाती थी ।

उसके बाहर चले जाने के बाद भी शेखर वैसा ही बैठा रह जाता था। उसकी खिन्नता वैसी ही बनी रहती थी । इस प्रतिभासम्पन्न युवती को वह श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। जब वह पढ़ाने बैठती तो शेखर को बड़ी भली लगती थी । उसके ज्ञानोज्ज्वल और प्रेरणात्मक मुखमण्डल को वह बड़ी ही पूज्य भावना से देखता और मन ही मन सराहा करता था । निमिष-मात्र में वह युवती उसे वर्तमान से दूर, बहुत दूर भूतकाल के खण्डहरों में ले जाने की सामर्थ्य रखती थी । कभी उसे पुरातनकाल के सम्पन्न नगर कार्थेज की सैर कराती तो कभी वाटरलू के युद्ध-क्षेत्र में घुमाती थी। रोम की लुक्रेशिया, सीज़र और सिसेरो; यूनान का सुकरात, पिसानो और पेरिक्लीज़; बूढ़ा वैज्ञानिक मेलिज़ियो; शेक्सपियर और गाइनो सभी उसके परिचित थे । और बात की बात में वह शेखर को उन पुराने विद्वानों, लेखकों, और वैज्ञानिकों की महफिल में ले जाती थी । उनका वर्णन करते समय उसकी आँखों में जो अनोखी चमक और चेहरे पर जो अवर्णनीय शोभा व्याप्त होजाती थी उसे शेखर सरस्वती के श्रद्धालु भक्त की भावना से देखता और पूजता था । शेखर के मन वे सब वर्णन अत्यन्त ही नाविन्यपूर्ण और आनन्दप्रद होते थे । उनमें उसे सृष्टि का रहस्य, मानव स्वभाव की क्षुद्रता और महत्ता, वैचित्र्य और मूर्खता सभी का दर्शन होता था । एक ओर ज़ेण्टेपी का दुराग्रह हास्यास्पद और क्षुद्रतापूर्ण लगता था तो दूसरी ओर सुकरात की आध्यात्मिकता श्रद्धा से ओतप्रोत कर देती थी ।

'मैं भय से भी अधिक भयङ्कर हूँ' कहने वाला महाप्रतापी सीज़र चकाचौंध पैदा कर देता था; तो 'मैं समुद्रतट पर कोड़ों से खेलने वाले बालक के समान हूँ' कहने वाला न्यूटन प्रकृति के अपार रहस्य के आगे मनुष्य की क्षुद्रता का बोध कराता था। सौरमण्डल के सम्बन्ध में केप्लर का सिद्धान्त शेखर को विस्मय-विमूढ़ बना देता था। नेपोलियन और लियोनार्डो की सर्वतोमुखी प्रतिभा उसे चौंधिया देती थी। रूसो और वाल्टेर, मिल और बेन्थाम तथा डार्विन रहस्यमयी प्रकृति के लीलाक्षेत्र में प्रवेश करने के सर्वथा नये मार्ग ही खोल देते थे। 'Man was born free but is everywhere found in chains' अन्धकार के घने पट को चीरकर प्रकाश-किरणें बिखराने वाली उल्का की भाँति यह एक वाक्य सामाजिक अव्यवस्था और गड़बड़ी के सम्बन्ध में एक निगूढ़तम रहस्य को उद्घाटित कर देता था और अभी कल ही मस्तिष्क में जहाँ अपार उलझनें थीं वे सब जरा-सी देर में सुलझ जाती थीं।

जब-जब शेखर यह सोचता कि एमिली के नन्हें से मस्तिष्क में कितना सारा ज्ञान-भण्डार भरा पड़ा है तो उसके प्रति उसकी भक्ति और श्रद्धा शतगुनी होजाती थी। उसे लगता कि उसके आगे एमिली नहीं शुक्लवसना, वीणाकरमंडिता साक्षात् सरस्वती विराजमान है और वह स्वयं सरस्वतीदेवी से धीरे-धीरे ज्ञान-विज्ञान का अमृतरस पी रहा है। यह ख्याल आते ही वह एमिली की ओर टक लगाये देखता ही रह जाता था। उस क्षण एमिली उसे अनिन्द्य सुन्दरी दिखलाई पड़ती थी।

जब एमिली शेखर को अपनी ओर यों तल्लीन होकर देखते हुए पाती तो बोलना बन्द कर देती थी; परन्तु अपनी कल्पना में मग्न शेखर को इस बात का पता ही नहीं चलता था।

८

और तब वह पूछ बैठती—क्या देख रहे हो ? किसे देख रहे हो ? मुझे ? अच्छा, बतलाओ मैं क्या कह रही थी ? कहाँ ध्यान था तुम्हारा ? यह सुनकर शेखर गहरे अवसाद से खिन्नमन होजाता था। एमिली का एक-एक शब्द उसके दिमाग़ में चक्कर काट रहा होता परन्तु वह कुछ बोल न पाता। अपराधी की तरह सिर नीचा किये चुप बैठा रह जाता। और तब धीरे-धीरे कहा हुआ एक-एक शब्द माथे में घन की चोट की तरह बजता था—You Dunce ! Idiot ! (मूर्ख ! वज्रमूर्ख !)

और शेखर का कल्पना-लोक ताश के पत्तों की तरह ढह जाता था। अनिंद्य सुन्दरी सरस्वतीदेवी के रूप में बैठी एमिली विलीन हो जाती और सन्मुख बैठी रह जाती एक गौराङ्ग युवती जिसके ओठ रँगे होते, आँखें चंचल होतीं और गाल की हड्डियाँ उभरी हुई होतीं। न उसमें रूप होता न सौन्दर्य ही। शेखर दुःख के बोझ से दबी एक गहरी साँस लेता।

उधर ओंठ काटकर हँसती हुई एमिली अपना प्रश्न दुहराती ही जाती थी—बतलाओ, मैंने क्या कहा ? तुम क्या समझे ? परन्तु फिर शेखर उस-दिन कोई उत्तर नहीं दे पाता था और वज्रमूर्ख की पदवी ग्रहणकर अपने कमरे पर लौट आता था।

लेकिन दूसरे दिन दुपहर होते ही वह सब कुछ भूल जाता था। जनरव से गूँजती रोम की सड़कों पर जाने और शिल्पाचार्य फिडियारी के कलानि-केतन एक्रोपोलीस के चक्कर लगाने को उसका मन लालायित हो उठता

था। कलम मुँह में डाले पोप-पादरियों से लोहा लेने वाला वाल्टेर, घुमक्कड़ मार्कोपोलो, वेनिस की पोर्शिया, विश्व-शान्ति का पहला प्रचारक जार्जफॉक्स, और काँटों का ताज पहिनने वाला महान् अहिंसावादी ईसामसीह उसे बुलाने लगते थे। और लाख रोकने पर भी उसका कुतूहलप्रिय मन बंगले के एक कोने में जा बैठता था। उस कोने में उसकी विज्ञान की छोटी-सी प्रयोग-शाला थी और वह अपने हाथों प्रयोग कर देखना चाहता था कि हाईड्रोजन और ऑक्सीजन के सम्मिश्रण से सचमुच ही पानी बनता है या नहीं?

कमरे में प्रवेश करते ही उसे वात्सल्य मूर्ति-सी एमिली बैठी दिखलाई पड़ती थी। जैसे कल कुछ हुआ ही न हो इसतरह प्रश्नोत्तर शुरू होते और फिर सदा की भाँति यूरोप के प्राचीन शहरों के जनसमूहों, राज-दरबारों, कवियों, दार्शनिकों, शिल्पियों, शहीदों, और वैज्ञानिकों के बीच गुरु शिष्य की पुराण-यात्रा शुरू होजाती थी।

कभी-कदास एमिली शेखर को अपने साथ जङ्गल में भी घसीट ले जाती थी। लेकिन रास्ते में भी उनकी पुराण-यात्रा तो चलती ही रहती थी। शेखर इसी शर्त पर साथ जाने के लिए तैयार भी होता था। लेकिन लौटते वक्त बातचीत का विषय बिलकुल ही बदल जाता था। उस समय वे मिशन में देखे ग़रीब लोग, उनके रीति-रिवाज और उनके दुःख-सुख की बातें करते थे।

एक दिन दोनो इसीतरह मिशन के अस्पताल से लौट रहे थे। रास्ते में एक झरना पड़ता था। सन्ध्या पूरी खिल चुकी थी और उसके रंग झरने के पानी में प्रतिबिम्बित हो रहे थे। एमिली झरने के किनारे बैठ गई और पानी में पाँव डालकर धारा से खेलने लगी।

शेखर ने कहा—देर होजायगी। अन्धेरा होने ही वाला है।

'होने दो।'

'जङ्गल में व्यर्थ ही अन्धेरा करने से लाभ ?'

'डर लगता है ?'

'मुझे ?' और शेखर खिलखिलाकर हँस पड़ा ।

'यदि डर नहीं लगता तो नीचे बैठो: या मंजूर करलो कि जङ्गल में अन्धेरे से डर लगता है ।'

शेखर नीचे बैठ गया ।

''तुम्हें तैरना आता है ?'

'हाँ'

'मैं डूबने लगूँ तो बचा सकते हो ?'

'यह तो कुछ कह नहीं सकता ।'

'अच्छा एक दिन परीक्षा कर देखूँगी ।'

शेखर कुछ न बोला । वार्तालाप का विषय व्यक्तिगत होते ही उसकी जबान ठिठुर जाती थी ।

'नाव चलाना आता है ?'

'नहीं ।'

'मुझे आता है । अपने यहाँ यार्कशायर के तालाब में जब ज़ोरों की लहरें उठतीं और मछुए तक नाव चलाते डरते तब भी मैं नाव चलाती थी ।'

शेखर कुछ न बोला—सिर झुकाये सुनता रहा । थोड़ी देर बाद बोला—अब चलना चाहिये ।

'अच्छा चलो । तुम कभी निश्चिन्त होकर बैठने नहीं दोगे ।' एमिली ने चिढ़कर कहा और उठकर खड़ी होगई । उसने सोचा था कि इसतरह

चिढ़ने पर शेखर उसकी अनुनय कर कहेगा– कोई हर्ज़ नहीं । आओ, थोड़ी देर और बैठलें । लेकिन शेखर ने जैसे उसके चिढ़ने पर ध्यान ही नहीं दिया । झट से एमिली के पीछे हो लिया । शेखर के इस व्यवहार से एमिली की आँख में अपमान के आँसू आ गये । उसने शेखर से छिपाकर चुपके से आँसू पोंछ लिये और अपनी चाल तेज़ कर दी । रास्ते में शेखर ने दो-एक बार बातचीत करने का प्रयत्न भी किया परन्तु एमिली ने कोई जवाब ही नहीं दिया । उसका कण्ठ तो आँसुओं से अवरुद्ध होरहा था । ज़रा-सी बात के लिए एमिली को ठेस पहुँचाने के कारण स्वयं शेखर के दिल में न चाहते हुए भी वेदना उभर आई थी । शेखर ने यह दलील देकर मन को समझाने और दुःख को दबाने का बहुतेरा प्रयत्न किया कि—नाराज़ होगई तो उसकी बला से । आँसू ढार रही है तो खुशी से ढारे जाय । वह क्यों अकुलाये ? क्यों विह्वल हो ? बात न बात का नाम, मेम साहब को बुरा लग गया । और बुरा लग ही गया तो ऐसा क्या आसमान फट पड़ा है । वह क्यों व्यर्थ की चिन्ता मोल ले ? परन्तु ऐसी पचासों दलीलें उसके मन का समाधान न कर सकीं । रह-रहकर उसकी समवेदनाएँ एमिली के लिए उमड़ने-सी लगीं । वह रह-रहकर अपने आपको कोसने लगा— इतना बड़ा होगया; पर अभीतक मूर्ख ही रहा । तीन कौड़ी की अकल न आई । यदि थोड़ी देर और बैठ रहता तो ऐसा क्या बिगड़ा जाता था ? पर अकल हो तब न ?

आखिर उसने एमिली का मौन भङ्ग करने की एक युक्ति खोज ही निकाली । एमिली को 'हरिण और उसकी मुक्ति' का किस्सा बड़ा प्यारा लगता था । वह अकसर बड़े चाव से उसका जिक्र किया करती थी । शेखर ने अभी उसका सहारा लिया और पूछा—यदि इस अन्धेरे में कोई आकर तुझे पकड़ लेजाय तब ?

'तुझ' शब्द को सुनते ही एमिली का सारा दुःख, सारा अपमान और समस्त उत्पीड़न कापूर की तरह उड़ गया । प्रातःकालीन ओसकण-से प्रेमाश्रु

आँखों में उमड़ आये और वह बोली—ले जाय तो क्या ? इसबार तुम छुड़ाने मत आना। कह देना, बला टली। रोज़ परेशान करती थी।

अन्धेरे में शेखर उसके आँसू न देख सका इसलिये हँसकर बोला—हाँ, सच ही, तब तो मैं निश्चिन्त होजाऊँ।

'हाँ, तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ? आँख से दो बूँद आँसू भी नहीं गिराओगे। एक परदेशी युवती रही तो क्या और गई तो क्या, तुम्हारी बला से।'

फिर स्नेहसिक्त स्वर में पूछा—अच्छा बतलाओ ? छुड़ाने आओगे या नहीं ?

'उसदिन तो तुम्हें पहिचानता भी न था, फिर भी दौड़ा चला आया। और आज इतने परिचय के बाद भी न आऊँगा ?'

'हाँ, परिचय तो है ही लेकिन ऐसे परिचय तो कितने ही होते रहते हैं।'

'नहीं; केवल परिचय का ही सवाल नहीं है। मैं तुम्हारा अत्यन्त ऋणी भी हूँ।' शेखर ने कृतज्ञतापूर्वक कहा।

'सिर्फ कृतज्ञता का ही भाव है ? और कोई भाव नहीं है ?' एमिली ने पीछे की ओर मुड़कर सहसा शेखर के कन्धे पर हाथ रखते हुए पूछा। तेज़ी से चला आता शेखर उससे टकराते-टकराते बचा। उसने चिढ़कर कहा—लेकिन यह पूछने के लिए राह रोककर खड़े होने की क्या ज़रूरत थी ? चलते-चलते भी तो बात होसकती थी। घर पहुँचते-पहुँचते नौ बज जाएँगे।

'तुम्हें सिर्फ घर पहुँचने की फिक्र है; मेरे सवाल का जवाब देने की कोई फिक्र नहीं।' उसने निश्वास भरकर इतने धीरे से कहा मानो उसमें शक्ति रह ही न गई हो।

'सवाल का जवाब भी देता हूँ। तुम चलो तो सही।'

'नहीं, मुझे तुम्हारा जवाब नहीं चाहिये ।' एमिली मुड़कर चलने ही लगी थी कि बन्दूक का धड़ाका हुआ और शेखर 'हाय राम !' करता नीचे गिर पड़ा । गोली उसके कन्धे में लगी थी ।

एमिली के हाथ-पांव फूल गये । मारे डर के वह हाय-तोबा मचाने लगी । शेखर ने उसे दिलासा देते हुए कहा—अब रोने-चिल्लाने से कोई लाभ न होगा । घाव संगीन नहीं है । गोली मारने वाले के सिवा जंगल में दूसरा कोई व्यक्ति भी नहीं है और वह स्वयं गोली मारकर भाग गया है । गला फाड़कर भी चिल्लाओ तो भी कोई सुनेगा नहीं ।

फिर अपने कुर्ते को फाड़कर एक पट्टी एमिली के हाथ में देते हुए कहा—लो, यह पट्टी कसकर बाँधदो । तुमसे सेवा-टहल कराना भी इस तक़-दीर में लिखा था !

एमिली तो किसी अशुभ आशङ्का की मारी थर-थर काँप रही थी । शेखर ने उसे कह तो दिया था कि घाव संगीन नहीं है । परन्तु असल में गोली कन्धे के आर-पार निकल गई थी । हड्डी टूट गई थी और माँस का लोथड़ा बाहर निकल आया था । खून का फव्वारा-सा छूट रहा था और गरम, चिकने लहू से सारे कपड़े भीग गये थे । कमज़ोरी हर क्षण बढ़ती जारही थी । शेखर ने पाया कि यदि देर होगई तो वह बेहोश होजायगा । उसने एमिली से कहा—किले तक चलकर जाना तो मेरे लिए संभव नहीं है । वापिस मिशन के अस्पताल लौट चलें । वही ठीक होगा । तुम सहारा दे सकोगी ?

एमिली के कन्धे का सहारा लेकर शेखर खड़ा हुआ । असह्य पीड़ा होरही थी; परन्तु दाँत भींचकर चलने लगा । एमिली कहती जाती थी और रोती जाती थी—मुझ कलमुँही को अन्धेरे में झरने के किनारे बैठने की क्यों सूझी ?

'तो रोती क्यों हो ? तुमने तो कई बीमारों की मौत देखी है ।'

'परमात्मा के लिए ऐसी अशुभ बात अपने मुँह से मत निकालो। भगवान ईसा तुम्हारी रक्षा करें!'

'तुम भगवान को कबसे मानने लगीं? अभी परसों ही तो मुझे बेन्थाम का अनीश्वरवाद पढ़ा रही थीं?' उसने हँसने की झूठ-मूठ कोशिश की।

एमिली मन ही मन माता मरियम और सन्तों को पुकार रही थी। उसकी फ्राक भी लहू से भीग चुकी थी। शेखर की शक्ति प्रतिक्षण कम होती जारही थी। उसकी पकड़ ढीली पड़ती जाती थी। एमिली अन्धेरे में आंखें फाड़े देखती जाती थी कि कहीं कोई आश्रय-स्थान मिल जाय। आखिर शेखर एक जगह बैठ गया और बोला--अब तो एक भी कदम नहीं चला जाता।

एमिली ने उसे उठाने के लिए हाथ फैलाये लेकिन शेखर ने रोकते हुए कहा--रहने दो। तुम उठा भी लो तो मुझसे वर्दाश्त नहीं होगा। समीप ही कहीं ढोल बज रहा है। आदिवासी नाच रहे होंगे। वहाँ जाकर गाड़ी ले आओ।

वह जाने लगी तो शेखर ने जेब से रिवाल्वर निकालकर उसे देते हुए कहा--यह ले जाओ। ज़रूरत पड़ सकती है।

'नहीं, तुम्हीं अपने पास रहने दो।' और एमिली ढोल के स्वर का अनुसरण करती हुई तेज़ी से चल दी।

आदिवासी 'सिस्टर' एमिली को अच्छी तरह पहिचानते थे। झट से गाड़ी लेकर उसके साथ हो लिये। गाड़ी आने पर शेखर ने कहा--एक आदमी को जनरल के पास दौड़ा दो। वह चिन्तित होरहे होंगे। मैं तो तुम्हें भी साथ भेज देता परन्तु डर है कि गोली मारने वाला रास्ते में कहीं छिपा बैठा होगा।

आदमी को रवाना कर वह शेखर के साथ गाड़ी में बैठ गई और उससे पूछा—गोली मारने वाले को तुमने पहिचाना ?

'हां पहिचाना । दो दिन से तुम्हें कहने की सोच रहा था, पर कह न सका । मेरी लापर्वाही का आखिर यह परिणाम हुआ । वह मूरहेड था ।'

'मूरहेड ?' एमिली ने नीचे झुककर शेखर के चेहरे की ओर देखते हुए पूछा ।

'हाँ, मूरहेड ही था । जब तुम झरने के किनारे बैठीं, मुझे उसके पीछे की झाड़ियों में छिपने का आभास-सा हुआ था । देखा तो वह गिरता-पड़ता भागा जारहा था । हाँ, वही था ।' शेखर इतने में ही थक गया था इसलिए थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद बोला—मैं तुमसे यही कहना चाहता था कि मुझसे इतना मेल-जोल क्यों बढ़ा रही हो ? जो अकस्मात तुम्हारे जीवन में आ निकला है उसे इतना स्नेह क्यों दे रही हो ? वाग्दान से जो तुम्हारा पति...

लेकिन एमिली ने उसे आगे नहीं बोलने दिया; उसके मुँह पर हाथ रख दिया था । शेखर को एमिली की यह चेष्टा बहुत बुरी लगी । उसने खीझ-कर कहा—एमिली यों बार-बार मुझे मत छुओ ।

किसी ने ज़ोर से थप्पड़ मारा हो इस तरह एमिली झट से सिकुड़कर बैठ गई और बैठी ही रही ।

शेखर ने उपेक्षा से रुकते-रुकते कहा—तुम चाहे जो कहो; लेकिन तुमने उसे वचन दिया है; उसे आशा बँधा रखी है । सोते-जागते उसकी कामना की है । तुम्हारे पिता और उसके इष्टमित्र सभी इस बात को जानते हैं । फिर तुम एक कुलकन्या के लिये कलङ्कस्वरूप आचरण करो तो उसका रुष्ट होना स्वाभाविक ही है । परसों ही वह मेरे पास आया था और उसने मुझे तुम्हारे और उसके बीच हुए वाग्दान की बात बतलाई थी । उसीदिन

मुझे इसका पता चला। मैंने उसे विश्वास दिलाया कि हमारी मैत्री निर्दोष है। मैं इस सम्बन्ध में तुमसे भी कहने वाला था, लेकिन पिछले दो दिन तो विद्युत् के प्रयोगों में और अमेरिका के वर्णन में ही निकल गये। मैं कुछ कह न सका। असल में, एमिली, दोष उसका नहीं, हमारा ही है।

बर्फीले पानी की तरह ठण्डी आवाज़ में एमिली ने कहा—रहने दो शेखर, अपना यह शास्त्र विवेचन। नहीं चाहिये मुझे तुम्हारी यह जाति-धर्म की व्याख्या। हमारे समाज में तो वाग्दान से बँधे स्त्री-पुरुष सूचना देकर अलग होसकते हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि तुम्हारे यहाँ भी इस तरह की आज़ादी है या नहीं ?

'हमारे यहाँ भी वाग्दान रद्द होसकता है। खाली सामने वाले पक्ष को सूचना देना होती है।'

'अच्छा अब यह बतलाओ कि यदि सामने वाले पक्ष को सूचना दे दी गई हो, फिर भी वह नारी की असहायता का गैरवाजिब फायदा उठाकर उस पर और किसी निर्दोष पर पीठ पीछे से वार करे तो उसके लिए तुम्हारे नीति-शास्त्र में कोई सजा है या नहीं ?'

शेखर कोई जवाब न दे सका।

'मैं तुम्हारे यहाँ की हिन्दू-स्त्रियों जैसी सर्वथा निष्कलुष तो नहीं हूँ; लेकिन आज से तीन महीने पहले पापा की उपस्थिति में मूरहेड के साथ किये वाग्दान से छुट्टी ले चुकी हूँ। मेरी बात का भरोसा न हो तो अच्छे होकर पिताजी से पूछ लेना।'

फिर एमिली ने रास्ते भर कोई बात नहीं की। गाड़ी की पाल पर सिर रखे दुःख की मूरत बनी बैठी रही। तारों के मद्धिम प्रकाश में शेखर उसका घायल अन्तःकरण बिलकुल साफ-साफ देख रहा था। उस दिल में केवल मूरहेड ने ही नहीं स्वयं शेखर ने भी गोली मारी थी।

मिशन अस्पताल पहुँचते ही एमिली गाड़ी से नीचे उतरी और साथ के आदमियों से कहा—सावधानी से ऊपर ले आना ।

शेखर उठने का प्रयत्न कर रहा था, उसकी ओर देखे बिना ही कहा—तुम लेटे रहना मैं 'स्ट्रेचर' भेजती हूँ ।

'स्ट्रेचर की कोई ज़रूरत नहीं । हाथ का सहारा दो; मैं चला चलूँगा ।'

'उसकी कोई ज़रूरत नहीं । व्यर्थ ही तुम भ्रष्ट होजाओगे ।' और वह बिजली की तरह अन्दर के कमरे में लोप होगई ।

९

एमिली थोड़ी बहुत डाक्टरी भी जानती थी ।

आदिवासियों ने स्ट्रेचर लाकर पूछा—मेमसाब, साब को कहाँ सुलाया जाय ?

'इधर टेबल पर लाओ । पहले घाव धोकर साफ़ करना पड़ेगा । फिर मरहम-पट्टी की जायेगी ।'

टेबल पर पड़े हुए शेखर ने कहा-तुम छुओगी तो मैं भ्रष्ट हो जाऊँगा, इसलिए इन आदिवासियों को बतलाती जाना । वे घाव साफ़ कर देंगे ।

'गंगा में डुबकी लगाकर प्रायश्चित कर लेना । समय-असमय का भी कुछ ख्याल है या नहीं ?'

'यह सब अकल तो भगवान ने अकेले तुम्हें ही दी है । नहीं तो तुम सबके हाथ में मुझे सौंपता ही क्यों ?'

एमिली कीटाणु नाशक पानी से घाव धोने लगी । मिशन अस्पताल के चार-पाँच कर्मचारी हाथ में लालटेन, पट्टियाँ और दवाई की शीशियाँ लिये पास खड़े थे । वह घाव धो रही थी परन्तु उसके ओंठ काँप रहे थे ।

क्या बेन्थाम के अनीश्वरवाद का पारायण हो रहा है ?'

'चुप रहो ।'

घाव साफ़कर, पट्टी बाँध दी गई । फिर उसे बिस्तरे में लेटाकर रजाई ओढ़ाते हुए एमिली ने कहा—जवान हाथभर की होगई है । लेकिन दिल पर

बीतेगी तब पता चलेगा कि ओठ क्यों काँपने लगते हैं? खुदा की खैर मनाओ कि घाव खतरनाक नहीं है। जल्दी ही भरने की उम्मीद है।

लेकिन एमिली की यह धारणा ग़लत साबित हुई। दूसरे दिन सवेरे जब जनरल देखने आये तो उसे तेज़ बुखार था और सन्निपात के आसार शुरू होगये थे। ऐसी दशा में उसे क़िले में ले जाना असम्भव था। रहमान रात में ही आगया था और बुखार चढ़ने से पहले शेखर ने उसे पास बुलाकर कान में कह दिया था कि उसकी हालत कम ज्यादा क्यों न हो माँ को खबर न की जाय; नहीं तो वह व्यर्थ ही घबरा उठेंगी। इसलिए जब जनरल नरसिंगपुर खबर देने के लिए सवार भेजने लगे तो रहमान ने उन्हें रोक दिया। सेवा-सुश्रूषा का प्रबन्ध कर जनरल जब लौट रहे थे तो एमिली ने आकर उनसे कहा—मैं तो अभी यहीं रहूँगी।

'मेरी भी यही इच्छा है। उचित भी यही होगा। मैं बीच-बीच में आता रहूँगा।'

वह सारा दिन शेखर सन्निपात में बर्राता रहा। एमिली और रहमान उसके बिस्तरे के आगे बिना पलक झपाये और बिना कुछ खाये-पिये सारा दिन और सारी रात बैठे रहे। जब एमिली ज्यादा विह्वल होजाती थी तो रहमान उसे ढाढ़स बँधाने लगता—मिस साहिबा, हिम्मत न हारिये। हिम्मते मर्दा तो मददे खुदा। खुदा का नाम लीजिये। उसके नाम में वह कमाल हासिल है कि बीमार तो क्या मुर्दा भी जी उठता है। उस पर यकीन रखिये। यकीन से क्या नहीं होजाता। पानी पर पत्थर भी तैरने लगता है। और खुदा झूठ न बोलाये यह नाचीज़ नजूम (ज्योतिष) भी जानता है। मैंने मालिक का हाथ देखा है। बीमारी और बिस्तरे में उनकी आगवत नहीं लिखी है, इतना आप यकीन रखिये। खुदा की मेहर हुई तो कल चलने-फिरने लगेंगे।

दूसरे दिन सन्निपात तो मिट गया परन्तु बुखार बना रहा। पूरे छत्तीस दिन तक बुखार ने पीछा नहीं छोड़ा। शेखर की इस बीमारी में

उसकी सेवा-टहल करने के सम्बन्ध में रहमान और एमिली के बीच होड़-सी लग रही थी। रहमान शेखर का सारा काम स्वयं करना चाहता था, इसके लिए लड़ता-झगड़ता भी था; परन्तु एमिली उसे किसी चीज़ को हाथ तक न लगाने देती थी। दो बार बिस्तर झाड़ना, तीन बार दवाई पिलाना, कपड़े उतरवाना, धुले कपड़े पहिनाना, बटन लगाना, गर्म पानी से 'स्पंजबाथ' कराना, सिर दबाना, महाराज से सूप, काँजी आदि बनाकर अपने सामने पिलाना, कन्धे का सहारा देकर बाहर लेजाना आदि सभी काम एमिली स्वयं करती थी। शेखर को यह सब अच्छा नहीं लगता था; परन्तु क्या करता? और सब चीज़ों को तो लौटाया जासकता है, परन्तु प्रेम को कैसे लौटाया जाय? उसे कैसे फेर दिया जाय? वह तो किसी की सम्मति-असम्मति की पर्वाह किये बिना, धक्का-मुक्की कर अन्दर आ घुसता है। जब शेखर बहुत कहता-सुनता तो एमिली कह देती—तुम्हारे शास्त्रों में भी आपद् धर्म का अपवाद लिखा है न। अच्छे होकर गंगा स्नान कर आना। उस समय मैं तुम्हें रोकने नहीं आऊँगी। अभी तो जैसा मैं कहूँ किये जाओ। उसमें मीन-मेख मत निकालो। अभी तुम मेरी हिरासत में हो। मुझे रघुबीर की कैद से छुड़ाकर तुमने बड़ा अपराध किया। अब भुगतो उसका फल!

यह कहकर जाती हुई एमिली को रोककर शेखर कहता—परन्तु भागी क्यों जाती है? ज़रा खड़ी तो रह।

अब उसे तुम कहकर पुकारना निरर्थक-सा लगता था। बहुत कोशिश करता परन्तु जबान पर 'तुम' चढ़ता ही न था। 'तुम' कहने जाता तो ऐसा लगता मानों कमरे की छत, दीवालें और वहाँ का निर्जीव सामान सब मिल-कर उसकी हँसी उड़ा रहे हों।

'तू दिनभर इतना काम करती है। थक जाती होगी। रात में रहमान को क्यों नहीं जागने देती।'

'रहमान क्या समझेगा ? कौनसी दवा पिलाना, कब पिलाना और कितनी पिलाना ? शीशियों की अदला-बदली करदे तो मुसीबत ही होजाय ।'

'मुझे घड़ी देखना आता है । आप एकदिन बतला दीजिये । अगर ग़लती करूँ तो जो चोर की सजा सो मेरी सजा ।' रहमान कहता ।

'ना बाबा ! ग़लती होजाने के बाद सज़ा देकर भी क्या होगा ?'

ग़लती नहीं होगी । मैं भी जागता रहता हूँ । और अंग्रेज़ी तो मैं भी पढ़ लेता हूँ ।'

'बड़े आलिम फाजिल होगये हो सो जानती हूँ । अभी पूरे छह महीने तो हुए नहीं और जनाब की हिमाकत देखिये कि अंग्रेज़ी पढ़ना सीख गये हैं ।'

'लेकिन ज़रा अपनी तबियत का भी तो ख्याल कर । आँखें गड्ढे में धँसी जारही हैं ।'

'मैं कुछ तुम्हारी सेवा-टहल करने के कारण दुबली नहीं होगई हूँ ।'

'तो बता, फिर क्या कारण है ?'

'तुम पहले चंगे होलो तब बतलाऊँगी ।' और वह जाने लगती ।

शेखर उसे रोकते हुए कहता—पर सुन तो सही ।

'मुझे फ़ुर्सत नहीं है । अभी तो कपड़े धोना पड़े हैं । तुम और रहमान तो बेकार हो । दिनभर गप्पें लड़ाया करो मैं चली ।'

उसके चले जाने के बाद रहमान कहता—क्या गजब की फ़ुरती है ! चलती नहीं हवा में उड़ती है । आध घण्टे में तो दस चक्कर लगा जाती है । और एक हमारी औरतें हैं । तीन घण्टे तो उठकर खड़े होने में ही लगा देंगी ।

एकदिन एमिली 'बेडपान' उठाकर ले जारही थी । शेखर ने उससे कहा—फिर लेजाना । पहले यहाँ आ, मेरी बात सुन ।

एमिली ने बर्तन नीचे रख दिया और बोली–कहो ?

'जनरल की बेटी होकर तुझे इनसे नफरत नहीं आती ?'

'नफ़रत ? नफ़रत क्यों आयेगी ? बीमारों की सेवा-टहल में ऐसे काम तो मैं करती ही रहती हूँ । वहाँ परमार्थ समझकर करती हूँ यहाँ अपना स्वार्थ है इसलिए करती हूँ ।'

'यहाँ भी परमार्थ समझकर नहीं कर सकती ?'

'परमार्थ समझूँगी तो पाप लगेगा । जो अपना है उसके साथ परमार्थ कैसा ?'

'मुझे आश्चर्य होता है। मैं तो कभी ऐसा गन्दा काम न कर सकूँ।'

'जिस पर तुम्हारा प्रेम हो उसका भी नहीं कर सकते ? जिसे तुम प्राणों से भी अधिक चाहते हो उसका मल-मूत्र भी नहीं उठा सकते ?'

'शायद उठा सकूँ । लेकिन जनरल की इकलौती बेटी...

'तुम 'शायद' इसलिए कह रहे हो कि तुम कट्टर हिन्दू हो । तुम्हारे संस्कार ही ऐसे हैं । तुम्हारे समाज में ऊँच-नीच के कड़े बन्धन हैं । तुम्हारे यहाँ नीची जाति की लड़की ऊँची जाति के लड़के के साथ कभी शादी कर ही नहीं सकती । इसलिए प्रेम का जो बराबरी का दर्जा है वह तुम्हारी कल्पना से बाहर की बात है । कभी ऊँची जाति वाले के साथ नीची जाति वाले की शादी हो भी गई तो उसमें बराबरी के दर्जे के बदले ऊँची जाति वाले के मन में परोपकार और त्याग की भावना ही रहेगी । और नीची जाति वाले के मन में सिवा कृतज्ञता के और कुछ न होगा । तुमने मुझे अपने से श्रेष्ठ कुल की समझ रखा है और अपने आपको मुझसे नीचे दर्जे का समझते हो । सिर हिलाकर 'ना' मत कहो । मैं जो कह रही हूँ ठीक कह रही हूँ । इसीलिए तुम्हें मेरी इस सेवा-टहल से अचरज होता है । लेकिन असल में प्रेम का और इस सेवा-टहल का चोली-

दामन का सम्बन्ध है । यदि ऐसा न होता तो कुरूप और विकलाङ्ग की कोई माता ही न होती; उसे माँ का स्नेह ही न मिल पाता; जन्म लेकर सीधे मौत के मुँह में जाना पड़ता । लेकिन तुम्हारे सामाजिक बन्धन और ऊँच-नीच का ख्याल प्रेम के इस महानरूप को देखने से तुम्हें वंचित किये हुए है ।'

'तेरी बात कुछ-कुछ तो समझ में आती है । लेकिन तू मेरा मतलब ठीक से समझी नहीं । मुझे आश्चर्य इसलिए नहीं होरहा कि तू मेहतर का काम कर रही है । मेरे आश्चर्य का कारण तो यह है कि तू मेरा, एक अति सामान्य सैनिक का मल-मूत्र क्यों उठाती है ?'

'यह काम तो मैं बराबर करती रही हूँ । रोगी परिचर्या में ऊँच-नीच का भेद किये बिना छोटे से छोटा जो काम किया है उसी से प्रसन्न होकर मेरे प्रभु ने आज की शुभ घड़ी प्रदान की है ।' उसने अपने दोनों हाथों से क्रास बनाया और 'बेडपान' लेने के लिए नीचे झुकी ।

'देखो न, इन दिनों तो फुर्सत ही नहीं मिलती । आँख खुलते ही काम में लग जाती हूँ । तुम्हारे हाथ-मुँह धुलाकर स्वयं नहाती हूँ । फिर महाराज से तुम्हारा पथ्य बनवाती हूँ । तुम्हें पथ्य देकर पिछले दिन की बुखार की रिपोर्ट लिखती हूँ और आदमी भेजकर दवाई मँगवाती हूँ । भोजन की तैयारी कर घण्टे दो घण्टे के लिए अस्पताल चली जाती हूँ । वहाँ से लौटते और तुम्हारे, अपने और रहमान के भोजन का प्रबन्ध करते बारह तो योंही बज जाते हैं । फिर दवा, कपड़ों की धुलाई, बर्तनों की सफाई, नाज का बीनना-चुनना, दलना-पिसाना, बिस्तरों को झटकना-फटकारना आदि कामों में दिन पूरा होजाता है और कुछ पता ही नहीं चलता । वहाँ थी तो दिनभर निठल्ली घूमा करती थी । यहाँ तो दम मारने की भी फुर्सत नहीं मिलती । तो भी आधा-पाव घण्टा बैठ ही ली हूँ । अब दो घण्टे के लिए फिर काम में भिड़ जाऊँगी । और वक्त निकालकर एक चक्कर तुम्हारे इधर भी लगा ही जाऊँगी । और तुम सोचते होगे, एमिली बिलकुल पागल

है। लेकिन एथेन्स नगरी के सबसे ज्यादा समझदार आदमी को उसी की औरत पागल कहा करती थी और दूसरे लोगों ने भी पागल बनाकर उसकी जान ही लेली थी। समाज हिन्दू पति के समान है। परम्परागत रूढ़ियों के विरुद्ध चलने वाले को वह कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता। व्यक्ति और समाज का यही संघर्ष क्रांति और बलिदानों का जनक है। गैलि-लियो को लो, चाहे फॉक्स को; ईसा-मसीह को लो या रोमियो-जूलियट को। सबके मूल में एक यही बात है। फर्क केवल इतना ही है कि ईसा, फॉक्स या गेलिलियो का बलिदान हजारों वर्षों में एकाधबार होता है जबकि रोमियो-जूलियट को हरदिन हरघड़ी समाज की वेदी पर बलिदान होते रहना पड़ता है।'

उसके स्वर में एक ऐसी गहन निराशा और असहनीय वेदना का ऐसा पुट था कि उसने शेखर को भी व्यथित कर दिया था। वह आश्वासन दे या कुछ कहे उससे पहले ही एमिली 'बेडपान' लेकर चली गई थी।

शेखर ने मन ही मन कहा, आज का पाठ तो उसने पढ़ा ही दिया है। और वह विचारों में लीन होगया।

यह युवती क्यों ऐसा समझ रही है कि शेखर सिर्फ जात-पाँत के डर से उसके प्रेम को अस्वीकार कर रहा है? वह उसे कैसे समझाये कि हिन्दू समाज की निषेध-आज्ञाएँ उसके प्रेम में रोड़े नहीं बन रही हैं, बल्कि जिस पात्र में वह हृदय का सारा प्रेम उँड़ेल रही है उसमें तो एक बूँद के लिए भी जगह नहीं है। उसका सारा प्रेम लबालब भरी छागल के उपर से ही बहकर धूल में मिल रहा है। पानी से अघाई हुई धरती में वर्षा की एक बूंद भी नहीं समा सकती। मूसलाधार बरसकर भी उसे ऊपर से ही बह जाना होता है। वही हाल शेखर के हृदय का भी है। परन्तु अनचाहे ही बरसने वाली वर्षा-धारा को कोई कैसे समझाये?

और सोचते-सोचते शेखर चौंक उठा। मानलो कि यदि सुभगा की प्रेम-धवल मूर्ति उसके हृदय मन्दिर में न होती तो वह क्या करता? तब क्या

वह इस आँग्ल युवती का पाणिग्रहण कर लेता ? क्या अपनी जाति छोड़कर फिरंगी होजाता ?

यह प्रश्न उठते ही उसके चेहरे का सारा रंग उड़ गया। छाती में करवतें-सी चलने लगीं। क्या उसपर किसी ने जादू कर दिया था या मंत्र फूँक दिया था ? नहीं तो कट्टर हिन्दू की सन्तान होकर वह इस तरह की बातें सोचता ही क्योंकर ? यदि माँ और सुभगा को उसके इन विचारों का पता चल जाय तो बेचारियों के क्या हाल हों ?

फिर प्रश्न का दूसरा पहलू उसके सामने आया। आखिर यह हिन्दू धर्म है क्या ? इस धर्म के श्रेष्ठ महर्षि वेदव्यास धीमर की सन्तान थे। विश्व-परिव्राजक नारदमुनि की माँ को अपने पति का नाम तक मालूम नहीं था। वसिष्ठ वेश्या के पुत्र थे। भगवान कृष्ण ग्वालों के घर में पले-पुसे थे। राम क्षत्रिय थे। किसी एक जाति, एक कुल या एक वर्ण की श्रेष्ठता की छाप तो इस धर्म पर लगी नहीं थी। हिन्दू धर्म की विशाल अट्टालिका किसी एक पैगम्बर के हाथों तो रची नहीं गई थी। जुलाहे कबीर और चमार रैदास, बुनकर धन्ना भगत और मुस्लिम संत दादू, ब्राह्मण ज्ञानदास और अछूत नन्ददास सभी ने इसकी नींव की ईंटें जमाई थीं; चूना पीसा था और रंग-रोगन किया था। फिर अकेले अंग्रेज़ ही इससे बहिष्कृत क्यों किये जायें ? जब हिन्दू धर्म में ऊँच-नीच और जात-पाँत के बन्धन नहीं तो किसने अंग्रेज़ों पर रोक लगाई है ? हिन्दू होकर वह ऊँच-नीच से जितनी घृणा करता है उतनी घृणा तो एमिली भी नहीं करती थी। वह तो सभी को समान समझती थी। सभी को परमात्मा की दृष्टि में बराबर समझकर उसने तो उनका मल-मूत्र भी उठाया था। फिर उससे हिन्दू धर्म के अपवित्र होने का अन्देशा कैसा ?

धीरे-धीरे उसके मन का अन्धेरा छँटने लगा। सूर्योदय होरहा था। उसके कल्पना-चक्षुओं के आगे एक विशाल नदी आई। उस नदी के

किनारे पर एक विशालकाय बरगद का पेड़ दिखाई दिया। उसकी टह-नियों से अनेकों जटाएँ लटक रही थीं। बरगद की छाया में मोर, तोते, मैना, कौए गोरैया आदि अगणित पंछी कलरव करते हुए प्रातःकाल की अभ्यर्थना में मंगल गीत गारहे थे। एक ओर गाड़ियाँ छूटी हुई थीं; परिश्रान्त पथिक विश्राम कर रहे थे; कोई सूर्य को अर्घ चढ़ा रहा था; कोई पाथेय खोलकर नाश्ता कर रहा था। एक ओर चपल किशोर-वृन्द गिल्ली-डण्डा खेल रहा था। बरगद के तने के आगे युवतियों का समूह पूजा कर रहा था: कोई गन्ध लगा रही थीं; कोई अक्षत चढ़ा रही थी; कोई कच्चे सूत के धागे समर्पित कर रही थी; कोई अपनी सुकोमल अँगुलियों से छापे लगा रही थी; कोई थाली में पुजापा और आरती लिये प्रदक्षिणा कर रही थी। थोड़ी दूर श्वेत-धवलकाय गायें बैठी अपनी बड़ी-बड़ी स्निग्ध आँखों से देखती हुई बछड़ों को चाट रही थीं। उनके पास बैठा ग्वाला बँसी बजा रहा था। नदी तट की ओर से सद्य-स्नात स्त्री-पुरुषों का समूह गीले वस्त्र पहिने, कन्धों पर ज़ल-कलश उठाये बरगद की ओर जल चढ़ाने के लिए चला आरहा था। उन श्रद्धालु भक्तों ने आकर बरगद को जल चढ़ाना शुरू किया। किसी ने इस जड़ में पानी दिया, किसी ने उस जड़ में; किसी ने पास की जटा को पानी पिलाया, किसी ने दूर की जटा को; और किसी श्रद्धालु ने ठेठ तने की जड़ों में पानी डाला। कोई यह नहीं कहता कि अरे भाई, वहाँ नहीं यहाँ या यहाँ नहीं वहाँ पानी डालो। वहाँ का पानी निरर्थक है या यहाँ का पानी सार्थक। जिसकी जैसी रुचि थी, जिसको जो अच्छा लगा उसने वही किया, वहीं पानी डाला और नमस्कार प्रदक्षिणा कर चलते बने। उनमें हिन्दू भी थे और मुसलमान भी; सिख भी थे और पारसी भी; चमार, बुनकर नाई, धोबी सभी थे। ईसाई भी थे, अंग्रेज़ भी थे। नदी के जल और सूर्य की किरणों से पोषित वह बरगद सभी के लिए समानरूप से उपलब्ध था, सबको अपनी ठण्डी छाया में आश्रय देता था। उसके निकट मनुष्य और जानवर में; पशु और पक्षी में, कीड़े और मकोड़े में, कोयल और कौए में,

काले और गोरे में, जड़ों में पानी डालने वाले और न डालने वाले में कोई भेदभाव नहीं था ।

शेखर स्वप्नस्थ की नाईं, कल्पना-लोक में उस सर्वभूत स्तिरत बरगद को देखता रहा, देखता ही रहा ।

१०

शेखर का बुखार उतर गया था। बदन भी थोड़ा भरने लगा था। शाम-सुबह लकड़ी के सहारे कुछ दूर घूम आने की अनुमति भी उसे एमिली से मिल गई थी। थोड़े दिनों में बिलकुल चङ्गा होकर वह अपने काम पर लग जायगा। एमिली भी आजकल में वहाँ से जाने की तैयारियाँ कर रही थी। इधर जनरल की तबियत मुकाम पर नहीं थी। डाक्टरों ने उन्हें हवा पलटे के लिए मरी जाने की सलाह दी थी।

कभी-कभी एमिली भी शेखर के साथ सवेरे घूमने चली जाती थी। यों रोज़ रहमान जाया करता था। एक दिन उसे ज़ोर का दमा उठा। वह जा नहीं सकता था। उसे गरम पानी देकर एमिली शेखर के साथ घूमने निकली। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। उषा ने आकर चारों ओर गुलाल बिखेर दी थी। आदिवासियों की झोंपड़ियों से दही बिलोने और चक्की चलाने का स्वर उठ रहा था। कोई कामकाजी किसान अभी से हसिया लेकर निकल पड़ा था। पहर रात रहे जङ्गल में चरने के लिए गये हुए पशु लौट रहे थे और उनके गले की घंटियों का स्वर सारे जङ्गल को गुँजा रहा था। और कौओं ने तो काँव-काँव कर सारा आसमान ही सिर पर उठा लिया था।

शेखर ने ओवरकोट पहिना था और सिर पर शाल लपेटी थी। परन्तु एमिली ने सिर्फ एक भूरे रंग की शाल अपने चारों ओर लपेट ली थी।

'अब तुम जल्दी अच्छे हो जाओ तो मैं पापा को लेकर मरी जासकूँ।'

'अच्छा होने में अब क्या बाक़ी रह गया ? और तू कबतक मेरी सार-सँभाल करती रहेगी ? असल में तो अब दवा-दारू की भी कोई ज़रूरत नहीं रह गई है ।'

'पहले मैं सोचती थी कि बुखार उतर जाय तो चलदूँ । बुखार उतरा तो सोचा, थोड़ा चलने-फिरने लगो तब जाऊँगी । अब मन कहता है कि खाना-खूराक शुरू होजाने पर जाऊँगी । पता नहीं पूरी खूराक खाने लगोगे तब मन कौनसा बहाना करेगा ?'

'तब कहोगी कि अब धक्का मारकर निकालने पर ही जाऊँगी ।' शेखर ने हँसते हुए कहा ।

'क्या सच ही धक्का मारकर निकाल दोगे ?'

'जहाँ साथ रहना ही नहीं है वहाँ धक्का मारकर निकालने का सवाल ही कहाँ उठता है ?'

एक नाले के निकट आकर शेखर ने कहा—आ, थोड़ी देर यहाँ बैठें ।

'चलो, लौट चलें ! बैठना नहीं चाहती ।'

'यह जगह सुन्दर है ।'

'होगी । मुझे देर हो जायेगी । अबेर होने से अकाज होगा ।'

शेखर को उस दिन की सन्ध्या याद हो आई और वह खिलखिलाकर हँसते हुए एक शिला-खण्ड पर बैठ गया और बोला—तुझे जाना हो तो अकेली जा मैं नहीं आने का ।

एमिली दो डग जाकर लौट आई और बैठते हुए बोली—तुम यही कहोगे, सो मैं जानती थी ।

उसके स्वर में एक ऐसी प्रच्छन्न वेदना थी कि शेखर उसके निकट खिसक आया और बोला—मैं क्या करूँ एमिली ? चाहता हूँ कि तू जो माँगती है उतना ही नहीं उससे भी अधिक दे डालूँ । कुछ भी न रखूँ । अपने को रीता कर दूँ । परन्तु जो है ही नहीं वह कहाँ से दूँ ? तू सोचती होगी कि मैं धर्मभीरुता के कारण तुझसे भागा फिरता हूँ । लेकिन ऐसी बात नहीं है । धर्म के नित्य और अनित्य स्वरूप को तुझीसे पहिचानना सीखा हूँ । उसका तो मुझे कोई डर नहीं है । मेरे मन जात-पाँत और छूत-अछूत के बन्धन अब नगण्य होचुके हैं । उसके भय से तुझ जैसी ऐश्वर्यशालिनी को अपने द्वार से ढकेलने का पाप नहीं करूँगा । लेकिन जो तू माँगती है वह मेरे पास है ही नहीं । तीनों लोकों में घूम आऊँ तब भी वह मुझे नहीं मिलेगा ।

'क्या तुम वैरागी या सन्यासी हो ?'

'ना तो वैरागी हूँ ना तो सन्यासी ही । लेकिन जो प्रेम तू माँगती है वह तो बरसों पहले, बचपन में ही दिया जाचुका है, दूसरे का होगया है । और आज भी उस दिन की याद उतनी ही ताजा है । वह प्रेम उतना ही निर्मल और पवित्र है और मेरे हृदय में उसी तरह जगमगा रहा है । तू तो मुझसे अधिक पढ़ी-गुनी है और जानती है कि दुनिया की और सब चीज़ों में हिस्सा-बाँट होसकता है और सब वस्तुएँ देकर वापिस ली जासकती हैं; परन्तु प्रेम के न तो हिस्से किये जासकते हैं और न उसे वापिस ही लिया जासकता है । वह तो व्यापारिक लेखे-जोखे और जमा-खर्च से परे ही है ।'

एमिली आँख बन्द किये एकाग्र मन से शेखर की बात सुन रही थी । सुनते-सुनते उसकी आँखों से आँसुओं की धारायें बह चलीं ।

शेखर ने अपनी अँगुली से अँगूठी निकालकर हथेली में ले ली और एमिली से कहा—यह देख !

एमिली ने देखा कि उसकी हथेली पर प्रातःकालीन सूर्य की किरणों से प्रतिबिम्बित एक अँगूठी चमक रही थी।

'इस पर उसका नाम लिखा है। पढ़ले इसे।'

'एमिली ने धीरे से नाम पढ़ा। लिखा था, 'सुभगा।' वह नाम पढ़कर फिर अँगूठी को एकटक देखने लगी।

'हाँ, सुभगा ही नाम है उसका।' शेखर ने कहा और उसका चेहरा प्रेम की स्वर्गीय आभा से दमक-सा उठा।

'तू, जिसने कि मुझे मौत के मुँह से वापिस लौटाया है...'

लेकिन एमिली ने हाथ जोड़कर उसे बीच में ही रोकते हुए कहा—कृपा कर आज यह बात अपने मुंह पर मत लाओ। अभी तुम्हीं ने कहा है कि प्रेम व्यापारिक लेखे-जोखे और जमा-खर्च से परे है।

'फिर भी...' लेकिन वह कहते-कहते रुक गया।

'सो मैं समझती हूँ और जानती हूँ कि तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं इसीलिए मेरे प्रेम को कृतज्ञता के विविध नापदण्डों से तोलने का प्रयत्न करते हो और करते रहोगे।' कहते-कहते उसका गला भर आया। ऐसा लगता था मानों दूसरे ही क्षण वह फूट-फूट कर रोने लगेगी।

शेखर उसके बिलकुल पास खिसक आया और बोला—एमिली, एमिली, मैं नितान्त दरिद्री हूँ। अपना सब कुछ लुटाकर भिखारी होगया हूँ। तू जो माँगती है वह कहाँ से दूँ? न देपाने का कुछ कम दुःख नहीं है मुझे। और क्या पुरुष पति का प्रेम दे तभी प्रेम की सार्थकता होगी, नहीं तो नहीं? क्या इतना ही काफी नहीं है कि मैं तुझे चाहता हूँ, तेरा कृतज्ञ हूँ, तुझे कभी नहीं भुलाऊँगा। दुःख में, सुख में जब बुलाएगी दौड़ा चला आऊँगा। एमिली, क्या इतना काफी नहीं है?

एमिली ने उसे प्रणामकर कहा—बस, बहुत है। इससे अधिक का बोझ शायद मैं दुर्बल नारी ढो भी न सकूँ। तुमने आज जो दिया वही मेरा जीवन-सर्वस्व है। उसी को सिर-आँखों पर चढ़ाकर स्वीकार करती हूँ। मेरे लिए इतना ही काफी है कि अब तुम मुझसे भ्रष्ट नहीं होगे। इस प्रतीति के आगे मेरी सब वासनाएँ शान्ति हुईं।

शेखर ने भी उसे नमस्कार कर कहा-एमिली, मुझे तेरी याद कभी न भूलेगी।

थोड़ी देरतक दोनों चुप बैठे रहे। जब एमिली प्रकृतिस्थ हुई तो उसने पूछा—तुमने मुझे प्रणाम क्यों किया था?

'एक तो हम ऊँच-नीच में नहीं मानते, दूसरे, तू मेरी गुरु है।' उसने हँसकर कहा और फिर गम्भीर होकर बोला—एमिली, सच ही तू मेरी गुरु है। आज तूने मुझे मुक्त कर दिया।

एमिली ने लौटते वक्त रास्ते में शेखर से कहा—अब यह अँगूठी मेरे ही पास रहने दो।

'कोई हर्ज़ नहीं। रखले। जब कभी मेरी आवश्यकता पड़े, जहाँ हो वहीं से यह अँगूठी भेज देना। मैं चला आऊंगा।'

'सुभगा से इसका जिक्र करोगे?'

'पहली भेंट में ही करूँगा।'

'वह क्या कहेगी?

'यदि मैंने उसे ठीक से पहिचाना है तो मुझे डाँटेगी और तेरी खोज में निकल जायेगी।'

'ना, उनसे मत कहना।'

'क्यों ?'

'हम स्त्रियों की छाती बहुत छोटी होती है। छोटी-सी बात भी बर्दाश्त नहीं कर सकतीं।'

'तेरी छाती तो छोटी नहीं है।'

एमिली प्रसन्न मुद्रा से उसकी ओर देखती रह गई।

'एक काम करना। आज मेरे लिए भी तू ही भोजन बनाना। साथ बैठकर खाएँगे।'

एमिली आँसू भरी आँखों से शेखर की ओर देखती ही रह गई, उसे आँसू पोंछने का भान भी न रहा।

* * *

एमिली की रवानगी के एक दिन पहले शेखर ने रहमान से कहा—क्यों रहमान चाचा, तुम एमिली के साथ जाओगे ?

'जाऊँगा क्यों नहीं हुजूर ?'

'उसकी खिदमत करना और मुझे खबर आदि देते रहना।'

फिर चन्दन की उस पेटी में से वही रत्नजटित हार निकालकर उसे देते हुए बोला—इसे साथ लेते जाओ। वक्त-ज़रूरत काम आयेगा।

शाम को रहमान उसे कुएँ की ओर ले गया और वहाँ दिवाल के एक पत्थर पर हाथ रखकर बोला—कुँवर साहब, इसे याद रखियेगा। फिर पत्थर को ज़ोर से धकेला तो गढ़ी की दीवाल में आदमी जासके इतना बड़ा सूराख होगया था।

११

१८५७ का ग़दर अंग्रेज़ों के लिए 'आ बल मुझे, मार' वाली मसल की तरह था। वह आफ़त उन्होंने खुद होकर बुलाई थी। जनता की सहनशक्ति की भी सीमा होती है। छोटा-मोटा अत्याचार तो वह चुपचाप सह लेती है। ज़रा-सी बात के लिए विद्रोह नहीं करती। लेकिन जब जीवन मृत्यु से भी अधिक असहनीय होजाता है तब उसे मज़बूर होकर विद्रोह का रास्ता अख्तियार करना पड़ता है; तभी वह मौत का सामना करने के लिए तैयार होती है।

हिन्दुस्तान पर फिरंगी साम्राज्य की जो नयी विपत्ति आई थी उसे जनता इस आशा में कि देर-अबेर इसका भी अन्त हो ही जायगा, धीरज के साथ बर्दाश्त करती रही। लेकिन कम्पनी की साम्राज्य-लिप्सा का कहीं अन्त नहीं था। वह एक ऐसी बुभुक्षा थी जो दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती थी। जितना ही अधिक भक्ष्य सामने आता वह उतना ही अधिक तेज़ी से भड़कती थी। यदि आर्यावर्त को लङ्का में मिला लेने से रावण की साम्राज्य-लिप्सा का अन्त होजाता तो संभवतः वह अपने विनाश से बच जाता; लेकिन वह तो सारी पृथ्वी, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तक लेना चाहता था। और इतने से भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। अन्त में वह दौड़ा विश्वस्वामित्व के सिंहासन पर बैठने के लिए। और उसी के नीचे दबकर उसका तथा उसकी साम्राज्य-लिप्सा का अन्त हुआ। कम्पनी की साम्राज्य-लिप्सा के भी यही हाल थे। कलकत्ता हाथ में आया तो बंगाल के बाईस

परगनों पर उनकी गीधदृष्टि मँडराने लगी। लेकिन बंगाल पर कब्जा होते ही गंगा-जमुना का समृद्ध इलाका उन्हें लुभाने लगा। उसे लेकर भी सन्तोष नहीं हुआ। अब पूना, मैसूर, कर्नाटक और दिल्ली की हुकूमत चाहिये। सिन्ध, पंजाब, नागपुर, गुजरात और काठियावाड़ आदि सारे हिन्दुस्तान के एक एक कोने पर उनकी विषैली दृष्टि पड़ने लगी।

हिन्दुस्तान इसतरह की साम्राज्य-लिप्सा से सर्वथा अनभिज्ञ था। विदेशी आक्रमण तो कई-कई हुए थे। लूट-पाट भी कई आक्रान्ताओं ने की थी। लेकिन वे सब पानी की बाढ़ की तरह आकर निकल गये थे। दो-चार शहर या दस-पाँच मन्दिर लूटकर चलते बने थे। उनमें से किसी ने देश के गाँवों को नहीं छेड़ा था। देहातियों पर उन आक्रमणों का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ने पाया था। कई शासन-परिवर्तन हुए लेकिन गाँवों की अर्थ-व्यवस्था और पंचायत प्रथा पर अभी तक किसी ने हाथ नहीं डाला था। युद्ध के मारू बाजे के बीच भी किसान अपनी धरती को जोतता-बोता रहता था; शिक्षक अपनी पाठशालाओं में पढ़ाता रहता था; और देव-मन्दिरों में पूजा-अर्चा होती रहती थी। परन्तु कम्पनी की साम्राज्य-लिप्सा में तो राजे-रजवाड़े, ठाकुर-ज़मींदार, व्यापारी और कारीगर, किसान और मज़दूर, देश के सभी वर्ग स्वाहा होने लगे। कारीगर की कारीगरी, किसान की खेती और बनिये का व्यापार सभी कुछ चौपट होने लगा। गायों की गोचरभूमि और पंडित की पाठशालाएँ भी न बचीं। जिन सुखी-सम्पन्न प्रान्तों में पहले किसान खुशहाल था, व्यापारी सुखी था, कारीगर के कला-कौशल फल-फूल रहे थे, पंडित-शिक्षक आदर की दृष्टि से देखे जाते थे वहाँ अब धूल उड़ने लगी थी। व्यापार पर कम्पनी का एकाधिपत्य होगया था; कारीगरों के अँगूठे काट डाले गये थे; खेती लुट गई थी और दान-दक्षिणा के अभाव में पाठशालाएँ बन्द होगई थीं। और तब भी कम्पनी की लिप्सा का अन्त नहीं हुआ था। वह यक्षिणी तो अपनी लाल-लाल जीभ लपलपाती, खप्पर फैलाये 'खाऊँ खाऊँ' करती बढ़ी ही चली आरही थी। 'बंगाल खाया, अवध आगरा खाया, खा गई मैं पंजाब। अब अगर हिन्द में कुछ नहीं

बचा तो आसाम जाऊँगी, मणिपुर जाऊँगी, बर्मा जाऊँगी ! मुझे तो भख चाहिये । लाओ भख, भख लाओ !'

यह देख हिन्दुस्तान के लोगों ने निर्णय किया कि, यदि भेड़-बकरी की ही तरह हलाल होकर मरना है तो कम से कम चीख-पुकार ही क्यों न मचाई जाय । मरना तो है ही फिर क्यों न एकबार इतने ज़ोर से चिल्लाया जाय कि सारी दुनिया सुन ले और दुनिया को बनाने वाला अगर कहीं कोई हो तो वह भी सुन ले ।

फिरंगियों द्वारा सारे देश में होरहे इन अत्याचारों-अनाचारों और इस सामाजिक विध्वंस ने ही सिपाही-विद्रोह की ज्वाला धधकाई थी । ज्वाला को धधकाने वाली चिनगारी चरबी वाले या बिना चरबी वाले कारतूस भले ही हों; परन्तु ईंधन तो था अंग्रेज़ों द्वारा सारे राष्ट्र का भीषण शोषण और दमन । सिपाही-विद्रोह के सम्बन्ध में लिखते हुए लडलो ने सही ही कहा है कि 'यदि उस समय हिन्दुस्तानियों ने बग़ावत न की होती तो आने वाली पीढ़ियाँ उन्हें इन्सान हर्गिज़ न समझतीं ।'

कम्पनी की कमान में लड़ने वाला देशी सिपाही भी आखिर तो देहात का किसान ही था । वह फौज में भर्ती हो गया था । लेकिन उसका बाप या बेटा, भाई या भतीजा तो अब भी गाँव में हल जोत रहा था । और बुढ़ापे में अपने उस छोटे-से जमीन के टुकड़े को छोड़ स्वयं उसकी भी और कोई गति नहीं थी । देहात की धरती और वहाँ के सामाजिक, आर्थिक जीवन में दूरतक उसकी जड़ें चली गई थीं । बुढ़ापे के दिन उसे अपने गाँव में ही मन्दिर या मस्जिद या चौरे-चबूतरे पर बैठकर बिताना थे । वह अच्छी तरह से जानता था कि उसके गाँव की खुशहाली उसकी अपनी खुशहाली है और गाँव की बर्बादी उसकी अपनी बर्बादी है । गोरे अफसरों और गोरे सैनिकों को बहुत निकट से देखने और समझने का उसे अवसर मिला था। उसने अच्छी तरह जान लिया था कि ये गोरी चमड़ी वाले बड़े ही स्वार्थी, घमण्डी और कृतघ्न होते हैं। उनके साथ लड़ाइयों में हिस्सा लेकर या जीते हुए

प्रान्तों का हिस्सा-बांट करते समय गोरी चमड़ी के नीचे कोयले से भी काला दिल उसने देखा था। इस जानकारी ने उसका विश्वास दृढ़ कर दिया था कि स्वार्थ के आगे सिद्धान्त, आदर्श और सगे-सम्बन्धी तक किसी की कोई हस्ती नहीं होती। स्वार्थ जितना ही बड़ा होगा विश्वासघात, अन्याय और निष्ठुरता भी उतने ही बड़े होंगे। और जब स्वार्थ के साथ देश का नाम जोड़कर उसे परमार्थ या देशभक्ति का सुहावना नाम दे दिया जाता है तब तो फिर पूछना ही क्या? उस समय निर्दयता दृढ़ता बन जाती है, वचनभंग को समयसूचकता का नाम दिया जाता है और न्याय-नीति के सभी सिद्धान्तों की कपालक्रिया व्यावहारिक राजनीति का सुन्दर नाम धारण कर लेती है।

हिन्दूकुश से लेकर अराकान तक चावलों का मांड पी-पीकर ब्रिटिश-साम्राज्य का विस्तार करने वाले हिन्दुस्तानी सिपाहियों को साम्राज्यवाद की उपरोक्त 'फिलासफी' अच्छीतरह से समझ में आगई थी।

इसीलिए जब फौजी बारकों में 'कमल' और 'रोटी' के संकेतचिह्न पहुँचने लगे तो सिपाहियों को उन्हें अपनाते देर न लगी, और न उन्हें यह सूचना देने की आवश्यकता ही पड़ी कि सारी बात गुप्त रखी जाय।

पेशावर, मरी, रावलपिंडी, मियाँमीर, अम्बाला, लुधियाना, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, मेरठ, बरहानपुर, इलाहाबाद, बरेली, नागपुर, ग्वालियर, कोल्हापुर, सतारा, बड़ौदा, जयपुर, झाँसी, हैदराबाद तक फैले हुए इस देश-व्यापी षडयन्त्र का पता महीनों तक कम्पनी सरकार को न चला, उसके पीछे सर्वव्यापी असन्तोष ही सबसे बड़ा कारण था।

महान घटनाओं के पीछे महत्तर कारण होते हैं। और वे कारण ही उन घटनाओं को गति प्रदान करते हैं। ऐसे समय जनता स्वयं स्फूर्ति से उसमें हिस्सा लेती है। नये-नये दाव-पेंच गढ़ने, हथियार जमा करने, सैनिकों को भर्ती करने आदि की बातें लोगों को बतलाने की ज़रूरत ही

नहीं पड़ती । उस समय कोई एक व्यक्ति नेता नहीं होता । असन्तोष ही उनका स्वयंभू सेनापति बन जाता है ।

दंगा या बलवा और क्रान्ति या विप्लव का जन्म असन्तोष से ही होता है । लेकिन दोनों में एक बड़ा फ़र्क है । जिस असन्तोष की कोई फिलासफी नहीं होती, कोई निश्चित् सिद्धान्त और आदर्श नहीं होता उसका नाम है बलवा । बलवे का काम है तोड़-फोड़ करना, अन्धाधुन्धी खड़ी कर देना और ख़त्म होजाना । लेकिन क्रान्ति तो पुरातन का नाशकर, उसे उखाड़ फेंक नये का निर्माण करती है । पुचगेव, स्तेङ्का, रेज़िन, वेलोर, कूका और फड़के दंगाई थे । ग्रेकाई बन्धु, दाँते, राबेस्पीर, लेनिन और गांधी क्रान्तिकारी हैं । और इसीलिए १७८९ का फ्रान्स, १९१८ का रूस और १९३० का हिन्दुस्तान मानव जाति के इतिहास में प्रकाश-स्तम्भ के समान हैं । इन क्रान्तियों ने समस्त मानव जाति के पथ को आलोकित किया है । इन क्रान्तियों में हमें महान सामाजिक उथल-पुथल, मानव जीवन की समस्त वेदनाएँ और संघर्ष अपने वास्तविकरूप में दिखलाई पड़ते हैं । इसीलिए कहा है कि क्रान्ति में शंकर की संहार-लीला के साथ-साथ ब्रह्मा की सृष्टि-लीला भी रहती है । क्रन्ति में जीवन और मृत्यु गले-गलबहियाँ डालकर चलते हैं ।

लेकिन १८५७ क्या था ? वह न तो क्रान्ति थी और न दंगा ही । वह थी हमारी आज़ादी की लड़ाई । निर्माण या विनाश की फिलासफी १८५७ ने हमें नहीं दी । उसमें रणनीति-कुशल तांत्याटोपी, महारानी लक्ष्मीबाई और जोरापुर के युवक नरेश जैसे मृत्युञ्जय वीरों ने हिस्सा लिया था; लेकिन उसकी फिलासफी निश्चित करने के लिए कोई रूसो या मेज़िनी नहीं थे । परन्तु साथ ही यह कहना भी ग़लत होगा कि उसमें हिस्सा लेने वाले सिर्फ सिपाही ही थे जो बिना कुछ समझे-बूझे बन्दूक लेकर उठ खड़े हुए थे । उसमें हिस्सा लेने वाला एक-एक व्यक्ति आज़ादी की लड़ाई के अर्थ को अच्छी तरह जानता समझता था । आज़ादी की लड़ाई का अर्थ

उसने किया था—फिरंगी राज्य का अन्त। हिन्दुस्तान में पेशवा राज्य करें या मुसलमान, या और कोई देशी हुकूमत हो लेकिन अंग्रेज़ों की हुकूमत नहीं चाहिये। देश की छाती पर एक भी गोरा आदमी नहीं चाहिये। यह था उनका नारा।

१८५७ के वीर सैनिकों के पास यह सीधा-सादा मंत्र था लेकिन इस मंत्र का प्रयोग करने में जो गुत्थियाँ और आन्तरिक विरोध उत्पन्न होते थे उनका हल उनके पास नहीं था। संक्षेप में यह कि इस मंत्र का व्यावहारिक दर्शन नहीं बन पाया था। इसीलिए १८५७ को क्रान्ति के बदले आज़ादी की लड़ाई कहा है। इसीलिए १८५७ की सामूहिक प्रेरणा सिर्फ तभीतक है जबतक कि हमारा देश स्वतन्त्र नहीं होजाता। आज़ादी की इस लड़ाई में जो शहीद हुए हैं उनकी याद तो हमारा देश सदा-सर्वदा करता रहेगा परन्तु देश की आज़ादी के बाद देश की जनता उनसे प्रेरणा ग्रहण करना बन्द कर देगी।

१८५७ हमारे राष्ट्र का पहला राजनैतिक संघर्ष था। उस संघर्ष में हिदुस्तान के सभी वर्गों की जनता विदेशी राज्य के जुए से मुक्त होने के उद्देश्य को सामने रख सम्मिलित हुई थी। उसमें पराजित होकर भी जनता की आज़ाद होने की अभिलाषा मिटी नहीं। हार और जीत मूल उद्देश्य की तीव्रता में कमी-वेशी कर सकते हैं; परन्तु उसे बिलकुल मिटाना तो असंभव ही है।

यदि १८५७ का सिपाही-विद्रोह सारे देश में एक साथ एक ही निश्चित तिथि को शुरू हुआ होता तो असंभव नहीं कि हमारी जीत होती। अगर जयाजीराव सिंधिया और दूसरे राजाओं ने गद्दारी न की होती तो संभव है कि अंग्रेज़ों की हार होती। और यदि उस समय नेतृत्व पूरी तरह तांत्या-टोपी या महारानी लक्ष्मीबाई के हाथों में होता तो भी संभव है कि जीत हमारी ही हुई होती।

और हमारी जीत होने पर भी १८५७ की प्रेरणा तो आज़ादी प्राप्त होनेतक वही रहती जो अन्यथा भी रहती आई।

१२

कई आदमी उड़ती चिड़िया भाँपते हैं। सूँघकर बतला देंगे कि हवा किधर को बह रही है; जमीन में कहाँ, कितने हाथ नीचे, किस ओर पानी है; किसके सिर पर संकट मँडरा रहा है; धरती कहाँ पोली या कहाँ ठोस है आदि-आदि। जानसन भी ऐसे ही आदमियों में से था। क्लाइब, डुप्ले, वेरिटक ऐसे ही आगमचेता व्यक्ति थे। डलहौज़ी में यह शक्ति नहीं थी।

आगमचेता होने के कारण ही जानसन ने शेखर को देवकी से अलग किया था। और इसीलिए वह शेखर का एमिली से मिलना-जुलना पसन्द करता था। और यही कारण था कि जब एमिली ने मूरहेड को दिया वाग्दान भङ्ग करना चाहा तो उसने सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी।

अब इधर उसे एक नयी गन्ध आने लगी थी। उसे लगने लगा था कि सिपाही सामने सलाम करते हैं लेकिन पीठ पीछे मज़ाक उड़ाते हैं। परेड के मैदान पर वफादारी के साथ परेड करते हैं लेकिन बारकों में जाने पर कम्पनी सरकार के खिलाफ षडयन्त्र करते हैं। गोरों को आमने-सामने देखकर हँसते हैं लेकिन पीठ फिरते ही दाँत पीसने लगते हैं। जानसन को यह परिवर्तन बड़ा अजीब-सा लगने लगा था।

और रात में जो बैठकें होती थीं उन सब में शेखर बराबर शरीक होता था। दिन में जब जानसन के पास कानून पढ़ने आता तो बिलकुल भोला-भाला, दूध का धोया बन जाता था। लेकिन भोली सूरत के ऐसे युवक ही ज्यादा खतरनाक साबित होते हैं। जानसन को किले के हर कोने से इसी-तरह की गन्ध आने लगी थी। उसे लग रहा था कि काली पलटन बगावत

की तैयारियाँ कर रही है । रोज सवेरे आकर जैसे कोई उसके कान में कह जाता था कि फलाँ रात को कमाण्डिङ्ग अफसर करतारसिंह और शेखर जङ्गल में तात्याटोपी से भेंट करने गये थे और इस तरह की मुलाक़ातें अकसर होती रहती थीं । अभी ही बहरामपुर की छावनी के सम्बन्ध में उसके पास एक सरकारी खरीता आया था; उसमें लिखा था कि वहाँ के सैनिकों ने नये ढङ्ग के कारतूस लेने से इन्कार कर दिया था ।

बारूदखाना, हथियारों का गोदाम सब कुछ नीचे परकोटे में देशी पलटन की बारकों के सामने ही था । तोपखाना भी वहीं था । सब की चाभियाँ भी कमाण्डिग अफ़सर के पास ही रहती थीं । और जानसन के लिए यह कुछ कम खतरे की बात नहीं थी ।

जिस दिन बराकपुर के सैनिक विद्रोह की खबर मिली उसी दिन उसने करतारसिंह को बुलाकर हुक्म दिया—तुम देशी पलटन लेकर ओरछा के डाकुओं को पकड़ने के लिये आज ही रवाना होजाओ ।

सिपाही-विद्रोह की निश्चित तिथि को अभी डेढ़ महीने की देर थी । करतार शेखर से मिलने गया तो शेखर ने कहा—कोई चिन्ता की बात नहीं। अभी तो चले जाना ही ठीक है । मानलो कि तुम्हारे लौटने पर क़िले के दरवाज़े नहीं खोले गये तो मैं तो अन्दर रहूँगा ही । अपनी बनती कोशिश करूँगा ।

और क़िला खाली होगया । जानसन रोज़ सवेरे क़िले का गश्त लगाता । जहाँ कहीं टूट-फूट होरही थी उसकी उसने मरम्मत करवायी और मार्के की जगहों पर तोपें लगवा दीं । उसे गन्ध आगई थी ।

एक दिन हमेशा की तरह वह परकोटे के गश्त पर निकला । साथ में दो तीन अंग्रेज़ अफ़सर और शेखर भी था ।

बिना किसी पूर्व भूमिका के जानसन ने कहना शुरू किया—कुँवर साहब, आपको यह खुशखबर सुनाते हुए मुझे बड़ी ही प्रसन्नता होरही है कि सरकार बहादुर ने आपका राज्याभिषेक कर देने का हुक्म देदिया है ।

शेखर तो सुनकर जानसन के मुँह की ओर देखता ही रह गया। क्या कहे और क्या न कहे यही उसकी समझ में न आया। उसने तो स्वप्न में भी यह कल्पना न की थी कि दुश्मन ऐसी गहरी चाल चलेगा। साथ के अफसरों ने उसे इस खुशखबरी के लिए बधाई दी; लेकिन शेखर उनके आनन्द में सहयोग न दे सका।

'महारानी साहिबा को भी मैंने आज ही बिठूर खबर भेज दी है।'

'क्या वह बिठूर में हैं?'

'क्यों, आपको पता नहीं?'

'मेरे पास तो पन्द्रह दिन पहले हरिद्वार से उनका पत्र आया था।'

'वह तो एक महीने से बिठूर में ही हैं। सुना है कि नानासाहब पेशवा ने उनका राजसी स्वागत किया था।' यह कहकर वह शेखर के चेहरे पर होरहे परिवर्तनों को बारीकी के साथ देखने लगा।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसीने कहा—इन दिनों तो वहाँ अच्छा-खासा जमघट है। तात्याटोपी भी वहीं हैं। आपने तात्या को तो देखा ही होगा?

'वे वासुदेव महाराज के अति समीपस्थ लोगों में से हैं इसलिए मेरी भी जान-पहिचान तो है ही।'

विदा होते समय जानसन ने शेखर से कहा—आज दुपहर में मुझसे मिलियेगा। राज्याभिषेक की तिथि निश्चित करना है।

'ऐसी जल्दी क्या है? माताजी का जवाब तो आने दीजिये।'

'अच्छा आप दुपहर में मिलिये तो सही।'

शेखर ने अपने आपको एक बड़ी ही विचित्र परिस्थिति में पाया। जिस समय उसे राज्य नहीं चाहिये ठीक उसी समय उसके गले मढ़कर ये गोरे

वाहवाही लूटना चाहते थे। शेखर ले तो भी मुश्किल; न ले तो भी मुश्किल। यदि वह मंजूर करता था तो उसे कंपनी सरकार का चाकर-राजा बनना पड़ेगा और सन्धि की शर्तों के अनुसार संकटकाल में उनकी मदद करना होगी।

जब वह जानसन से मिलने गया तो अभी मन में कोई निश्चय नहीं कर पाया था। दिमाग़ में वैसी ही उथल-पुथल मची हुई थी। जब वह जानसन के पास पहुँचा तो मूरहेड भी वहीं बैठा था। मेरठ के सिपाहियों के विद्रोह की बातचीत चल रही थी। दिल्ली का क़िला भी विद्रोहियों ने सर कर लिया था। अंग्रेज़ बारूदखाने को पलीता लगाकर भाग गये थे। विद्रोही सैनिक नदी की बाढ़ की तरह इलाहाबाद, लखनऊ, बरेली और बुन्देलखण्ड की ओर बढ़े चले आरहे थे। बड़े लाट ने पूरी सावधानी रखने, देशी पलटनों को तोड़ डालने और गोरी फौज की मोर्चेबन्दी करने के हुक्म दे दिये थे। अन्तिम समाचार यह था कि तात्या और महारानी देवकी विद्रोही सैनिकों के साथ नरसिंगपुर की ओर रवाना हो चुके थे। बड़ी ही नाज़ुक घड़ी आ पहुँची थी।

शेखर को आया देख जानसन ने खड़े होकर उसकी अभ्यर्थना करते हुए कहा—नरसिंगपुर के भावी महाराजाधिराज को मेरा अभिनन्दन।

शेखर मुँह से कुछ न बोला। चुपचाप सलाम लेकर बैठ गया।

'मेरा खयाल है कि आपने राज्याभिषेक का दिन तै कर लिया होगा। कम्पनी सरकार इस काम को जल्दी ही निपटा देना चाहती है ताकि दूसरे अधिक महत्त्व के मामलों की ओर ध्यान दिया जासके।'

'माताजी से मिले बिना इस सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं कह सकता।'

'लेकिन हम तारीख तै कर उसकी सूचना उन्हें दे दें तो कैसा रहे? वह निश्चित समय पर आ उपस्थित होंगी।'

'तिथि के सम्बन्ध में ही मुझे उनसे मिलना होगा।'

जानसन बड़ी देरतक मन ही मन तर्क-वितर्क करता रहा कि देवकी के बारे में शेखर को बतलाये या नहीं। अन्त में उसने कहा— मुझे यह कहते हुए बड़ा ही दुःख होरहा है कि कम्पनी सरकार आपको इस सम्बन्ध में महारानीजी से सलाह करने की अनुमति नहीं दे सकती। आपको अकेले ही इस बात का निर्णय करना होगा।

'क्यों?'

'कारण बतलाने में भी मैं असमर्थ हूँ।'

'तो मैं भी जवाब देने में असमर्थ हूँ।'

'यह कहकर आप अपने आप को मुसीबत में डाल रहे हैं। सरकार को विश्वास होगया है कि महारानी साहिबा कम्पनी सरकार के दुश्मनों से मिल गई हैं। इसलिए कम्पनी सरकार अपना फर्ज समझती है कि आपकी मुलाक़ात उनसे किसी भी हालत में न होने दी जाय।'

'कर्नल, क्या कम्पनी मुझे यहाँ इसीलिए लाई है कि अपनी माँ के विरोध में खड़ा होऊँ?'

'कम्पनी तो तुम्हारे साथ और तुम्हारी माँ के साथ भी दोस्ती बनाये रखना चाहती है। लेकिन अगर तुम्हारी माँ ही बाग़ियों से मिल जाय तो कम्पनी क्या करे? तुम कम्पनी सरकार के मित्र हो और कम्पनी सरकार तुमसे इतनी आशा तो करती ही है कि तुम उसके दुश्मनों से नहीं मिलोगे।'

'कम्पनी का तो मैं मित्र ही हूँ परन्तु अपनी माँ का तो बेटा भी हूँ। जन्म मुझे मेरी माँ ने दिया है, कम्पनी ने नहीं। आपके देश का रिवाज कुछ भी क्यों न हो हमारे देश में तो बेटा रोज सबेरे उठकर सबसे पहले माँ की चरणधूलि सिरपर लगाता है तब दूसरे काम करता है।'

'कम्पनी के साथ जो शर्तनामा हुआ है उसमें राज्य की ओर से साफ लिखा गया है कि कम्पनी के दुश्मन तुम्हारे भी दुश्मन होंगे।'

'लेकिन मैंने तो उस शर्तनामे पर दस्तखत नहीं किये।'

'तुमने न सही तुम्हारे पिता ने तो किये थे। और उनके उत्तराधिकारी की हैसियत से तुम्हें भी उस शर्तनामे का पालन करना ही पड़ेगा।'

'लेकिन मैं उत्तराधिकारी बनने से ही इन्कार करता हूँ।'

'क्यों ?'

'जहाँ मेरी माँ है वही जगह मेरे लिए भी है। राज्य के लोभ से मातृ-द्रोह करूँगा तो मुझे कुंभीपाक नरक में भी ठौर नहीं मिलेगी।'

'यदि यही तुम्हारा निश्चय है तो तुम्हें सारी जिन्दगी इस किले के जेलखाने में बिताना पड़ेगी।'

'मेरा अपराध भी बतलाएँगे ?'

'क्यों नहीं ! कम्पनी सरकार के दुश्मनों की मदद करने से तुम्हें रोकने के लिए ही यह तजवीज की जाती है।'

शेखर तनकर खड़ा होगया और बोला—कर्नल, अच्छी तरह कान खोलकर सुनलो। मेरे काका बाग़ी थे, मेरे गुरु बाग़ी थे और मेरी मा भी बाग़ी हैं इसलिए बग़ावत तो मेरे खून की बूँद-बूँद में समाई हुई है। तुम्हारे जेल की हथकड़ियाँ, बेड़ियाँ और सीखचे उस बग़ावत को नहीं मिटा सकेंगे।

'मैं तो तुमसे सिर्फ 'हाँ' या 'ना' सुनना चाहता हूँ।'

'तो मेरी एकबार नहीं हजार बार 'ना' है।'

'मूरहेड, इन्हें ले जाकर काल-कोठरी में बन्द करदो।'

* * *

शेखर के लिए तनहाई की कोठारी में दिन बिताना मुश्किल होगया। जिस विद्रोह की वह रात दिन उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहा था वही अपने दिव्य भीषणरूप में प्रगट हुआ था। तलवार हाथ में लेकर वह उसके खप्पर में अपना शीश चढ़ाने जाने ही वाला था कि उसके पाँवों में बेड़ियां डाल दी गईं। जब माँ, सुभगा और दूसरे सभी संगी-साथी फिरंगियों को एक-एक गाँव से भगा रहे थे वह हाथ पर हाथ धरे सीखचों के पीछे बैठने के लिए मजबूर कर दिया गया था। रोज़ मूरहेड आता और कुछ जली-भुनी सुनाकर अपने दिल की भड़ास निकाल जाता था। एमिली को लेकर जो कटुता उसके दिल में घर कर गई थी वह अभीतक मिटने नहीं पाई थी। इसलिए जब-जब मौक़ा मिलता वह शेखर का अपमान करने से चूकता नहीं था। शेखर को काल-कोठरी में पाकर उसे मुँह माँगी मुराद मिल गई थी। यदि पहले ही दिन शेखर से पिटकर उसने सिर न फुड़वा लिया होता तो वह शेखर को पीटना भी बाक़ी न रखता।

शेखर ने सुना कि जनरल लौटने वाले हैं। एमिली बीमारी के कारण पहाड़ पर ही रुक जाने वाली थी।

बाग़ियों की खबर सुनने के लिए वह बहुत ही व्यग्र रहता था लेकिन उसके जेलर उसे सच्ची बात बतलाते ही नहीं थे। जब कभी वह पूछता तो उसे यही बतलाया जाता था कि आज गोरी फौज ने इतने गाँव जलाये और इतने बाग़ियों को फांसी लटकाया। एकदिन जनरल डेनियल के हस्ताक्षर वाली एक विज्ञप्ति उसे पढ़ने को मिली। उसमें तीन बाग़ियों को जीवित या मृत दशा में पकड़कर लाने वाले को दस हज़ार नक़द और दस हल की खेती इनाम देने की घोषणा की गई थी। उन तीनों बाग़ियों के नाम क्रमशः ये थे—तात्याटोपी; महारानी देवकी और सुभगा पाँडे।

वह विज्ञप्ति पढ़कर शेखर की छाती अभिमान से फूल उठी। क़िले की हिफाजत के लिए गोरे सैनिकों की दो-एक नयी पलटनें आई हुई थीं। जानसन उन्हें रोज पास-पड़ोस के गावों में भेजता था और लौट आकर वे सैनिक

देहातियों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन कर अपनी बहादुरी की शेखी बघारा करते थे। एकदिन शेखर से रहा न गया। उसने उन्हें फटकारा— निहत्थे, निस्सहाय देहातियों को मारकर शेखी क्या बघारते हो? शर्म नहीं आती?

उस दिन से उसके सामने शेखी बघारा जाना बन्द होगया।

जानसन तो जैसे उसे भूल ही गया था। इतने दिनों में एकबार भी उसकी खोज-खबर लेने नहीं आया था।

रहमान ने जो पत्थर उसे बतलाया था वह शेखर को रोज़ परेशान करने लगा। परन्तु वहाँतक पहुँचना असंभव-सा ही था। उसे चौबीस घण्टों में सिर्फ एकबार बाहर निकालते थे और उस समय भी सन्त्री उसके खोपड़े पर सवार रहता था।

एक दिन सवेरे के समय वह सदा की भाँति कोठरी में बैठा था। उसी समय उसे ज़ोर का शोर सुनाई दिया। ऐसा लग रहा था मानों कुछ लोग पागल होकर तोड़-फोड़ कर रहे हों। अपनी जगह से खड़े होकर उसने देखा तो गोरे सैनिकों के एक बड़े-से झुण्ड को अपनी ही ओर आता हुआ पाया। वे लोग ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे थे किसी के हाथ में संगीन थी तो किसी के हाथ में लाठी और किसी के हाथ में पत्थर। उनमें से कइयों ने पूरे कपड़े भी नहीं पहने थे। ऐसा लगता था कि जो जिस दशा में बैठा था वह वैसा ही जो हाथ में आगया लेकर दौड़ा आया है। सारी भीड़ उन्मत्त भैंसों-सी डकारती चली आ रही थी।

अभी शेखर देख ही रहा था कि भीड़ ने उसकी कोठरी पर हमला बोल दिया। बात की बात में दरवाज़ा तोड़ डाला गया और लोगों ने उसे बाहर खींच लिया। पाँच सात गोरे उसे घसीटते हुए ले चले और शेष उछल-उछलकर चिल्लाने लगे—Revenge Kanpur, Revenge Kanpur—कानपुर का बदला लो।

शेखर ने छूटने के लिए बहुत हाथ-पांव मारे लेकिन सफलता नहीं मिली। एक ने उसके सिर में ज़ोर से संगीन मारी। शेखर की आंखों के आगे अन्धेरा छा गया। उसके कपड़े खून से तर-बतर होगये। लेकिन किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। उनका शोर उसीतरह आसमान को चीरता चला जा रहा था–Revenge Kanpur।

'जिन काफिरों ने स्त्री और बच्चों को क़त्ल किया है उनका नाम-निशान तक मिटा देंगे।'

'उन काफिरों को कुत्तों की मौत मार डालो।'

'कानपुर का बदला लो।'

'क़िले में कोई काली औरत नहीं है?'

'नहीं है, एक भी नहीं है।'

'है, चड़स चलाने वाले की लड़की है।'

'पकड़ लाओ उसे, झोंटे पकड़कर घसीट लाओ उसे।'

भीड़ देवता भी है और राक्षस भी। यदि समूह का नेता अर्जुनदेव हो तो वह ऐसा खालसा पन्थ तैयार कर देता है जो अपने बलिदानों से देवताओं को भी लज्जित करदे। लेकिन वहीं समूह का नेता यदि कोई राक्षस हुआ तो वह उससे ऐसे काम करवाता है कि रावण भी लज्जित हो जाय। इतिहास में जहां एक ओर सिखों के बलिदान हैं वहीं दूसरी ओर साम्प्रदायिक दंगे भी हैं। कर्बला और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के साथ ही साथ कोटन के अत्याचार और कानपुर का दंगा भी है।

भीड़ का नेता इन्द्र भी बन सकता है और शैतान भी। बीच का मार्ग उसके लिए नहीं होता। या तो वह श्रेष्ठतम काम करता-कराता है या फिर नीच से नीच कुकृत्य करता और करवाता है। इतिहास में जार्ज फॉक्स

और गांधी भी हैं और नीरो तथा हिटलर-मुसोलिनी भी हैं। जनसमूह की महानता और पाशविकता को ही वे प्रतिबिम्बित करते हैं।

चार ही पाँच मिनट हुए होंगे की सात-आठ टॉमी Revenge Kanpur के नारे लगाते लौट आये। उनके हो-हल्ले में से टिटहरी की चीख-सा एक करुण-स्वर सुनाई दे रहा था-मुझे छोड़ दो! हाय, कोई मुझे छुड़ाओ! टामियों ने उसे कसकर पकड़ रखा था। उसके कपड़े फट गये थे। आँखें मारे डर और दुःख के कपाल तक चढ़ गई थीं। चेहरा आँसुओं से भीगा हुआ था। चिल्ला-चिल्लाकर आवाज़ फट गई थी। टामी उसको छेड़ते, उसकी मज़ाक उड़ाते, उसे मारते-पीटते और धक्के देते हुए ला रहे थे।

इस बीच शेखर दोनों हाथों से आँखें मूँदे दम साधे पड़ा हुआ था। उसके कपाल, पीठ और सारे शरीर पर लकड़ियों और ठोकरों की झड़ी-सी लग रही थी।

लड़की को आते देख जो सिपाही शेखर को पीट रहे थे वे उसकी ओर लपके। यह देख लड़की ज़ोर से चीख उठी। उसकी निराशा और असह्य वेदना से भरी चीख ने शेखर को सचेत कर दिया। वह शरीर को झटका देकर उठ बैठा। पलक मारते ही पास खड़े टामी के हाथ से लाठी छीनली और लड़की को घेर कर खड़ी भीड़ के पास पहुँच गया। उन्मत्त टामियों के बीच वह बेचारी घुटनों के बल बैठी धरती पर माथा रगड़ कर दया की भीख माँग रही थी।

'You son of Brutes—अरे जंगलियो!' उसने विकराल गर्जना की और पास खड़े सैनिक के सिर पर कसकर लाठी का हाथ मारा। मारे डर के भीड़ तीन क़दम पीछे हट गई और लाठी खाने वाला वहीं खून के डबरे में गिरकर तड़फने लगा।

जिसके सिर पर मौत सवार होती है उसके विकराल रूप को देखकर क्रूर से क्रूर जनसमूह भी थर्राने लगता है। शेखर ने लाठी घुमाते हुए कहा–Leave this woman (इस औरत को छोड़दो)!

भीड़ में से आवाज़ आई–Avenge Kanpur! what's about Kanpur? (कानपुर का बदला लो। कानपुर का क्या?)

'That can never be.' (ऐसा हो ही नहीं सकता।)

'It has been' (ऐसा ही हुआ है।)

'Can never be. (असंभव है।) शेखर ने ज़ोर देकर कहा।

'Avenge Kanpur' फिर आवाज़ गूँजी और भीड़ दो क़दम आगे बढ़ आई।

'यदि तुम्हें कानपुर का बदला लेना है तो मुझे मार डालो परन्तु इसे छोड़ दो। कुत्ता भी अपने परिचित को नहीं काटता है फिर यह तो तुम्हारे नौकर की बेटी है, बेशरमो!' उसने कबूतरी की तरह काँपती हुई लड़की की ओर अँगुली से इशारा करते हुए कहा।

'तेरी यह न्यायनीति की बातें जाकर सुना अपने नाना को। हमें नहीं सुनना है।' और बोलने वाले ने ताककर संगीन का वार किया।

शेखर ने वार चुकाकर लड़की के सामने खड़े होकर कहा–मुझे मार डालो, पर इसे छोड़ दो।

'तुझे तिल-तिलकर मारेंगे।' मूरहेड ने आगे आकर कहा।

'मंजूर है।'

'गोमाँस खिलाएँगे।'

'ताक़त हो तो खिलाना।'

'शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।'

'मंजूर है।' शेखर ने भौंह से खून की बूँदें पोंछते हुए कहा।

'इस लड़की को छोड़ दो।' मूरहेड ने भीड़ से कहा और शेखर से बोला– रखदे अपनी लाठी।

शेखर ने लाठी फेंककर कहा–तुम्हारी बात का भरोसा करता हूँ और मानता हूँ कि तुम फिर से इस लड़की को तङ्ग नहीं करोगे। और यह भी आशा रखता हूँ कि दूसरी किसी औरत को भी परेशान नहीं करोगे।

'Hold your tounge' जबान बन्द कर।

'Preach to tatya' तात्या को अपना उपदेश सुना।

'बैठ जा।' मूरहेड ने हुक्म दिया।

शेखर घुटनों के बल बैठ गया। एक गोरा दौड़कर 'बीफ' का डिब्बा ले आया। मूरहेड ने उसमें से एक टुकड़ा निकालकर कहा– Take it खा इसे।

'बिना खाये छुटकारा नहीं होने का?'

'बिलकुल ही नहीं।'

'तो पाँच मिनट ठहर जाओ। मुझे प्रार्थना कर लेने दो।' उसने सूर्य की ओर मुँह कर दोनो हाथ जोड़े। उसकी भाषा में किसी की समझ में नहीं आई परन्तु आँखों की कोर में उभर आये दो अश्रु-बिन्दुओं को भीड़ कुतूहलपूर्वक देखती रह गई। प्रार्थना करने के बाद उसने भीड़ की ओर मुखातिब होकर करुणाई स्वर से अंग्रेज़ी में कहा–

'यदि इसके खाने से कानपुर में हमने जो कुछ किया है उसका प्रायश्चित होता हो तो मैं यही नहीं इससे भी अधिक बुरी चीज़ खाने को तैयार

हूँ। मैं तुमसे दया की भीख नहीं माँगता। तुम्हारे ही बन्धु मनुष्य की हैसियत से पूछता हूँ कि मैं तो हिन्दुस्तानियों द्वारा किये गये पाप के प्रायश्चित स्वरूप स्वेच्छापूर्वक अकालमृत्यु के लिए तैयार हो गया हूँ; परन्तु क्या तुम्हें पाप नहीं लगेगा? क्या इससे तुम्हारी कीर्ति में बट्टा नहीं लगेगा? मैंने तो कानपुर की खूँरेज़ी में हिस्सा नहीं लिया है बल्कि एक अंग्रेज़ युवती की जान बचाने का सौभाग्य मुझे मिल चुका है।'

'हाँ, हाँ! इसने मिस एमिली को रघुबीर के फन्दे से छुड़ाया था सो मुझे याद है।' भीड़ में से किसी ने कहा।

'इस याददाश्त के लिये तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। इतना सब होते हुए भी मैं स्वेच्छा से तुम्हारे हाथों मरने के लिये तैयार हुआ हूँ; और जानता हूँ कि तुम मुझे आग में जिन्दा जलाओगे या ज़बर्दस्ती मेरे मुँह में गो-माँस ठूँसकर मेरा यह लोक-परलोक बिगाड़ोगे। फिर भी मैं तैयार क्यों हुआ हूँ? सिर्फ इसलिये कि अपने देशवासियों के पाप का यदि ज़रा-सा भी प्रायश्चित कर सकूँ तो जरूर करूँ और तुम्हें विश्वास करा दूँ कि सभी हिन्दुस्तानी जानवर नहीं होते। खून के बदले खून वाली कहावत तो तुमने सुनी ही है परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि बुराई का बदला भलाई से दो, अपने बाएँ गाल पर तमाचा मारने वाले के आगे अपना दाहिना गाल भी कर दो। मैं तुमसे पूछता हूँ कि ईसा के इस वाक्य के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है?'

इसके बाद उसने डिब्बे में से गोमाँस का एक टुकड़ा निकाला। गाल पर बहते आँसू पोंछे और धीरे से उस टुकड़े को ओठ से लगाया। उसी समय भीड़ में से किसी ने धीरे से कहा— Enough! Enough और तत्काल भीड़ में से एक साथ कई स्वर सुनाई दिये—Enough, Enough (रहने दो, बहुत हुआ।)

लेकिन मूरहेड ने सिर हिलाकर शेखर से कहा- No, No, Git on.. (नहीं, पूरा खाना होगा।)

ठीक उसी समय जानसन वहाँ दौड़ा हुआ आया और डपटकर बोला—यह क्या शैतानी कर रहे हो तुम लोग। इसे वापिस कोठरी में ले जाओ। कल फौजी अदालत के सामने पेश होना। और चड़स वाले की लड़की का क्या अपराध था?

भीड़ लज्जित होगई और पिटे हुए लड़कों की तरह टामियों ने अपनी बारकों का रास्ता लिया। मूरहेड शेखर को काल-कोठरी की ओर ले गया। दरवाज़ा टूट चुका था, इसलिए एक सिपाही को वहाँ तैनात कर शेखर को बच जाने के लिए अण्ड-बण्ड गालियाँ देता हुआ वह वहाँ से चला गया।

शेखर जिस अवसर की प्रतीक्षा में था वह सामने आगया था। यह अन्तिम अवसर था। यदि आज की रात वह न भागा तो कल सवेरे उसे अपने पूर्वजों का अनुगामी बनना पड़ेगा; इसमें ज़रा भी सन्देह न था। इसलिए उसने उसी रात में भागने का निश्चय कर लिया। शाम को नहाने के बहाने कुएँ के पास वाली दिवाल की ओर जाकर पत्थर का ठीक से निश्चय कर लिया। रात के अन्धेरे में दिख सके इसलिए एक कपड़ा भी वहाँ रख आया। अब तो आधीरात के समय की प्रतीक्षा थी। कब सिपाही ऊँघे या इधर-उधर हो और वह भाग निकले। उसने निश्चय कर लिया था कि यदि सिपाही के हथियार छीनकर या उसे जान से मारकर भी भागना पड़ा तो वह उसमें भी किसी तरह का आगा-पीछा नहीं करेगा।

आधीरात भी आई। शेखर के सौभाग्य से पानी बरसने लगा था। सिपाही जनरल के बरामदे में टांगें फैलाये बैठा था। अपनी जगह से शेखर यह तो देख न सका कि वह जागता है या ऊँघता है। जो हो, उसने परमात्मा का नाम लेकर पाँव कोठरी से बाहर निकाला। सामने बरामदे के अँधियारे में संगीन का फलक चमक रहा था। कहीं सन्त्री को शङ्का न हो इस ख़याल से शेखर खाँसा और सीधे खड़े होकर चलने लगा।

'किधर चला?' आवाज़ देकर सन्त्री बरामदे की सीढ़ियाँ उतरने लगा।

'सामने पेशाब करने। कोठरी का कुण्डा फूट गया है।'

शेखर के दिल की धड़कन तेज़ होगई थी। अन्धेरे में कपड़ा ढूँढ़कर फुरती से पत्थर खिसकाया। फिर पशुपतिनाथ का नाम लेकर अन्दर घुसा। लेकिन उसी समय किसी ने पीछे से उसका पाँव पकड़ लिया।

सन्त्री अन्धेरे में उसके पीछे ही चला आरहा था। अन्धेरा इतना घना था कि ठीक सामने की चीज़ भी दिखलाई नहीं पड़ती थी। लेकिन सन्त्री को आभास हुआ कि कैदी दिवाल में घुसा जारहा है। पहले तो उसे विश्वास नहीं हुआ। उसने हाथ फैलाकर टटोला तो कैदी की टाँग पकड़ में आगई। लेकिन पकड़ ढीली थी इसलिए शेखर ने ज़ोर का झटका देकर पाँव छुड़ा लिया और पत्थर को यथास्थान कर नौ दो ग्यारह होगया।

सुरङ्ग कहीं सँकरी, कहीं चौड़ी, कहीं एक पुरुष ऊँची और कहीं पेट के बल खिसककर चलने जैसी थी। कई दिनों से काम में नहीं आई थी। इसलिए जीव-जन्तु इधर से उधर भाग-दौड़ करने लगे थे। दोएक बार साँप का फुफकारना भी सुनाई दिया और कोई मुलायम, चिकनी वस्तु पाँवों के बीच से बल खाती निकली थी, लेकिन शेखर बिना रुके आगे बढ़ता ही गया। दोएक बार सिर भी टकरा गया और सुबह का घाव खुल जाने से खून भी बहने लगा था। परन्तु आखिर शेखर सुरङ्ग के मुँह तक आ ही गया। सुरङ्ग का बाहरी छोर बबूल की एक झाड़ी में था और वहाँ ऊँची-ऊँची घास उगी हुई थी इसलिए किसी को सन्देह भी नहीं होसकता था।

सुरङ्ग के मुँह से बाहर आकर शेखर ने तेज़ी से दौड़ना शुरू किया। सुस्ताने के लिए एक मिनट भी रुकना उचित न समझा। चारों ओर बबूल और करील की झाड़ियाँ थीं। शेखर के पास यह जानने का भी कोई साधन नहीं था कि वह किस दिशा में जारहा है। जिस ओर को मुँह करके बाहर निकला था उसी दिशा में ठीक नाक की सीध में पूरा घण्टाभर चलने के बाद एक पगडण्डी मिली। शेखर उसी पर दौड़ता रहा

और भिनसारा होने तक दौड़ता चला गया। रातभर में वह क़िले से लगभग पच्चीसेक मील दूर निकल आया था। अब कहीं वह सुस्ताने के लिए रुका। पाँव काँटों से लहूलुहान होरहे थे। मारे दर्द के चुटीला सिर फटा जारहा था। बदन की बोटी-बोटी दर्द कर रही थी और पलकें मन-मन की भारी होगई थीं।

रास्ते से थोड़ा हटकर एक झाड़ी थी। शेखर उसी में घुस गया और लेटते ही खर्राटे भरने लगा।

१३

सोते-सोते शेखर स्वप्न देखने लगा। वह और सुभगा तेज़ घोड़ों पर सवार नालदुर्ग के क़िले की ओर दौड़े जारहे थे। दोनों में होड़ लगी थी कि देखें कौन पहले किले तक पहुँचता है। शेखर घोड़े की पीठ पर स्थिर होकर बैठ ही नहीं सकता था। उसकी आँखें सुभगा के चेहरे की ओर लगी हुई थीं। सुभगा इस समय पुरुषवेश में थी। रक्तिम चेहरे पर शिरस्त्राण शोभा पारहा था और उसके नीचे से दोनो कन्धों पर वेणियाँ नागिन-सी इठला रही थीं।

शेखर का घोड़ा सुभगा के घोड़े से जा टकराया। सुभगा गिरते-गिरते बची और उलहने के स्वर में बोली—अरे पागल, मुझे गिराया ही था। ज़रा आँखें ठिकाने रखकर घोड़ा दौड़ना चाहिये।

'आँखें तो ठीक ठिकाने से ही हैं।' वह बड़बड़ाया और क़िले की दूरी का अन्दाजा करने के लिए मुँह फिराकर देखा कि ऊपर बुर्ज में यमदूत-सा मूरहेड बन्दूक ताने खड़ा था। मूरहेड ने सुभगा की छाती का निशाना साधकर बन्दूक दागी। शेखर ने सुभगा को बचाने के लिए घोड़े को गिराया और गोली उसके कन्धे के आरपार निकल गई...

शेखर मारे दर्द के चीख पड़ा और उसकी नींद खुल गई। उसने आँखें मसलकर सामने देखा तो पगडण्डी के किनारे वाले पेड़ पर एक सफ़ेद काग़ज चिपका हुआ था। उसमें लिखा था—

'इसके द्वारा सर्व-साधारण को सूचित किया जाता है कि–

१. जनरल डेनियल,

२. कर्नल जानसन, और

३. कप्तान मूरहेड

को बाग़ी करार दिया गया है। जो कोई उन्हें जीवित या मृत अवस्था में उपस्थित करेगा उसे दो हज़ार नक़द और दोसौ बीघा जमीन इनाम में दी जायगी।

बहुक्म. महारानी देवकी

सेनापति, मुक्तिसेना।'

शेखर उठकर खड़ा होगया। फिर विज्ञप्ति के पास पहुँचकर बड़े स्नेह से उसपर हाथ फेरने लगा।

अचानक घोड़े की टापों का स्वर गूँज उठा।

वह लपककर झाड़ी में छिप गया और वहीं से देखने लगा। उसकी छाती धड़कने लगी थी। कहीं मूरहेड तो नहीं आ पहुँचा। टापों की आवाज़ बिलकुल समीप आगई थी और तत्काल ही एक घुड़सवार आता दिखाई दिया। उसके पीछे और भी कई घुड़सवार थे। जब घुड़सवार सामने से गुजरे तो शेखर ने उनके कन्धों की हरी और भगवीं पट्टियाँ देखकर उन्हें पहचान लिया। वे मुक्तिसेना के सवार थे।

सबके पीछे एक घुड़सवार अपने घोड़े को दुलकी चाल चलाता आरहा था। विज्ञप्ति के समीप आकर वह रुक गया। उसकी सफेद डाढ़ी और रोबीले चेहरे को देखते ही शेख़र ने उसे पहचान लिया। वह तो उसके उस्ताद सरदार सोहनसिंह थे।

शेखर झाड़ी में से बाहर निकल आया और सोहनसिंह के निकट आकर उन्हें पुराने ढङ्ग से प्रणाम किया।

'कौन ? राजशेखर ? कुँवर साहब, आप यहाँ ?' सोहनसिंह घोड़े पर से नीचे कूद पड़े और शेखर को शिरसा प्रणाम करने जा ही रहे थे कि उसने उनके हाथ पकड़ लिये।

'सरदार साहब, मैं तो अब भी आपका बच्चा ही हूँ।'

'सतगुरु की कृपा अपार है। ऐन ज़रूरत के वक्त ही आपसे भेंट हो गई।'

'क्यों ?'

'माँ और सुभगा को फिरङ्गी पकड़ ले गये हैं और हम अनाथ होकर दर-दर की ठोकरें खाते फिर रहे हैं।'

'ठहरिये, ठहरिये। क्या कहा आपने ? माँ और सुभगा ? माँ और सुभगा ही न ? कौन पकड़ ले गया है उन्हें ? और कब पकड़ ले गया है ?'

'जनरल डेनियल ने मरी से लौटते समय रास्ते में ही महारानी साहिबा पर हमला बोल दिया और गिरफ्तार कर ले गये।'

'आप सब लोग कहाँ थे ?'

'हम खुश्की के रास्ते नरसिंगपुर की ओर आ रहे थे और महारानी साहिबा नदी के रास्ते आरही थीं।'

'माँ के साथ क्या कोई न था ?'

'थोड़े से सिपाही थे, लेकिन यह तो किसी को खयाल ही नहीं था कि जनरल डेनियल इसतरह अचानक चढ़ दौड़ेंगे। वह तो गरुड़ की तरह झपट्टा मार गये।'

माँ और सुभगा! दोनों ही उसके जीवन की गंगा-जमुना-सी दो धाराएँ थीं। अभी सोच ही रहा था कि उनके स्नेह की धाराओं में अवगाहन कर तन और मन का सारा ताप मिटा देगा। सारी क्लान्ति दूर हो जायेगी। फिर स्वातन्त्र्य संग्राम के दुर्गम और दुरूह पथ पर सब साथ-साथ आगे बढ़ेंगे। मन में कितनी-कितनी बातें घुमड़ रही थीं? कितनी बातें कहने को थीं और कितनी बातें सुनने को थीं? उसने कितनी मज़ाकें सोच रखी थीं। जाते ही माँ की गोद में लेट जायगा और उसके पाँव दबाकर कहेगा— माँ भूख लगी है! खाने को दे। वह उठने लगेगी तो पाँव पकड़कर कहेगा— नहीं, बैठे ही बैठे दे। तब सुभगा तश्तरी में नाश्ता लेकर आयेगी; पर वह तो उसके सामने भी नहीं देखेगा। माँ से ही बोलता रहेगा। और देखेगा भी तो ऐसी नाराज़ी के साथ कि सुभगा काँप उठेगी। परन्तु बनावटी रोष में तो वह भी उसके कान काटती थी।

उसने दाँत भींचकर कहा— ओह!

'कुँवर साहब, इसतरह हिम्मत मत हारिये। महारानी साहिबा और अपनी रानी बिटिया को. मैं, वे जहाँ होंगी, खोज निकालूँगा। उत्तर भारत की इन्च-इन्च जगह मेरी देखी-भाली है। मैं, सोहनसिंह, गोरे डेनियल के छक्के छुड़ा दूँगा। वह मेरी आँखों में धूल नहीं झोंक सकेगा। यदि मेरी रानी बिटिया का बाल भी बाँका हुआ तो सारे बुन्देलखण्ड में आग लगा दूँगा। बुन्देलों की इस धरती पर एक भी फिरंगी बच्चे को साबुत न छोड़ूँगा। ग्रन्थ साहब की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, कुँअर साहब, कि यदि महारानी साहिबा और सुभगा बेटी को किसी ने अँगुली भी छुआदी तो अंग्रेज़ों के एक-एक क़िले में वह पलीता लगाऊँगा कि सातों समन्दरों का पानी भी उसे बुझा नहीं सकेगा।' सोहनसिंह ने अपनी लम्बी दाढ़ी फटकारते और मूछों में बल देते हुए कहा।

'सरदारजी, अपने पास सैनिक कितने हैं?'

'नालदुर्ग और नरसिंगपुर की पूरी पलटनें और हजारेक सिपाही दूसरे, यों कुल मिलाकर चारेक हजार आदमी होंगे ।'

'तात्या साहब कहाँ हैं?'

'झाँसी गये हैं। आजकल में आते ही होंगे।'

'चलिये छावनी की तरफ।' शेखर ने पैदल चलते हुए कहा ।

'आप पैदल चलेंगे और मैं घोड़े पर । ऐसा भी कहीं हुआ है ?'

'तो क्या दो...'

'दो ही क्यों ? मेरा यह घोड़ा तो दस आदमियों का बोझ उठा सकता है । गंगा की बाढ़ को चीरता निकल गया था यह। सोहनसिंह ने शेखर को अपने पीछे बैठा लिया और घोड़े को एड़ लगाई ।

रास्ते में सोहनसिंह ने पूछा—लेकिन यह तो बतलाइये कि आप यहाँ कैसे आ निकले ?

शेखर ने उसे सारा किस्सा कह सुनाया और पूछा—कानपुर का किस्सा क्या है ?

'बात तो सच है। जनरल हेवलॉक कानपुर पर चढ़ा चला आरहा था इसलिए बाग़ी सैनिकों ने अंग्रेज़ औरतों को मौत के घाट उतार दिया।'

'बच्चों को भी ?'

'जी हाँ।'

'और पुरुष ?'

'वे तो सतीचौरा घाट पर ही कत्ल कर दिये गये थे।'

'क्या यह सब नानासाहब की अनुमति से हुआ ?'

'यह तो नहीं कह सकते। सतीचौरा पर तो लोगों ने ही हमला कर क़त्लेआम किया।'

'कैदियों की हिफाज़त के लिए सैनिक थे या नहीं?'

'थे तो सही।'

'उन्होंने लोगों को रोका क्यों नहीं?'

सोहनसिंह ने कोई जवाब नहीं दिया।

'जो मारे गये उनका कोर्टमार्शल किया गया था?'

'जी नहीं, उन्हें तो छोड़ दिया गया था और नाव से नदी पार ले जाने के लिये ही उन्हें वहाँ लाया गया था।'

'क्या कह रहे हैं आप, सरदारजी? उन्हें अभयदान भी दिया गया था?'

'जी हाँ।'

'आपको अच्छी तरह मालूम है?'

'जी हाँ।'

'और फिर भी उन निहत्थों पर गोलियाँ बरसाई गईं?'

'इसतरह की खून-खराबी तो अंग्रेज़ों ने भी बहुत की है। पंजाब में क़त्लेआम मचा दिया और नील ने इलाहाबाद में जो हत्याकाण्ड किया उसे सुनकर तो रोंगटे ही खड़े होजाते हैं।'

'चुप रहो सोहनसिंह! उनके बुरे कामों की आड़ लेकर हम बुरे काम नहीं कर सकते। उनमें और हम में बड़ा अन्तर है। वे हैं गुलामी, जुल्म, हिंसा और अन्याय-अत्याचार के प्रतिनिधि जबकि हम हैं स्वाधीनता-संग्राम के सैनिक।'

'वह करें और हम...'

'नहीं, हम नहीं कर सकते। हम उनकी तरह नीचे नहीं गिर सकते। वे तो औरतों के साथ बलात्कार भी करते हैं। बोलो, तुम भी करोगे? कर सकोगे?'

'हर्गिज़ नहीं।'

'हर्गिज़ नहीं क्यों? वे कर सकते हैं और तुम क्यों नहीं कर सकते?'

'वे तो पापी हैं। अधर्मी हैं। हम यह पाप कैसे कर सकते हैं?'

'वही तो मैं कह रहा था, सरदारजी! ये फिरंगी पाप-शाप के, अभिमान-अन्धकार के प्रतिनिधि हैं; और हम पुण्य-प्रकाश के, मुक्ति और स्वतन्त्रता के सन्देश-वाहक हैं। उनमें और हममें जमीन आसमान का अन्तर है। हमें स्वयं अपने विचारों में आमूल परिवर्तन करना होगा। हमारे हाथों ऐसे पापकृत्य नहीं होना चाहिये। उनका परिणाम भीषण होगा।'

'तात्या साहब की इस बारे में क्या राय है?' थोड़ी देर बाद शेखर ने पूछा।

'वह भी उस समय कानपुर में ही थे।'

'उन्होंने लोगों को रोका नहीं? मैं होता तो ज़रूर रोकता।'

'लेकिन क्या सिपाही मानेंगे?'

'मानेंगे क्यों नहीं? यदि बात आपके गले उतरती है तो उनके गले भी उतरेगी ही। और बात गले उतरे, या न उतरे मुक्तिसेना के सैनिकों को ऐसे अधम कामों से रोकना ही होगा।'

जब छावनी में पहुँचे तो झुण्ड के झुण्ड सैनिक शेखर का स्वागत करने के लिए तम्बुओं के बाहर खड़े थे। राजशेखर को देखते ही किसी ने

ऊँची आवाज़ में उसकी जय-जयकार की। शेखर ने तुरन्त चिल्लाकर कहा—'जय-जयकार मेरी नहीं अपनी मुक्तिसेना की होनी चाहिये' और निनाद किया—'बोलो मुक्तिसेना की जय।'

सबसे पहले शेखर ने दूत लोग जो खबरें लाये थे उन्हें सुना। हेवलॉक कहाँ था? लखनऊ रेसिडेन्सी की क्या हालत थी? कलकत्ता से लार्ड केनिङ्ग ने कौन से कौन से हुक्म निकाले थे? सिखों का क्या रुख था? आदि सब कुछ पूछा और उसे पता चला कि नरसिंगपुर में जनरल पौलक डेरा डाले पड़ा था। माँ और सुभगा को नालदुर्ग ले गये थे। जनरल डेनियल भी नालदुर्ग ही था। तात्या साहब झाँसी और दतिया की ओर गये थे। सर ह्यूरोज कराँची उतरा था और खुश्की के रास्ते बुन्देलखण्ड की ओर रवाना होगया था।

खबरें सुनने के बाद उसने सोहनसिंह को बुलाया—आप दो सौ चुने हुए आदमी और बारह नगारची मुझे दीजिये और बचे हुए सिपाहियों को लेकर नालदुर्ग पर घेरा डालिये। इस नकशे में जहाँ निशान बने हैं वहाँ घाटियों में चौकियाँ नियुक्त कीजिये। सौ सैनिकों की एक टुकड़ी बबूल की इस झाड़ी के आगे तैनात कर दीजिये। मेरे पहुँचने से पहले परकोटे पर कब्जा करने की सारी तैयारियाँ कर रखिये। और यह कागज़ सारी फौज को सुना दीजिये।

सोहनसिंह ने कागज़ ले लिया। उसमें लिखा था—

'मुक्तिसेना के सैनिको!

'हम देश को गुलामी से मुक्त करने, अन्याय और अत्याचार का नामो-निशान मिटाने और अपने कपाल से दासता का कलङ्क धोने के लिए घर से निकले हैं। हम डाकू-लुटेरे नहीं; हम ठग और बटमार नहीं; हम खूनी और जल्लाद नहीं इस बात का हमेशा ध्यान रखना। हमारा काम बस्तियों को लूटना और उनमें आग लगाना नहीं; बल्कि लुटेरों से उनकी रक्षा करने

का है। इसलिए तुम जो भी चीज़ अपने या सेना के उपयोग के लिए लो उसकी पूरी क़ीमत चुकाकर लेना। हमारा काम लोगों को डराना, धमकाना और आतङ्कित करना नहीं है। कूच के समय इसका पूरा खयाल रखना। जनता के साथ नर्मी से पेश आना। यदि लोग स्वेच्छा से तुम्हें घर में जगह दें या घर खाली करदें तभी अन्दर प्रवेश करना अन्यथा भगवान का नाम लेकर बाहर ही रात बिता देना।

'हम स्त्री मात्र को पार्वती का अवतार समझते हैं, इसलिए भूलकर भी स्त्री का अपमान मत करना। स्त्री, बच्चों, बूढ़ों और अपंगों की यथाशक्ति सहायता करना। उनकी रक्षा में सिर भी देना पड़े तो आगा-पीछा मत करना। जो निहत्था हो, जिसने हथियार डाल दिये हों, जो तुम्हारा क़ैदी हो उसपर कभी हाथ मत उठाना। उसे पकड़कर अपने ऊपर के अधिकारी के हवाले कर देना।

'ऊपर के चारों नियमों में से जो कोई एक का भी उल्लंघन करेगा उसे फौजी अदालत के सामने खड़ा किया जायगा और वहाँ अपराध साबित होते ही उसे गोली मार दी जायेगी।

'जिसे लूट-पाट करना हो; प्रजा पर अत्याचार करना हो; परनारी की इज्ज़त बिगाड़ना हो, शरणागत के साथ विश्वासघात करना हो वह इस हुक्मनामे को सुनते ही मुक्तिसेना से इस्तीफ़ा दे दे। ऐसों के लिये मुक्तिसेना में स्थान नहीं।

'मुक्तिसेना के सैनिक तो गरीब, असहाय और शरणागत के प्रतिपालक होते हैं।

— राजशेखर

सेनापति, नरसिंगपुर सेना'

थोड़ी देर बाद सोहनसिंह ने तम्बू में आकर कहा—दो सौ घुड़सवार तैयार खड़े आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

शेखर ने बाहर आकर देखा तो करतारसिंह को कमाण्डिङ्ग अफ़सर की वर्दी में खड़े पाया। साश्चर्य पूछा—तुम यहाँ?

करतार ने सलाम कर कहा—जी हाँ, डाकुओं को पकड़ने निकले हैं।

उसी दिन शाम को शेखर अपने दो सौ घुड़सवारों को लेकर नरसिंगपुर में दाखिल हुआ। शेखर को देखते ही शहर के निवासियों ने उसके जय-जयकार से आसमान गुँजा दिया। पोलक राजमहल में पड़ाव डाले पड़ा था एक आदमी ने दौड़े जाकर उसे खबर दी। मुक़ाबले के लिए एक टुकड़ी लेकर वह बाहर निकला। शेखर ने अपना बचपन नरसिंगपुर के गली-कूचों में ही बिताया था। वहीं खेल-कूदकर वह बड़ा हुआ था। वहाँ का एक-एक मकान उसका देखा-भाला था। उसने करतार के सौ सैनिकों को नरसिंगपुर की विभिन्न हवेलियों के झरोखों में बैठा दिया। फिर चक्कर लगाता हुआ स्वयं राजमहल की ओर चल दिया। उसके साथ बाक़ी बचे सौ आदमी और नगारची थे। राजमहल का तो कोना-कोना उसका परिचित था। अमराई और बग़ीचे के बीच पानी लाने-लेजाने के लिए एक छोटी-सी जाली थी। उसमें से सिर्फ एक आदमी निकल सकता था। शेखर ने जाली की सलाखें निकाल दीं और अन्दर घुस गया। उसके पीछे उसके एक सौ सैनिक और बारहों नगारची भी घुस आये। अन्धेरे में चुपचाप राजमहल के सामने आकर उसने हुक्म दिया—सैनिको, सावधान! एक...दो...

और उसके तीन कहते ही एक साथ बारहों धौंसे धमकने लगे, गोलियाँ छूटने लगीं और दोनो का तुमुलस्वर सुनकर लोगों के कलेजे मुँह को आगये। जैसे-जैसे पोलक के सिपाही भागने लगे नगारों की धमक और भी तेज़ होती गई। मारे घबराहट के दुश्मन के सैनिकों में भगदड़ मच गई। राजमहल का फाटक खुला छोड़ जिसे जिधर रास्ता मिला उधर ही भाग निकला। बाहर हवेलियों के झरोखों और छज्जों में करतार के सैनिक और नगर निवासी उनका स्वागत करने के लिए तैयार खड़े थे। पत्थर, जूते, लाठी, खाट के पाये, पाटियाँ, जिसके जो हाथ लगा वही, भागते हुए फिरंगी

सैनिकों पर फेंकने लगा। महल में पचास सैनिकों को छोड़ जीती हुई तोपों को आगे कर शेखर ने बाकी पचास सिपाहियों के साथ पोलक पर हमला बोल दिया। पोलक चक्की के दो पाटों के बीच फँस गया। दोनों ओर से गोलियों की झड़ी लगते देख उसके सैनिकों के पाँव उखड़ गये। लेकिन उस रात शायद ही कोई गोरा सिपाही जीवित बच सका। जो गोलियों से नहीं मरा उसने नरसिंगपुर की गलियों में जाकर जान गँवाई।

नरसिंगपुर से गोरी पलटन को मार भगाने में पूरा एक घण्टा भी न लगा। सारे शहर में अब एक भी गोरा सिपाही न बचा था। सिर्फ एक गली में कोई अफ़सर खड़ा था। वह स्वयं पोलक था और एक घायल अफ़सर को घोड़े पर बैठाने का प्रयत्न कर रहा था। अफसर की जाँघ में गोली लगी थी। घोड़े पर ठीक से बैठना उसके लिए मुश्किल था। अफ़सर उसे वहीं छोड़कर चले जाने की प्रार्थना कर रहा था। उन दोनों को इस-तरह आपस में कहा-सुनी करते काफी वक्त होगया था। विद्रोही सैनिक ताक-ताककर गोलियाँ छोड़ रहे थे लेकिन पोलक को जैसे उनका ध्यान ही न हो। वह तो अपने ही काम में मशगूल था। गोलियाँ कान के पास से सनसनाती हुई निकल रही थीं और वह घोड़े की रास थामे घायल अफ़सर को सहारा देकर सवार कराने का प्रयत्न करता रहा। शेखर ने दूर से यह देखा और देखता ही रह गया। उसने ज़ोर से आवाज़ दी—ठहर जाओ!

गोलीबार थम गया। पोलक ने क्षणभर के लिए मुड़कर शेखर की ओर देखा, फिर अफसर को घोड़े पर बैठाकर रवाना किया और दूर से शेखर को फौजी सलाम कर स्वयं भी चल दिया। उसके पीछे दो-चार बन्दूकें तनी हुई देखकर शेखर ने फटकारा-पीठ पीछे गोली मारोगे?

सिपाहियों के बीच एक हृष्ट-पुष्ट आदमी खड़ा था। उसने कहा—यह अच्छा नहीं किया।

किसी ने पूछा—क्या?

'उसे जीवित छोड़कर अच्छा नहीं किया।'

शेखर का ध्यान उधर जाते ही वह घोड़े पर से नीचे उतर पड़ा और उस व्यक्ति को प्रणाम कर पूछा—आप कबसे आये ?

'मैं तो शुरू से ही यहाँ हूँ ?'

'तब तो आपने सब कुछ देखा ही होगा ?'

'बहुत अच्छा किया। लेकिन यह व्यवहार मेरी समझ में नहीं आया।' उस व्यक्ति ने जिस ओर पोलक गया था उधर अँगुली का इशारा करते हुए कहा—यह क्या किया ?

'जो एक आदमी को करना चाहिये, वही किया।' शेखर ने उत्तर दिया।

'रणभूमि पर भी सिद्धान्तों की ऊहापोह ?'

'वहीं तो उनकी सबसे अधिक आवश्यकता है। वहीं तो आदमी के गुमराह होने और ग़लत आचरण कर बैठने की सबसे अधिक संभावना है। आदमी के अधःपतन की जहाँ जितनी ही अधिक संभावना है सिद्धान्तों के ऊहापोह की वहाँ उतनी ही अधिक आवश्यकता भी है।'

तात्या साहब को शेखर की यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने विषय परिवर्तन करते हुए पूछा—सुभगा और देवकी को पकड़कर ले गये !

'जी हाँ !'

'संभव है आजकल में उन्हें फाँसी चढ़ा दिया जाय।'

'फांसी चढ़ाने का उन्हें पूरा अधिकार है। यदि हम कानपुर का हत्याकाण्ड कर सकते हैं, बच्चों, बूढ़ों और औरतों को बिना 'उफ़' किये मार सकते हैं तो माँ और सुभगा तो बाग़ी हैं। बाग़ियों को फाँसी चढ़ाने, गोली मारने या क़त्ल करने का उन्हें पूरा अधिकार है और वह अधिकार हमीं ने उन्हें दिया है।'

तात्या साहब को जैसे किसी ने ज़ोर से थप्पड़ मार दिया हो। उन्होंने कटुतापूर्वक कहा—तो क्या तेरे इस काम से उनका हृदय-परिवर्तन हो जायेगा ?

'मैंने उन्हें इस वणिक् बुद्धि से नहीं छोड़ा है। मैंने इसलिए छोड़ा है कि ऐसों को मारने का मुझे कोई अधिकार ही नहीं है। इसके सिवा ऐसे कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति तो इस संसार की शोभा हैं।'

'व्यर्थ की भावुकता।' तात्या साहब ने संक्षिप्त-सी टीका की।

१४

दूसरे ही दिन से मुक्तिसेना की वह विजय-परम्परा शुरू हुई कि उसके दुश्मन फिरंगी सेनापति भी वाह-वाह कर उठे। नरसिंगपुर के बाद एक के बाद दूसरे शहर पर मुक्तिसेना का अधिकार होता गया। गोरी पलटन शहरों से गाँवों में, गाँवों से जंगलों में और जंगलों से पहाड़ों में खदेड़ी जाने लगी। शेखर बिलकुल आग के दहकते अंगारे की तरह था। उसकी फुरती और तेज़ी बिजली को भी मात करती थी। पोलक, रिचर्डसन और मेक्नाटन को वह बराबर खदेड़े ही चला गया। न तो स्वयं दम मारने की फ़ुर्सत ली न उनको फ़ुर्सत लेने दी। जिसतरह सिंह की हुङ्कार सुनकर हरिण भाग खड़े होते हैं उसीतरह शेखर का नाम सुनते ही फिरंगी सिपाही खाना छोड़कर भाग खड़े होते थे। पोलक को उसने तीन बार पराजित किया। रिचर्डसन को मार भगाया। एकसौ अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों को गिरफ्तार किया और दो हज़ार के लगभग देसी सिपाहियों को मुक्तिसेना में भर्ती किया। सिर्फ पाँचसौ घुड़सवारों के सहारे उसने बुन्देलखण्ड में से कम्पनी की हुकूमत ख़त्म करदी थी और सिरपर पैर रखकर भागी जाती गोरी फौज़ के पीछे बवण्डर की तरह धँसा चला आरहा था। ऐसा लगता था कि एक-एक गोरे को लन्दन भेजे बिना घोड़े की जीन न खोलने का उसने प्रण ही कर लिया हो।

और उसकी सेना भी दावानल जैसी थी। अपने योग्य सेनापति के पीछे नदी-नाले, पहाड़-जङ्गल पार करती गोले-गोलियों की बौछारों में होती संगीनों की दिवालों पर दौड़ी चली आती थी। उसके दुर्दमनीय वेग के आगे फिरंगियों की सारी क़िलेबन्दियाँ ताश के पत्तों की तरह बिखर जाती

थीं। उस सेना के पास ढङ्ग के हथियार भी नहीं थे। गोरी पलटन के तोपखाने के मुक़ाबले में उनके पास वैसी तोपें भी नहीं थीं; न राइफलें थीं और न कारतूस ही। कपड़े फट रहे थे। राशन-पानी को चौबीस-चौबीस घण्टे होजाते थे। हफ्तों स्नान करने को नहीं मिलता था। फिर भी उसकी गति में खामी नहीं आने पाती थी। उसी पवनवेग से मुक्तिसेना के सैनिक बढ़े चले जाते थे। उनका विश्वास था कि स्वयं जनार्दन उनकी सहायता कर रहा है। उसी विश्वास के बल पर लड़ाई में उनकी विजय होती थी और वही विश्वास उन्हें पथभ्रष्ट होने से रोके रहता था। इतनी बड़ी सेना थी, उसने इतने मोर्चे मारे थे और इतना लम्बा कूच किया था लेकिन एक भी सिपाही ने अनुशासन का भङ्ग नहीं किया। न तो किसी ने किसी का घर लूटा, न जनता का कोई आदमी मारा गया। किसी घायल या कैदी के मारे जाने की एक भी घटना घटने न पाई। और यही कारण था कि मुक्तिसेना के सैनिक जहाँ जाते वहाँ उनका स्वागत किया जाता था। गाँव के लोग भागते हुए अंग्रेज़ों को गिरफ्तार कर सैनिकों के हवाले करते थे। उनके लिए खाना पकाते थे; उनके ठहरने और विश्राम का पहले से ही प्रबन्ध कर दिया जाता था। घायल और बीमार सैनिकों की अपने आप्तजनों से भी अधिक सेवा-सुश्रूषा की जाती थी। जब-जब माँग की जाती देहाती लोग अपने बेटे-पोतों को सहर्ष फौज में भर्ती कर देते थे। क्योंकि उन्हें विश्वास होगया था कि यह 'अपनी फौज है, इस फौज के सिपाही अपने सिपाही' हैं। अनुभव से उन्होंने जाना था कि यह सेना बेगार लेने और लूट-पाट कर देहातियों को परेशान करने वाली सेना नहीं है। फुर्सत के समय सैनिक देहातियों को इकट्ठा कर विदेशी राज को हटाने की राजनीति समझाते थे। तुकाराम के अभंग, तुलसी रामायण की चौपाइयाँ, मीरा, कबीर और दादू के भजन गाकर सुनाते थे। सेना में कोई बुरा आदमी नहीं था। किसी की इज्जत-आबरू पर हाथ नहीं डाला जाता था। मुक्तिसेना तो सभी की रक्षा करती थी। उसकी छत्रछाया में हर कोई अपने को सुरक्षित पाता था। इस बात की प्रतीति होते ही देहातियों के उत्साह की कोई

सीमा नहीं रह गई। उन्होंने अपनी धन-दौलत, अपने बाल-बच्चे, अपना सर्वस्व मुक्तिसेना के सेनापति के चरणों में समर्पित कर दिया था।

और यह सेनापति भी कोई ऐसा-वैसा व्यक्ति नहीं था। बड़ा ही असाधारण व्यक्तित्व था उसका। लड़ाई के वक्त वह यमराज से भी अधिक विकराल होजाता था। लड़ाई से भागने वाले सैनिकों को बिना किसी हिचकिचाहट के गोली से उड़वा देता था। लेकिन लड़ाई ख़त्म होते ही सैनिक-वर्दी उतार फेंकता था। साधारण लिबास में सैनिकों का सुख-दुःख पूछने, और घायलों की मरहमपट्टी करने निकल जाता था। घायलों में वह अपने और पराये का, दोस्त या दुश्मन का कोई भेद-भाव नहीं करता था। सब की समानरूप से सेवा-टहल करता था। मृत सैनिकों को स्वयं कन्धा देता था। स्वयं खाने से पहले देख लेता था कि सबको खाना मिल गया है या नहीं। कैदियों को खाना मिला है या नहीं। औरतों, बच्चों और बीमारों को दूध-पथ्य और दवा-दारू दिया गया है या नहीं। बच्चों को देखते ही गोद में उठा लेता और खेलाने लगता। जेब में एकाध सिक्का पड़ा। होता तो उनकी नन्हीं मुट्ठियों में धर देता था। घायल सैनिक उसका स्पर्श पाते ही चङ्गे हो जाते थे; बीमार सैनिक उसकी शकल देखते ही उठ खड़े होते थे। डर से काँपती बन्दी औरतें उसके मुँह से दो बात सुनते ही शान्त और निर्भय हो जाती थीं। मरते हुए सैनिक उसे अपनी मृत्यु-शैया के पास देखकर धन्य होजाते थे। सेनापति होकर भी वह शान-शौकत से परे था। पहिनने को दो जोड़ कपड़े भी उसके पास नहीं थे। एक 'ओवरकोट' और शिरस्त्राण यही उसकी सेनापति की पोशाक थी। उन्हें पहिनकर सेनापति बन जाता था और उतारकर हँसमुख कुमार बन जाता था। खाली कोट पहने धरती पर ही सो जाता था क्योंकि उसका अपना बिस्तरा एक बीमार क़ैदी औरत के पास था।

ऐसा था वह मुक्तिसेना का सेनापति। लेकिन सेना का एक दूसरा अध्यक्ष भी था। वह पर्वत-सा अविचल, न्याय-सा कठोर और मृत्युञ्जय-सा

भीषण था। उसमें दया और कोमलता का लेश भी न था। फरसे की धार की तरह पैना और काटने वाला उसका व्यक्तित्व था। उसका नाम था तात्यासाहब ।

क्रान्ति का दुहरा उत्तरदायित्व होता है। एक तो सड़े-गले, जीर्ण-पुरातन, और अन्याय अत्याचार के प्रतीकों का ध्वंस; उनका जड़ो-मूल से उच्छेदन। और दूसरा, नवनिर्माण; जो सदा से वंचित रहे आये हैं उन्हें उनका न्यायोचित हक दिलवाना। क्रान्ति का दायित्व कारागृहों का ध्वंस करने के साथ ही साथ न्यायालयों और विद्यालयों की स्थापना करने का भी है; सिंहासनों को भू-लुण्ठित करने के साथ संथागार, लोक-मण्डप और पंचायतों की स्थापना भी उसे करना होती हैं; धनियों के धन का अपहरण कर सर्वसाधारण को सुखी-सम्पन्न बनाने वाली अर्थ-व्यवस्था की नींव भी उसे रखना होती है। क्रान्ति का यही दुहरा दायित्व है। उसके दो पहलू होते हैं--एक विनाश और मृत्यु का और दूसरा नवनिर्माण तथा पुनर्जन्म का ।

तात्याटोपी क्रान्ति का सिर्फ एक पहलू था। सिर्फ उसी एक पहलू को देखने वाला क्रान्ति और प्रलय में कोई अन्तर नहीं देखेगा। क्योंकि क्रान्ति के इस पहलू और हत्याकाण्ड में विशेष अन्तर नहीं रह जाता। अपने अत्यन्त उग्ररूप में वह पहलू स्वयं क्रान्ति के ही लिए अनिष्टकारी होजाता है। क्रान्ति के इस पहलू के उपासक के दिल में करुणा नाम-शेष होजाती है। वह न दया जानता है, न मोह-ममता ।

ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व तल्वार की तेज़ धार के साथ छूटे हुए तीर की अन्धी परवशता लिये होता है। उसकी स्थिति अन्धे चित्रकार-सी होती है या उस व्यापारी की-सी, जो बिना हिसाब-किताब रखे व्यवसाय करता है ।

सभी क्रान्तियों में एकाध ऐसा विनाशक व्यक्तित्व होता ही है; लेकिन उसका संतुलन बनाये रखने के लिए क्रान्ति किसी दूर-द्रष्टा को भी जन्म

देती है। और तभी क्रान्ति सार्थक होती है। अन्यथा वह क्रान्ति न होकर दँगा या लूट-पाट हो जायेगी।

नरसिंगपुर के विद्रोह के भी दो पहलू थे—एक तात्यासाहब और दूसरा राजशेखर। एक आग की लपट था तो दूसरा पानी की धारा। जब ये दोनो मिल जाते हैं तो असंभव संभव होजाता है, पहाड़ और अजेयदुर्ग धराशायी होजाते हैं, दुर्गम पथ सुगम बन जाता है। इन दोनो तत्वों को जोड़ने वाली कड़ी है क्रान्ति। उसी क्रान्ति ने तात्यासाहब और शेखर को अटूटरूप से जोड़ दिया था।

तात्या साहब मन ही मन शेखर को चाहते थे। शेखर की विजय-परम्परा देख उनकी छाती गर्व से फूल जाती थी और पिता के वात्सल्य-भाव से वह उसे हृदय से लगा लेते थे। लेकिन जब उसी शेखर को घायल फिरंगियों की मरहमपट्टी करते देखते तो बड़ी उलझन पैदा होजाती थी; वह उससे अकसर कहते रहते—एक दिन तेरी यही दया-माया तुझे ले बैठेगी।

डर तो वह जानते ही नहीं थे। उन्हें निर्भय कहने की अपेक्षा भय की साकार मूर्ति कहना ही अधिक सही होगा। जब कैदियों के तम्बुओं के सामने से निकलते थे तो औरतें मारे डर के अपने बच्चों को छिपा लेती थीं। चेहरा असुन्दर और डरावना नहीं था, बल्कि भरा हुआ प्रतिभा-सम्पन्न चेहरा देखने में अच्छा ही लगता था। परन्तु आँखों में एक ऐसी भयानक चमक थी कि देखते ही विपक्षी के होश गुम होजाते थे। यों वे आँखें प्रसन्न रहती थीं लेकिन दुश्मन को देखते ही उनमें प्रतिहिंसा जाग उठती थी। तब उनकी पुतलियाँ बल्लम की नोक-सी नुकीली, भूखे सिंह-सी खून की प्यासी और अँगारों-सी दहकने वाली होजाती थीं। उस समय उनका चेहरा ऐसा भीषण और विकराल रूप धारण कर लेता था कि उनसे दया की आशा करना बालू से तेल निकालने के समान था। स्नेह और वात्सल्य को पाँवों तले कुचलकर हा-हा खाने वालों का बिलकुल निर्लेप भाव से वह

प्राण ले लेते थे। विपक्षी की हत्या उनके मन अनिवार्य आवश्यकता थी। उस नियम की अवहेलना वह कर ही नहीं सकते थे।

ईश्वर की भक्ति, धन का लोभ, सौन्दर्य का आकर्षण, निरुत्तर कर देने वाला तर्क और मौत का डर भी उन्हें उनके उस अटूट नियम से विचलित नहीं कर सकता था। रॉबेस्पियर ने जल्लाद के कुल्हाड़े के नीचे भी वही कहा था जो उसने लोक-सभा में कहा था। लेनिन सोबियत के प्रधान मन्त्री या ब्रुसेल्स में अकेले विपक्षी की हैसियत से भी उसी निर्ममता से वही बात कहता आया था।

क्रान्ति का यह पहलू अत्यन्त ही भयानक पर साथ ही अत्यन्त आकर्षक भी है। यह पक्ष विरोधी के साथ समझौता करना नहीं जानता, विरोधी की आज़ादी को कभी मंजूर नहीं कर सकता। उसका विश्वास तो सिर्फ एक ही बात में है और वह है विपक्षी को मौत के घाट उतार देने की ऐतिहासिक आवश्यकता। यदि ऐसा करने में स्वयं भी नष्ट होना पड़े तो बिना किसी हिचकिचाहट के जल्लाद के खाँडे के नीचे अपनी गर्दन भी रख देगा।

लेकिन क्रान्ति का दूसरा रूप रचनात्मक है। यह रचनात्मक रूप आवश्यकता पड़ने पर खून बहाने में हिचकिचाता नहीं। लेकिन इसकी कसक उसके मन में हमेशा बनी रहती है। खून बहाना उसे पसन्द नहीं। उसे तो मज़ा आता है हरे खेत, गुलाबी गाल वाले बच्चे और नया घर बसाने में। जड़ोमूल से उखाड़ना उसे पसन्द नहीं। उसके मन वह प्रलय की पूजा है और वह प्रलय का नहीं सृष्टि का उपासक होता है। इसीलिए उसकी दृष्टि विशाल, स्वच्छ और सहानुभूतिपूर्ण होती है। उसमें धर्मबुद्धि के साथ आन्तरिक सूझ-बूझ का अनोखा सम्मिश्रण होता है।

कभी-कभी विद्रोह के ये दोनो पहलू आपस में टकरा जाते हैं। उस समय ऐसा लगता है मानों शंकर का पाशुपत अस्त्र रामचंद्र के ब्रह्मास्त्र से टकरा गया हो।

तात्यासाहब पूछते—तूने उन मिशनरी पादरियों को क्यों छोड़ दिया?

'मैं साधु-सन्तों और धर्मात्माओं के विरुद्ध नहीं लड़ रहा हूँ।'

'जब झूठ का प्रचार साधुओं के जरिये होने लगता है तो वह हलाहल से भी अधिक घातक होजाता है। और उन अंग्रेज़ औरतों को अभीतक कोर्ट-मार्शल के लिए क्यों नहीं भेजा?'

'मेरी लड़ाई उन औरतों के खिलाफ भी नहीं है।'

'जब औरतें क्रान्ति का प्रचार करने लगती हैं तो उसकी तीक्ष्णता सौगुनी बढ़ जाती है। अच्छा, रिचर्डसन को क्यों जाने दिया?'

'मैं निहत्थों पर वार नहीं करता।'

'शेखर तूने धोखा खाया है। आज वही रिचर्डसन नालदुर्ग में मोर्चे-बन्दी किये पड़ा है और हमारे खिलाफ लड़ रहा है। शेखर, एक बात अच्छी तरह समझले। विद्रोह के समय दया-माया का प्रदर्शन कभी विद्रोह के लिए खतरनाक साबित होसकता है। बाघ को जीवित छोड़ने का मतलब होता है दस भेड़ों की जान लेना। ऐसी दया ग़लत है।'

'यदि दया ग़लत हो तो क्रान्ति का कोई अर्थ ही नहीं रह जायगा। मेरे खयाल में तो दूसरे के प्रति करुणा और समवेदना ही क्रान्ति की जननी हैं।'

'लेकिन दुश्मन पर तो दया की ही नहीं जासकती।'

'दुश्मन का अर्थ यदि सशस्त्र आततायी है तो मुझे स्वीकार है। लेकिन असहाय, निर्बल, शरणागत, अनाथ और निहत्थों पर हाथ उठाने का आदेश देने वाली क्रान्ति को मैं क्रान्ति नहीं कहता। वह तो चंगेज़ और तैमूर के हत्याकाण्ड हैं। और अपना वश चलते मैं ऐसे क्रान्ति-कारियों को क्रान्ति-विरोधी होने के अपराध में कोर्टमार्शल की सजा दूँगा।'

'तू क्रान्ति किसे कहता है ?'

'अधर्म का नाश कर धर्म की स्थापना करने को ही मैं क्रान्ति कहता हूँ। फिर वह अधर्मी फिरंगी हो या भारतवासी, मैं हूँ या स्वयं आप हों, सभी क्रान्ति-विरोधी हैं।'

'तेरी बात निरी आदर्शवादिता है। क्रान्ति और धर्म में कोई अन्तर नहीं होता। दोनो एक ही हैं। दोनो का अलग-अलग अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो सिर्फ एक बात जानता हूँ कि ये फिरंगी मेरे देश में ज़बर्दस्ती घुस आये हैं। इन्हें यहाँ से निकाल बाहर करना है। सीधे से ये लोग मानते नहीं हैं इसलिए युद्ध का रास्ता अख्तियार करना पड़ा है। इन्हें यहाँ से निकाल बाहर करने के लिए जो भी साधन काम में लाना पड़ें वे सभी उचित हैं; और मेरे लेखे वही धर्म है। इसमें जो कोई रोड़े अटकाये, बहस-मुबाहसा करे, जिसे हिचकिचाहट हो मैं उसी को क्रान्ति-विरोधी समझता हूँ।'

'मुझे आपकी बात मंजूर है लेकिन फिर भी मैं कहता हूँ कि वह पूर्ण-सत्य नहीं केवल अर्ध-सत्य है। फिरंगियों को निकाल बाहर करने के पक्ष में मैं भी हूँ लेकिन उनके बाद उनसे भी बुरी और निकृष्ट कोटि की शासन-व्यवस्था मुझे यहाँ नहीं स्थापित करना है। केवल फिरंगियों को निकाल देने का मेरे मन कोई अर्थ नहीं है। मैं तो साथ ही उसके बाद की परिस्थिति के लिए भी लड़ता हूँ। मैं यहाँ फिरंगियों की शासन-व्यवस्था से अच्छी शासन-व्यवस्था लाना चाहता हूँ। यदि वह भी मेरा लक्ष्य न हो तो सिर्फ फिरंगियों से लड़ना मेरे निकट निरर्थक होगा। फिरंगियों के खिलाफ लड़ने वाली सेना से मुझे दोनो काम करवाना हैं। फिरगियों को निकाल बाहर करना और एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित करना जिसमें फिरङ्गियों का-सा अन्याय, अत्याचार और लोभ-लिप्सा न हो। यदि हमारा वह लक्ष्य न हो, यदि फिरङ्गियों के बाद हम उनसे अधिक स्वतंत्र और सुव्यवस्थित शासन-सत्ता स्थापित करने न जारहे हों तो उनके

विरुद्ध लड़ने और उन्हें यहां से निकाल बाहर करने का हमें नैतिक अधिकार ही क्या है ?'

'इस देश में. जन्म लेना ही हमारा नैतिक अधिकार है ।'

'यह भ्रम है । देश में जन्म लेने से ही उस देश पर हमारा कोई अधिकार नहीं होजाता । पिता की विरासत हासिल करने के लिए जिसतरह योग्यता की आवश्यकता होती है उसीतरह बल्कि उससे भी अधिक योग्यता देश की विरासत को आगे बढ़ाने के लिए ज़रूरी होती है । यदि फिरंगियों से अधिक हमारी योग्यता न हुई तो भगवान के दरबार में हम अपने दावे को न्यायोचित नहीं साबित कर सकेंगे । क्योंकि उसके दरबार में देश, जाति और रंग कसौटी नहीं है । वहां तो खरी कसौटी योग्यता की है । हमारी सेना गोरी पलटन से अधिक योग्य तभी समझी जायेगी जब वह स्वयं किसीतरह का अन्याय-अनाचार न करे । दूसरों के अन्याय का विरोध करने से पहले स्वयं अन्याय न करने की प्रतिज्ञा तो करना ही पड़ेगी । अन्यथा अन्तरिक्ष में देवता हँसेंगे और कहेंगे कि देखो, अन्धा काने को हँस रहा है ! मेरी मुक्तिसेना को यदि भगवान के दरबार में अपना दावा उचित साबित करना है तो उसे प्रतिज्ञा लेना ही पड़ेगी कि वह फिरंगियों के समान किसी की असहायता, दुर्दशा और दुर्बलता का कभी नाजायज फायदा नहीं उठायेगी; फिरंगियों के किये किसी अन्याय का अपने हाथों पुनरावर्तन नहीं होने देगी । उन्होंने काले और गोरे का जो भेद खड़ा किया है उसे मुक्तिसेना कभी मंजूर नहीं करेगी; न उसपर अमल ही करेगी । वह तो भेद करेगी न्याय और अन्याय में, पाप और पुण्य में, धर्म और अधर्म में । धर्म का पालन कर अधर्म के विरुद्ध हथियार उठाने के लिए ही मुक्तिसेना का संगठन किया गया है ।

'यदि क्रान्तिकारी इस नैतिकता का खयाल भूल जायें तो उनकी क्रान्ति का कोई अर्थ ही नहीं होगा। आज जो लाख-लाख जनता अपने बाल-बच्चों और धन-सम्पत्ति की आहुति इस यज्ञ-समारम्भ में दे रही है वह मात्र विदेशी

राज्य के अत्याचारों से ही मुक्ति पाने के लिए नहीं, बल्कि हर तरह के जुल्मो सितम से मुक्ति पाना चाहती है। तलवार चाहे गोरे की हो चाहे काले की उसकी चोट से दर्द तो एक-सा ही होगा। आज इस सहस्रबाहु, सहस्रपाद और सहस्रशीर्ष जनता ने उसी तलवार का नाश करने की गरज से विद्रोह किया है। जनता के उस संकल्प को पूरा करने के लिए ही हमारी मुक्तिसेना का संगठन हुआ है। उस मुक्तिसेना की लड़ाई रंग और जाति के विरुद्ध नहीं अत्याचार मात्र के विरुद्ध है। वह न तो किसी के अत्याचार को बर्दाश्त करेगी और न किसी पर अत्याचार ही करेगी।'

'अत्याचार की तेरी परिभाषा क्या है?'

'जो अपना अधिकार न होते हुए भी अधिकार जतलाता है या जतलाना चाहता है मैं उसी को अत्याचार और अन्याय कहता हूँ।'

१५

शेखर इधर जङ्गलों में पोलक और रिचर्डसन आदि को उलझाये रहा और उधर सोहनसिंह ने इस बीच नालदुर्ग के निचले परकोटे पर कब्जा कर लिया। नालदुर्ग की बाग़ी फौज तो अपने किले की ईंट-ईंट से परिचित थी इसलिए उन्हें किला सर करने में अधिक वक्त नहीं लगा। परकोटे में जो बारूदखाना था उसी को लक्ष्य कर बाग़ी फौजों ने बमबारी की। निशाना ठिकाने से लगते ही एक भीषण धड़ाके के साथ बारूदखाना उड़ गया और परकोटे का एक हिस्सा भी साथ में उड़ाता लेगया। बाग़ी फौज़ उसी टूटे हुए हिस्से की राह अन्दर दाखिल होगई। बाग़ियों को अन्दर आते देख बचे हुए अंग्रेज़ ऊपर की गढ़ी में जा छिपे। सोहनसिंह अब उनपर हमले की तैयारियाँ कर रहे थे। परन्तु एक तो मुख्य सेनापति का आदेश नहीं मिला था और दूसरे जनरल डेनियल की ओर से रोजाना ये धमकियाँ दी जाती थीं कि बाग़ियों ने जैसे ही गढ़ी पर हमला किया महारानी देवकी और सुभगा को फाँसी टाँग दिया जायगा। इस आशय की पर्चियाँ भी रोज़ सैकड़ों की तादाद में ऊपर से नीचे फेंकी जाती थीं।

गढ़ी में सिर्फ इक्कीस अंग्रेज़ थे। उन्हें आशा थी कि बाहर से कुमक आकर उन्हें बचा लेगी; लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये उनकी यह आशा भी मरती गई। क्योंकि रोज-रोज उन्हें शेखर की जीत के समाचार मिलते थे और उन्हें विश्वास हो चला था कि सारे बुन्देलखण्ड में एक भी ऐसा अंग्रेज़ नहीं बचा है, जो उनकी मदद के लिए आ सके। अब उस चूहेदानी

से जान बचाने का रास्ता स्वयं उन्हें ही खोज निकालना था। दोनों दलों को क़िले से बाहर लेजाने वाली सुरंग की जानकारी थी। लेकिन उसका उपयोग करने का साहस दोनों में से एक को भी नहीं होता था। उसमें सबसे बड़ा खतरा तो यह था कि एक ही आदमी हज़ारों को मौत के घाट उतार सकता था। फिर भी अन्दर घुसने के सब उपाय बेकार होजाने पर एक साथ दोनों रास्तों से हमला करने की योजना सोहनसिंह और शेखर ने पहले से ही बना रखी थी।

अंग्रेज़ों ने बाग़ियों के नाम कल फिर एक पुर्जी फेंकी थी। उसमें अन्तिम चेतावनी दी गई थी कि यदि अड़तालीस घण्टों में बाग़ी फौज़ ने अपना घेरा नहीं उठा लिया तो देवकी और सुभगा के सिर धड़ से जुदा कर गढ़ी की दीवाल से नीचे फेंक दिये जाएँगे। इस समाचार ने बाग़ी सैनिकों के दिलों में गुस्से की ज़बर्दस्त आग भड़का दी थी। उसी रात हर तम्बू में तै हुआ कि चाहे फौजी अदालत उन्हें गोली से उड़ा ही क्यों न दे परन्तु यदि फिरङ्गियों ने अपनी धमकी को कार्यरूप में परिणत किया तो क़ैद की हुई एक भी अंग्रेज़ औरत जिन्दा न छोड़ी जायेगी। अपनी महारानी और सुभगादेवी की मौत का बदला लेने के लिये कुछ भी उठा न रखने का निश्चय-सा कर लिया गया था। चुपचाप अन्दर घुसने का रास्ता खोजती हुई दो-दो चार-चार सिपाहियों की टोलियों ने गढ़ी की ऊँची दिवाल के पास फिरना शुरू भी कर दिया था।

स्वयं सोहनसिंह यह धमकी सुनकर बेचैन होगये थे। सत्गुरु की कृपा से आजदिन तक उनका वचन पूरा होता आया था लेकिन आज बुढ़ापे में उनकी प्रतिज्ञा पर पानी फिरने का मौक़ा आगया था। उन्होंने नरसिंहा बजा-कर गढ़ी में सन्देशा भिजवा दिया कि 'यदि महारानी देवकी और सुभगा का बाल भी बाँका हुआ तो समझ लेना कि क़ैद किये हुए अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों की जान भी सुरक्षित नहीं है।' फिर हमले की तैयारी करने का हुक्म देकर शेखर के पास दौड़े गये।

शेखर ने विज्ञप्ति पढ़कर कहा—हमारे यहाँ जो कैदी हैं ज़रा उन्हें यह विज्ञप्ति पढ़ने के लिए दीजिये। दूसरे, नरसिंगपुर जाकर आठ हाथ ऊँची दस सीढ़ियाँ तैयार करवाकर कल शामतक उन्हें नालदुर्ग पहुँचाने की व्यवस्था कीजिये। सुबह मैं भी वहाँ पहुँचता ही हूँ।

रोज़ की दौड़-धूप में शेखर माँ और सुभगा की संकटपूर्ण स्थिति को एक क्षण के लिए भी नहीं भूला था। लेकिन आज की खबर ने तो उसके दिल को ही दहला दिया था। माँ और सुभगा की मृत्यु की कल्पना उसने इतनी निकटता से कभी नहीं की थी। स्वप्न में भी उसने यह नहीं सोचा था कि एक दिन माँ और सुभगा उसे इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में बिलकुल अकेला छोड़कर सदा के लिए इतनी दूर चली जाएँगी कि वह अपनी आवाज़ भी उनतक नहीं पहुँचा सकेगा। वह जीवन में सर्वथा अकेला था। बिल्कुल नि:सङ्ग न कोई उसका दोस्त था, न कोई सगा-सम्बन्धी। गुरु भी नहीं थे कि उनके चरणों में लोटकर अपनी समस्त चिन्ताओं और परेशानियों से मुक्ति पा लेता। एमिली तो उसके जीवन में प्रवेश कर ही नहीं पाई थी। हृदय के रुद्ध कपाटों पर सिर पीटकर जैसी आई थी वैसी ही चली गई थी। अपना कहने के लिए सिर्फ दो व्यक्ति थे। एक थी माँ और दूसरी सुभगा। उसका सुख, उसकी आशा, उसका सौभाग्य, उसका यहलोक, परलोक, सभी कुछ ये दो व्यक्ति थे। परछाईं की भाँति अविभक्त रूप से यह उनके पीछे और वे उसके पीछे इस दुनिया में चलते रहे थे। एमिली का प्रबल प्रेम भी उन्हें एक दूसरे से अलग न कर सका था। परन्तु आज न जाने किसका क्रूर हाथ उन्हें एक दूसरे से हमेशा के लिए विलग कर रहा था, उनकी आत्मा को ज़बर्दस्ती खींचे लिये जारहा था; और वह उन्हें बचाने में अपने आपको सर्वथा असमर्थ पा रहा था।

वह घण्टों मूढ़ की तरह हतबुद्धि होकर बैठा रहा। वहाँ पड़ा था केवल उसका शरीर और आत्मा तो उड़कर चली गई थी ऊँचे क़िले की

किसी बन्द कोठरी में और वहाँ सीखचों पर सिर पटककर बिलख रही थी।

एमिली से उसने अनेकों क्रान्तिकारियों के इतिहास सुने थे। ब्रुटस् ने स्वयं अपने बेटे को फाँसी लटकाने का हुक्म दिया था। ग्रेकाई बन्धुओं की वीर माता कार्नेलिया ने अपने बेटों की मृत्यु के समाचार को मंगल-अवसर की तरह माना था। अब्राहम ने अपने हाथों अपने बेटे का वध किया था। गेरीबाल्डी अपनी प्रियतमा का अन्तिम-संस्कार किए बिना ही चल दिया था। 'खुश रहें अहले वतन, हम तो सफर करते हैं; परन्तु अनुभव ही बतलाएगा कि किसका रास्ता अच्छा है।' कहकर महान दार्शनिक सुकरात ने हँसते हुए ज़हर के कटोरे को मुँह से लगा लिया था। शेखर इन समस्त शहीदों से अच्छी तरह परिचित था लेकिन आज उसे कोई भी आश्वासन नहीं दे पा रहा था। सुकरात का क्या ? ज़ेण्टेपी जैसी कर्कशा पत्नी से सदा के लिए बिछुड़ने में उसे दुःख ही क्या होता ? और कहाँ सुकरात की विद्वत्ता और कहाँ शेखर ? गेरीबाल्डी का धैर्य प्रशंसनीय था परन्तु आज तो शेखर दोनो ही गँवा रहा था। उसकी दोनो आँखें ही निकाली जारही थीं। उसका जीवन, उसके जीवन का प्रकाश उससे छीना जारहा था। पुत्र का बलिदान किया जासकता है, परन्तु माँ...उसे धरती घूमती हुई, पाताल लोक में जाती हुई मालूम पड़ रही थी; प्रलय होने में अब देर नहीं थी, एक क्षण सिर्फ एक क्षण...

उसी समय किसी का मधुर स्वर सुनाई दिया—क्या मुझे थोड़ा-सा वक्त मिल सकता है ?

शेखर ने सिर उठाकर देखा। एक औरत-सी दिखलाई दी। आँखों के आगे अभीतक अन्धेरा छारहा था। उसने सिर हिलाकर, आँखें सिकोड़कर ध्यान से देखा। हाँ, औरत ही थी। धीरे-धीरे उसने उसे पहचाना। यह तो वही बीमार मेम थी, जिसे सोने के लिए उसने अपना बिस्तरा देदिया था। वह पूछ रही थी—क्या मुझे थोड़ा-सा वक्त मिल सकता है ?

'बड़ी खुशी से ।' उसने कहा । लेकिन उसकी आवाज़ में आश्चर्य-जनक परिवर्तन होगया था । ऐसा लग रहा था मानों गहरी कब्र में से मुर्दा बोल रहा हो ।

'मैं अपने देशवासियों की ओर से आपसे क्षमा माँगने और अपना दुःख प्रगट करने के लिए आई हूँ । आपकी उदारता जैसी कल्पनातीत है वैसी ही कल्पनातीत यह निष्ठुर विज्ञप्ति भी है । मैं अंग्रेज़ जाति की ओर से, अपने पति और बन्धु बान्धवों की ओर से, अपने देश इङ्गलैण्ड की ओर से, इस निष्ठुर विज्ञप्ति के लिए आपसे क्षमा याचना करने आई हूँ ।'

शेखर के मन में आया कि कह दे-तुम्हारी इस क्षमा-याचना से उसे क्या मिलने का ? उसकी माँ और उसकी सुभगा को तो तुम लौटाने से रहीं । लेकिन ज़ब्त कर गया और मन में ऐसा विचार आने के लिए अपनी लानत-मलामत करने लगा । वह महिला उसकी ओर देखती रही । उसका चेहरा अपने जाति बन्धुओं के किये अपराध से काला पड़ गया था । मानों वह प्रायश्चित करने आई हो । शेखर को लगा कि दुःखद होते हुए भी कितना सुखद और करुण होते हुए भी कितना मंगलमय था वह चेहरा ।

उस भीषण हत्याकाण्ड, मार-काट और अन्धे आवेश के बीच उस महिला के उस छोटे-से सत्कार्य ने शेखर को जैसे ठण्डी छाँह के नीचे ला बैठाया । उसने रुँधे हुए गले से कहा—क्षमा करने वाला मैं कौन होता हूँ मेडम ? अपराधी तो मैं भी हूँ न ! कानपुर के पाप का पूरा प्रायश्चित तो करना ही होगा ।

'युद्ध में ऐसा ही होता है । लड़ाई के उन्माद में तुम पुरुष माँ, पत्नी और ईश्वर तो ठीक स्वयं अपने सुकुमार बालकों को भी भूल जाते हो । बदला लेने के लिए पागल होरहे गेंडे भी अपने बच्चों को देखकर क्षणभर के लिए रुक जाते हैं; परन्तु तुम...'

लेकिन विषयान्तर होते देख बीच में ही रुक गई और बोली—मैं एक भीख माँगने आई हूँ।

'फरमाइये।'

'मुझे गढ़ी के अन्दर जाने की इजाजत दीजिये।'

'क्यों? सन्धि के लिए?'

'सन्धि करवाने वाली मैं कौन होती हूँ? फिर भी,' उसने हँसते हुए कहा—यदि यह काम हमें सौंपा जाय तो तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा ही अच्छी तरह करेंगी। किसी की जान लेने का लोभ हमें कभी न होगा। हम स्त्रियों से यह जघन्य कृत्य कभी नहीं होने का। हम जन्म देने वाली माँ हैं। अपने पेट में नौ महीने रखकर शरीर का अमृत रस पिलाकर पोषण करती हैं और जन्म देती हैं। सृजन की पीड़ा-वेदना और महानता हम जानती हैं। और यही कारण है कि हत्या माँ के स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। सृजन की पीड़ा तुम नहीं जानते, इसीलिए उसके आनन्द और यथार्थ मूल्याङ्कन से तुम वंचित रह जाते हो; इसीलिए ठण्डे कलेजे से खूनखराबी कर सकते हो और इसीलिए उसकी योग्यता-अयोग्यता पर इसतरह बातें करते हो मानो जीवन भी साग-भाजी की तरह बाजार में मोल बिकता हो।

'प्रसव की वेदना और बच्चे को दूध पिलाने का आनन्द तुम जानते ही नहीं। माँ के उदर में जीव की सृष्टि कैसे होती है, उसे जनने में और उसकी रक्षा करने में क्या खोना और क्या क़ीमत चुकाना पड़ती है उसकी तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन हमारा तो यह रोज़मर्रा का काम है। इसलिए जो असह्य वेदना पेट के बालक की मृत्यु पर होती है वही बछड़े की हत्या की जाने पर भी होती है। हम जीवन का विनाश सह ही नहीं सकतीं; क्योंकि हम जानती हैं कि जीवन...'

और कहते-कहते वह रुक गई मानों उसे उचित शब्द नहीं मिल रहे हों; फिर थोड़ी देर बाद बोली—क्योंकि हम जानती हैं कि जीवन कितना

महान है, कितना ऐश्वर्यपूर्ण है ! इसका हम अपने अणु-अणु से अनुभव करती रहती हैं । इसीलिए कहती हूँ कि यदि सन्धि-चर्चा का काम हम औरतों को सौंपा जाय तो उसे तुम पुरुषों से ज्यादा ही अच्छा करेंगी । जिसदिन सन्धि-चर्चा का काम हमारे हाथ में आयेगा उसदिन उसमें व्यर्थ की खींचातानियाँ, मदोन्मत्त धमकियाँ और दाम्भिक बातें नहीं रह जायेंगी । प्रेमपूर्ण उलहनों और उदारतापूर्ण लेन-देन में ही सब कुछ निपट जायगा । लेकिन अभी तो वह दिन दूर, बहुत दूर है । उसदिन न होंगी बन्दूकें और न होंगी तलवारें । तुम्हारी इन तोपों और तमञ्चों का युग बीत चुका होगा ।

वह बड़ी देरतक खोई-सी खड़ी रही मानो दूर भविष्य में ही देख रही हो । शेखर भी बच्चे की तरह उसके चेहरे की ओर टक लगाये देखता रहा । देवकी और इस मेम में उसे कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया । उसे लगा मानों उसकी जनम देने और पालने वाली माँ ही सामने खड़ी थी और बचपन की तरह उसे अपना दूध पिला रही थी ।

'क्या आप अपना नाम बतलाएँगी ?'

'श्रीमती पोलक ।'

शेखर ने दोनो हाथ जोड़कर कहा—आपके वीर पति से युद्धक्षेत्र में परिचय हुआ था । आज आपका परिचय पाकर धन्य हुआ । क्या आज्ञा है मेरे लिए ?

'मैं अपने कैदी बन्धुओं की ओर से एक प्रस्ताव लेकर गढ़ी में जाना चाहती हूँ ।'

'क्या प्रस्ताव मैं जान सकता हूँ ?'

'बतलाने में असमर्थ हूँ; लेकिन कहकर भी हम औरतें आखिर क्या कहेंगी ?'

'जैसी आपकी इच्छा; लेकिन कृपा कर दो बातें न कहियेगा ।'

'कौनसी ?'

'एक तो यह कि मेरी माँ और सुभगा की हत्या होने से आप पर आँच आने की संभावना है । ऐसी बात नहीं है; इसलिए इसे जबान पर भी मत लाइयेगा । दूसरे कैदियों की अदला-बदली कर लड़ाई बन्द करने की बात भी मत कहियेगा ।'

'पहली बात तो मैं समझ सकती हूँ । वह आपके योग्य ही है । लेकिन दूसरी बात में आपको आपत्ति क्या है सो समझ में नहीं आता । यदि कैदियों की अदला-बदली कर किला छोड़कर वे लोग चले जायें तो आपको आपत्ति क्या है ?'

'किला छोड़कर कहाँ जायेंगे ?'

'जहाँ चाहेंगे चले जायेंगे ।'

'लेकिन एक शर्त मानना पड़ेगी और वह यह कि इंजिल लेकर प्रतिज्ञा करें कि भविष्य में हिन्दुस्तानियों के खिलाफ कभी हथियार नहीं उठायेंगे । नहीं तो, नहीं जा सकेंगे । इस लड़ाई में या तो हम ही नहीं रहेंगे या वही नहीं रहेंगे । 'वही' से मेरा मतलब कम्पनी की हुकूमत से है । आप उन्हें कम्पनी की मुलाजमत छोड़ने के लिए तो राज़ी कर नहीं सकेंगी ।'

'फिर वहाँ जाकर मैं कहूँ क्या ?'

'यह निश्चय करना तो आपका और आपके साथियों का काम है । मेरी ओर से तो सिर्फ यही निवेदन है कि ऊपर की दो बातें न कही जायें । व्यक्तिगत सुख-दुःख और हानि-लाभ के विचार से हम क्रान्ति के झण्डे को झुकाना नहीं चाहते । एक साथ दो झण्डे नहीं उड़ सकते ।'

१६

घेरा डालकर पड़ी बाग़ी सेना को देवकी और सुभगा को मार डालने की धमकियाँ तो पहले भी दी जा चुकी थीं; परन्तु उन पर अमल नहीं हुआ था। ऐसा क्यों हुआ ? क्या वह निरी धमकी ही थी ? और थी, तो गीदड़भभकी से फायदा क्या था ? या उस पर अमल करने में कोई बाधा आती थी ?

हां, यही बात थी। देवकी और सुभगा को मारने की बात सिर्फ गीदड़भभकी नहीं थी। गढ़ी के फिरङ्गी उस पर अमल करना चाहते थे; लेकिन बीस आदमियों की इच्छा और सम्मति होते हुए भी एक आदमी का विरोध था और उसके ज़बर्दस्त विरोध के कारण बाकी अपनी मन-चाही करने में असमर्थ थे। उन्नीस आदमियों ने बीसियों बार कर्नल जानसन को अपना प्रतिनिधि बनाकर जनरल के पास भेजा था कि वह उन्हें किसी तरह दोनो कैदियों के वध की इजाजत दे दें। लेकिन जिस तरह चट्टान से टकराकर लहरें लौट जाती हैं उसी तरह उन उन्नीस आदमियों की प्रार्थनाएँ बार-बार असफल हुई थीं। जनरल को मर जाना मंजूर था लेकिन इस जघन्य कृत्य की अनुमति देना कभी मंजूर नहीं था। चट्टान टूट जाएगी लेकिन रास्ता नहीं देगी।

देवकी को गिरफ्तार करने के बाद ही उन्हें पता चला था कि वासुदेव की बेटी सुभगा भी महारानी के साथ है। उन्होंने पालकी के समीप पहुँ-चकर प्रणाम किया और बोले—मुझे क्षमा कीजियेगा। कर्तव्य से बँधा होने

के कारण आपको गिरफ्तार कर रहा हूँ। वासुदेव से जिन्होंने दीक्षा ली है उनसे इतनी आशा करना अनुचित न होगा कि व्यर्थ की छीना-झपटी नहीं की जायेगी। मैं अपनी ओर से वचन देता हूँ कि आपकी इज्जत मेरे हाथों पूरी तरह सुरक्षित है। यही समझियेगा कि आप नरसिंगपुर के क़िले में ही हैं।

सुभगा ने पालकी के अन्दर से झांककर कहा—एकबार आप हमारे अतिथि रह चुके हैं। मुझे और महारानीजी को पूरी आशा है कि हमारा वह आतिथ्य निष्फल नहीं हुआ होगा।

और उसने कहारों को आदेश दिया कि वे जनरल के बतलाये रास्ते का अनुसरण करें।

जनरल ने उन्हें अपने बंगले में उतारा और स्वयं शेखर की कोठरियों में रहने चले गये। चड़सवाले की लड़की के हाथ रसद आदि भेजकर कहलाया—क़िले में इस समय कोई ब्राह्मण नहीं है इसलिए आपको अपने ही हाथों भोजन बनाने का कष्ट करना पड़ेगा। विवशता है। बाक़ी, ऊपर के कामों के लिए यह लड़की भेजी जारही है।

देवकी और सुभगा इसतरह का आदर-सत्कार देखकर पहले तो दंग रह गई। फौज के बड़े अंग्रेज़ अफसर से ऐसे व्यवहार की तो उन्होंने स्वप्न में भी आशा नहीं की थी। लेकिन जैसे-जैसे जनरल डेनियल से परिचय होता गया उनका विश्वास पक्का होता गया कि अंग्रेज़ लोग भी भले और उदार-दिल होते हैं। और यह विश्वास जितना ही पक्का होता गया डेनियल के प्रति देवकी का जो संकोच था वह भी कम होता गया। अब जनरल के आने पर वह उनसे बैठने के लिए भी कहती थीं और उनसे बातें भी करने लगी थीं। लेकिन असल में तो जनरल सुभगा के लिए आते थे। एकबार सुभगा उनकी सेवा-सुश्रूषा कर चुकी थी। वही खयाल उन्हें सुभगा की देखभाल करने के लिए खींच लाता था। दूसरे, सुभगा के सान्निध्य में जनरल थोड़ी देर के लिए एमिली का अभाव भूल-से जाते थे। अभी उनकी

वह इकलौती बिटिया दूर मरी के पहाड़ों में बीमार पड़ी थी। और यह भी एक ऐसा कारण था जो जनरल को रोज़ नित्य-नैमिक कामों से निवृत्त होते ही बंगले की ओर खींच लाता था।

सुभगा भी उन्हें अपने वृद्ध पिता की तरह मानने और स्नेह करने लगी थी। इतने बड़े जनरल होते हुए भी उनकी विनम्रता, कृतज्ञता और परोपकारवृत्ति ने उसका मन जीत लिया था। सफेद मूछों वाला उनका पोपला मुँह और स्नेहपूर्ण आँखें किसी भी युवती के मन में उनके प्रति पिता की-सी श्रद्धा जाग्रत कर देती थीं। फिर सुभगा ने तो यह भी सुन रखा था कि जनरल ने शेखर की सार-सँभाल अपने सगे बेटे से भी अधिक की थी। जबसे उसने यह सुना था तबसे उसके हृदय से यह खयाल भी मिट गया था कि जनरल विदेशी हैं।

नारी पुरुष की तरह हर चीज़ को बुद्धि की कसौटी पर कसकर नहीं देखती। वह तो हर चीज़ का अनुभव हृदय द्वारा करती है। इसीलिये उसे निर्णय करने में देर नहीं लगती, और उसके निर्णय अधिक टिकाऊ और अधिक सही होते हैं। जिस वस्तु का सम्बन्ध सिर्फ हृदय से है उसे जब बुद्धि के द्वारा समझने का प्रयत्न किया जाता है तो उसका सारा सौन्दर्य ही नष्ट होजाता है। बुद्धिवादी के हाथ में उस समय प्याज के छिलकों की तरह 'फारमूला' के छिलके ही आते हैं। मानव मानव में भेद नहीं होना चाहिये, रंग, जाति और वर्ण के सब भेद निरर्थक और बनावटी हैं—यह सीधी-सादी बात समझने के लिए अधिकाँश पुरुषों को नृ-शास्त्र, विकासवाद, रुधिर-परीक्षण और समाज-विज्ञान की सहायता लेना पड़ती है। और फिर भी इनकी सहायता से समझी बात का अधिकाँश व्यक्ति अनुभव नहीं कर पाते। काँच की आँख गड्ढा भर देगी लेकिन देखना उसकी शक्ति से परे की बात है। यही फर्क बुद्धि अर्जित और हृदय अर्जित ज्ञान में है। नारी को यह बात समझने के लिए ज्ञान-विज्ञान की ऐसी खाक नहीं छानना पड़ती। वह तो पराये बालक को उठाते ही हृदय द्वारा इस बात को अच्छी तरह समझ

लेती है। यही कारण है कि ज्ञान-विज्ञान से सर्वथा अछूती अफ्रीका की हबशी औरत अपने ही घर के पुरुषों द्वारा तिरस्कृत गोरे आदमी को असहाय और विपन्न अवस्था में देखकर विह्वल होजाती और गाने लगती है।

नारी के हृदय को समझने की यही कुँजी है। सृष्टि की जननी नारी के मातृत्व की मंगल-साधना का बीज यही है।

सुभगा भी उसी नारी-सुलभ सहज चेतना द्वारा समझ गई थी कि जनरल को परदेशी समझा ही नहीं जासकता।

इसलिए जब-जब जनरल उससे मिलने आते वह खाने की कोई न कोई चीज़ बनाकर उनके आगे रखती और बिना खिलाये छोड़ती न थी। इस नियम में कोई व्यवधान नहीं होता था और स्वयं जनरल भी इसके इतने अभ्यस्त होगये थे कि सुभगा को लाने में देर होजाती या बातों में भूल जाती तो तुरत याद दिलाते—क्यों री, आज बूढ़े को कुछ खिलाना नहीं है?

'आज तो कुछ भी बना न सकी। माँ के कपड़े धोने में रह गई।'

'टुकड़ा-चुकड़ा जो कुछ हो, ले आ।' वह हँसकर कहते—अपनी रानी बिटिया के हाथ की प्रसादी पाये बिना मैं भूखा ही रह जाऊँगा।'

'तो ठहरो ज़रा देर। मैं अभी भजिये बना लाती हूँ।'

'भजिये? भजिये क्या?'

'बेसन को पानी में घोलते हैं; फिर नमक, मिर्च, मसाला आदि डालकर तेल में तलते हैं। भजिये बन जाते हैं।'

सुभगा समझाने का प्रयत्न करती, लेकिन जनरल की समझ में खाक-पत्थर कुछ न आता। वह कहते—बनाकर ही ले आ। तभी समझ में आयेगा।

फिर भजिये खाते समय अन्दर से आलू का टुकड़ा निकलता तो जनरल के आश्चर्य का ठिकाना न रह जाता।

'यह अन्दर कहाँ से आगया ?'

दूसरा भजिया उठाकर उसे चारों तरफ से उलट-पलटकर देखते और पूछते जाते थे–दरवाज़ा कहाँ है ? खिड़की कहाँ है ? किधर से गया ? कुछ भी तो नहीं दीखता। It's mystery !

जनरल के चेहरे पर बाल-सुलभ कुतूहल और सरल मुसकान देखकर देवकी भी हँस पड़ती थीं। और सुभगा के तो हँसते-हँसते पेट में बल ही पड़ जाते थे। आखिर सिगड़ी और कढ़ाई वहाँ लाकर सुभगा बेसन में आलू के चकते को लपेटकर भजिया बनाकर बतलाती थी। तब कहीं जनरल की समझ में आता था और वह कह उठते–Oh my Lord ! It is so simple– ओ, इसमें तो कुछ नहीं है !

कभी-कभी जनरल उन्हें शेखर की जीत की खबरें भी सुनाते थे। उस दिन काफी रात गये तक दोनो के पास बैठे शेखर की उदारता, वीरता और सदाचार की नयी और पुरानी बातें याद कर करके सुनाया करते थे। वह दिन देवकी और सुभगा के लिए परम उत्सव का होता था। उनका समस्त दुःख, क्लेश और दर्द मिट-सा जाता था। चारों ओर सुख का समुद्र लहराता-सा दिखलाई पड़ता था। उस समय देवकी कृतज्ञता पूर्वक जनरल से कहती–जनरल, मेरी एक ही भीख है और वह यह कि यदि मृत्युदण्ड दिया ही जाय तो तुम स्वयं अपने हाथों देना। तुम्हारे हाथों मरने में ज़रा भी कष्ट नहीं होगा।

देवकी और सुभगा यह तो अच्छी तरह से जानती थीं कि उनकी जान लेने के लिए ज़बर्दस्त खींचातानी चल रही है। मानों उनके प्राण अनमोल हों इसतरह दोनो ओर के लोग उन्हें बीच में कर पूरी शक्ति से लड़ रहे थे। जिस दिन से वे क़िले में लाई गई थीं उसी दिन से गोरे सैनिक उनका वध करने की माँग कर रहे थे। Revenge Kanpur की आवाज़ एक दिन भी बन्द नहीं हुई थी। बाग़ियों की जीत की खबरें जितनी ही अधिक

आने लगीं उतनी ही तेज़ Revenge Kanpur की आवाज़ भी उठने लगी थी। लेकिन उन सबके सामने सीना ताने वह बूढ़ा उदार-दिल जनरल खड़ा था। उसने हिमालय की-सी दृढ़ता से कह दिया था कि वह जल्लाद नहीं अंग्रेज़ी सेना का सेनापति है।

आज उनका आख़री सन्देशा लेकर जानसन आने वाला था। यदि आज अनुमति नहीं मिली तो संभव है कि वे जनरल को गिरफ़्तार कर अपनी मनमानी करें। बाग़ी सेना किसी भी घड़ी क़िले को सर कर सकती थी। बाग़ी सेना का अन्तिम हमला शुरू होने से पूर्व गोरे सैनिक आक्रमण के मूल उद्देश्य को ही नष्ट कर डालना चाहते थे। ऐसा करने का उन्होंने निश्चय भी कर लिया था। इसीलिए देवकी ने जनरल से कहा था कि मारना ही है तो अपने हाथों मारना ताकि दुर्गति न हो।

जानसन ने आकर जनरल को समझाना शुरू किया—जनरल, सिपाहियों ने काफी धैर्य दिखलाया है। अब आपको उनकी बात मानना चाहिये।

'जानसन, सिपाहियों ने मेरी आज्ञा का पालन किया यह अंग्रेज़ी अनुशासन के उपयुक्त ही है। लेकिन आज भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि वे अनुशासन का पालन नहीं करना चाहते तो भले ही मुझे बन्दी करलें।'

'लेकिन जनरल, ज़रा उनकी भावनाओं का भी तो खयाल कीजिये। उनमें से कइयों के दुधमुँह बालक कानपुर में भाले की नोक पर तड़प-तड़प कर मरे हैं।'

'उन बच्चों के लिए मैं भी खून के आँसू रोया हूँ और आज भी रोता हूँ। लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि मैं विश्वासघात करूँ और मुझ पर विश्वास कर आई हुई युवतियों का वध करने की अनुमति देदूँ।'

'इसमें विश्वास का सवाल ही कहाँ उठता है, जनरल? वे हमारी कैदी हैं। दूसरे, उनपर बग़ावत का इल्जाम भी है। यदि उनपर मुक़-

दमा चलाया गया तो गुनाह साबित होजायगा । यह देखिये, देवकी ने अपने ही दस्तखतों से यह नोटिस गाया किया था । इसमें आपके सिर के लिए दो हज़ार रुपए का इनाम जाहिर किया गया है ।'

उसने विज्ञप्ति डेनियल के आगे रखते हुए कहा—और सिपाही यही तो चाहते हैं कि उन्हें फौजी अदालत के सामने खड़ा किया जाय ।

'फौजी अदालत का ही कहते हो तो यह रही फौजी अदालत । उसमें तुम और मैं, हम दोनों ही तो हैं ।'

'मंजूर है । अच्छा बुलाइये अपराधियों को ।'

'देखो जानसन, मैं उन्हें वचन दे चुका हूं कि उनकी इज्जत-आबरू मेरे हाथों सुरक्षित रहेगी । तभी बिना किसी मुकाबले के वे मेरे साथ आने को तैयार होगई ।

'और यदि वे सामना करतीं तो ?'

'संभव है तुम्हारा जनरल यहाँ न होता ।' जनरल ने खिलखिलाकर कहा ।

'लेकिन हम उनकी इज्जत पर कहा हाथ डाल रहे हैं ? वह तो सुरक्षित है ही ।'

दोनों थोड़ी देरतक चुप रहे । फिर जनरल डेनियल ने गम्भीरता भङ्ग करते हुए कहा-मैं स्त्रियों को मृत्युदण्ड देने के पक्ष में नहीं हूं ।

'जनरल अगर औरत देवी होसकती है तो राक्षसी भी तो होसकती है। मेरी एण्टोइनेट......'

'वही तो मैं कह रहा हूँ मेरे भाई ! सवाल यह है कि ये औरतें 'मेरी' हैं या 'जॉन ऑफ आर्क हैं ?'

जानसन इसका कोई उत्तर न दे सका । डेनियल ने गम्भीरतापूर्वक कहना शुरू किया यदि जांच की जाय तो संभव है कि मेरी एण्टोइनेट को जो दण्ड दिया गया था वह हमीं को भुगतना पड़े । इस बगावत का मूल

कारण कौन है ? हम या ये ? ये बेचारे तो हमारे यहाँ आने से पहले सर्वथा निरुपद्रवी थे । शान्ति से अपना जीवन बिता रहे थे । इन्होंने हमें निमन्त्रण भी नहीं दिया था । हम ही ज़बर्दस्ती आ घुसे । इन्हें लालच देकर फँसा लिया । आपस में लड़ाया । इनमें फूट डाली और झूठ, फरेब तथा अन्याय का सहारा लेकर अपनी हुकूमत खड़ी करली । यदि हमारे सन्धिपत्रों की निष्पक्ष जाँच करवाई जाय तो ब्रह्मपुत्रा से सिन्ध नदी तक एक भी बीघा जमीन हमें नहीं मिल सकती । लेकिन छल-कपट से सारी धरती पर कब्जा करके भी हमें सन्तोष नहीं हुआ । हमने इनके धर्म, इनकी संस्कृति और इनकी समाज-व्यवस्था पर भी हमला बोल दिया । क्षण भर के लिए भी नहीं सोचा कि एक दिन ये उसका विरोध भी करेंगे । आज विरोध में हमारे खिलाफ उठ खड़े हुए हैं । हमारे जिन पापों को केवल हमारा अन्तःकरण जानता था आज उसे ये नगाड़े की चोट पुकार-पुकार कर कह रहे हैं । बतलाओ, इसमें बुराई ही क्या है ? कौनसा अन्याय कर रहे हैं ये ? जमीन इनकी है, देश इनका है । यहाँ के जङ्गल साफ कर बस्ती इन्होंने बसाई । खेत इन्होंने जोते-बोये । नदियों की धाराओं को इन्होंने बाँधा और मोड़ा । यहाँ की धरती पर इन्होंने मन्दिर और मदरसे खड़े किये, अपने पूर्वजों के कीर्तिस्तम्भ बनाये । और आज हम दूर देश से आकर उनके घर के मालिक बन बैठे हैं ! उनसे उनका सर्वस्व छीने ले रहे हैं और यदि वे मुकाबला करते हैं तो बुरा क्या है ? आज दिन तक मैं इस तरह की बात जबान पर नहीं लाया था क्योंकि कोई ज़रूरत नहीं थी । वे चुप लगाये अत्याचारों को बर्दाश्त कर रहे थे । परन्तु आज यह कहे बिना कोई चारा नहीं कि सोलहवें लुई और मेरी एण्टोइनेट वे नहीं हम हैं । यदि उनकी तुलना करना ही है तो क्रायवेल और जॉन ऑव आर्क से करना होगी । हम एक 'जॉन ऑफ आर्क' को जिन्दा जला चुके हैं । अब इस दूसरी को तो जीवित रहने दें, नहीं तो मुँह में वह कालिमा लगेगी कि सदियों तक अपना चेहरा दुनिया वालों के सामने नहीं कर सकेंगे ।

जानसन मुँह बाये जनरल की बात सुनता रहा। जनरल के मुँह से खरी-खरी सुनने की तो उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। जनरल ने तो सारी बाजी ही उलट दी थी। जानसन भी इन सभी बातों को जानता था। मन ही मन उनके तर्क को स्वीकार भी करता था। लेकिन एक अंग्रेज़ के मुँह से ऐसी खरी बात सुनना उसके लिए अनहोनी घटना थी। एक अंग्रेज़ जो कम्पनी का नौकर था, इस तरह की बात अपने मुँह पर ला ही कैसे सकता था? ज़रा सोचने की बात थी। माना कि कम्पनी ने अत्याचार किये हैं, और कर रही है; परन्तु है तो वह अंग्रेज़ों की ही। दुःख-संकट में उसका और अपने देश भाइयों का संरक्षण करना क्या कम्पनी के अंग्रेज़ नौकरों का कर्तव्य नहीं था? और जहाँतक हिन्दुस्तानियों की आज़ादी का सवाल है यदि अंग्रेज़ों ने उन्हें गुलाम न बनाया होता तो और किसी ने बनाया होता। फिर अंग्रेज़ सरकार उनके आराम का भी तो पूरा-पूरा खयाल रख रही थी। देश में अदालतें थीं; डाक, तार और रेलें थीं; पुलिस पलटन का माकूल इन्तजाम था। मदरसे खुल रहे थे। और क्या चाहिये था? फिर कानपुर में जो क़त्लेआम हुआ क्या उसका कोई हिसाब ही नहीं? उसका क्या जवाब था जनरल के पास? ऐसा अत्याचार करने वालों को तो जिंदा ही जला देना चाहिये। उन्हें क्या हक़ है हमसे सवाल पूछने का? लेकिन जनरल की धृष्टता तो देखो! अंग्रेज़ बच्चा होकर भी हद कर दी है इसने!

जानसन ने पूछा—और कानपुर में जो क़त्लेआम हुआ उसका क्या?

'उसके लिए इनमें से एक भी जवाबदार नहीं है। उसकी सारी जवाबदारी तो तात्याटोपी और नानासाहब पर है। उन्हीं को पकड़कर फाँसी चढ़ाओ। म्लेच्छों के क़त्लेआम के लिए यदि कोई समूची अंग्रेज़ जाति को फाँसी लटकाना चाहे तो हम उसे पागलखाने ही भेजेंगे न?' डेनियल ने मुस्कराकर जानसन का हाथ अपने हाथ में ले लिया और बोलते चले गये—जानसन, ब्रिटेन के लिये मेरे दिल में भी ममता है। मैं भी चाहता हूँ कि

इङ्गलैण्ड की कीर्ति दिगन्त व्यापिनी हो। लेकिन जान ऑफ आर्क-सी देश-सेविकाओं के खून से हाथ रंगकर तो हमारा अपयश ही फैलेगा, मुझे इसका पूरा विश्वास है।

'इसका तो यह मतलब हुआ कि बागियों का मुक़ाबला ही न किया जाय। मुल्क उनके हवाले कर चुपचाप चलते बनें।'

'उचित तो यही होता लेकिन ऐसा करने का साहस हम में नहीं है। जिस दिन कर सकेंगे हमारे पाप धुल जाएँगे। लेकिन आज इतना तो कर ही सकते हैं कि अपने पाप को बढ़ने न दें। सही रास्ता तो यही है कि क़िला देवकी के हवाले कर हम चले जायें। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो कम से कम उसकी हत्या का अपराध तो अपने सिर न चढ़ने दें।'

'जनरल, आपके जितना दर्शन-शास्त्र तो मैंने पढ़ा नहीं है। मैं तो कम्पनी का एक साधारण सिपाही हूँ और सिर्फ़ यह जानता हूँ कि कम्पनी ने मुझे यह क़िला सौंपा है। इसकी हिफ़ाजत करने का दायित्व मुझ पर है।'

'मुझे तुम्हारी बात मंज़ूर है। सिर्फ़ इतना और कहना चाहता हूँ कि क़िला तुम्हें नहीं मुझे सौंपा गया है। तुम्हारा काम सिर्फ़ मेरी आज्ञा का पालन करना है।' जनरल ने ज़रा कड़ाई के साथ कहा।

'माफ़ कीजियेगा। मुझसे ग़लती होगई।'

'क़िले की हिफ़ाजत करने की जवाबदारी मेरी है।'

'और हिफ़ाजत करने में ऐसों की हत्या भी करना पड़ेगी।'

'जब करना पड़ेगी तब देखूँगा। अभी तो ऐसी कोई ज़रूरत नहीं मालूम पड़ती।'

'बे अदबी माफ़ हो लेकिन मुझे दो के सिवा तीसरा रास्ता नहीं दिखलाई पड़ रहा है। या तो हम क़िला छोड़कर चल दें या दुश्मन का कोई भी आदमी, चाहे औरत हो चाहे बच्चा, जो हमारे कब्ज़े में है उसे

मार डालें। यदि अन्याय करना ही है तो दिल को कमज़ोर बनाये रख काँपते हाथों से नहीं कर सकेंगे। दार्शनिकता और सिपाहीगिरी साथ-साथ नहीं निभ सकती।'

'तुम्हारी अन्तिम राय क्या है?'

'मैं तो मारने के पक्ष में हूँ। ऐसे बाग़ियों को यों ही छोड़ने के बदले राज्य छोड़कर चले जाना ज्यादा अच्छा है। लेकिन यह सब सोचने-विचारने का काम मेरा नहीं, कम्पनी का है। मैं तो सिर्फ उसकी खिदमत करने और उसकी रियासत की हिफ़ाजत करने के लिए नौकर रखा गया हूँ। मेरा काम कम्पनी के डाइरेक्टरों और गर्वनर जनरल के कामों का लेखा-जोखा लेने या उचित-अनुचित देखने का नहीं है।

'मैं तो...'

उसी समय पहरेदार ने आकर कहा—श्रीमती पोलक आप से मिलने आई हैं। अभी हाल मिलने की अनुमति चाहती हैं।

दुबली-पतली और बीमार-सी लगती श्रीमती पोलक ने अन्दर आकर जनरल और जानसन से हाथ मिलाया।

'आपकी तबियत कैसी है? और आप कैसे छूटकर आ सकीं?' जानसन ने पूछा।

'मैं छूटकर नहीं आई हूँ। एक सन्देशा लेकर आई हूँ और मुझे वापिस लौट जाना है।'

'वापिस लौट जाना है? क्या कह रही हैं आप? बाग़ियों के कैदखाने में क्या लौटकर मरने जाएँगी?' जानसन आवेश में आकर खड़ा हो गया था।

'लौटकर जाना है क्योंकि वचन दे आई हूँ। एक अंग्रेज महिला को अपना वचन तो निभाना ही होगा।'

'उन्होंने आपका जो विश्वास किया वह उनके उपयुक्त ही है।' जनरल ने पहली मर्तबा बातचीत में हिस्सा लेते हुए कहा।

'उन बदमाशों के साथ वचन कैसा और विश्वास कहाँ का?'

'बदमाश किस जाति में नहीं होते? हममें भी तो मि. कूपर जैसे बदमाश लोग हैं; फिर किसी को दोष देने से क्या फायदा? लेकिन मैं राजनैतिक चर्चा के लिए नहीं आई हूँ। मैं तो अपने पांचसौ कैदियों की ओर से एक प्रार्थना करने आई हूँ।'

'कहिये।'

'आपने देवकी और सुभगा का वध करने की जो विज्ञप्ति बाग़ी सेना के नाम निकाली है वह हमें ज़रा भी अच्छी नहीं लगी। वह सारी अंग्रेज़ जाति की शान में बट्टा लगाने वाली है। वहाँ उन लोगों ने हमें जिस तरह रखा है उसकी तो आप कल्पना भी नहीं कर सकते। शायद आप मेरी बात पर यकीन न करें लेकिन मैं जो कुछ कहने जारही हूँ उसका एक-एक शब्द सच है। मैं बीमार होगई थी। मेरे पास बिस्तरा नहीं था। बाग़ी सैनिकों के पास भी नहीं था। वे लोग देहातियों से कुछ भी छीनकर या बेगार में नहीं लेते। हाँ तो, मुझे ज़ोर का बुखार चढ़ रहा था। धरती पर पड़ी तड़प रही थी। किसी तरह राजशेखर को पता लग गया कि एक अंग्रेज़ महिला बीमार है और बिस्तरा नहीं है। उसने झट अपना बिस्तरा मेरे लिए भेज दिया।'

'सच?' जनरल ने कहा।

'बिलकुल सच। आज भी वह बिस्तरा मेरे पास ही है। राजशेखर तो साक्षात् देवता है। उसने सदा हमारे आराम का ख़याल रखा है। पहले हमें खिलाकर तब स्वयं खाता है। किसी को तू-तुकारे से नहीं बुलाता। तात्या हमारा कोर्टमार्शल करना चाहता है लेकिन राजशेखर ने

इन्कार कर दिया। वह हमारे बच्चों के साथ खेलता है। बच्चों को खाने की चीज़ें और सिक्के देता है। घायलों की मरहम-पट्टी करता है। यह सब मैं इसलिए कहने आई हूँ कि संभवतः यहाँ गढ़ी में बन्द रहने के कारण तुम्हें इसकी कोई जानकारी न हो और तुम आवेश में आकर कुछ ऐसा कर बैठो जिससे हमारे नाम को बट्टा लगे और दुनिया को कहने का मौका मिल जाय कि देखो; सज्जनता और सभ्यता में भी काले हिन्दुस्तानी गोरे अंग्रेज़ों से बढ़े-चढ़े हैं।'

'इस विकट प्रसङ्ग में भी ब्रिटिश सज्जनता की इतनी चिन्ता करने के लिए श्रीमतीजी, मैं आपको बधाई देता और आपका अभिवादन करता हूँ।' जनरल ने कहा।

'देखिये राजनीति में मेरी विशेष गति तो नहीं है फिर भी जितना समझती हूँ उसके आधार पर कहती हूँ कि राजनीति में उदारता से अधिक प्रभावशाली अस्त्र दूसरा नहीं है। इससे अधिक मुझे और कुछ कहना नहीं है। आपका समय लेने और काम का हर्ज करने के लिए क्षमा माँगती हूँ।' और श्रीमती पोलक चलने को हुईं।

'यदि जाते-जाते अपनी हालत और वहाँ के व्यवहार के सम्बन्ध में सार्जेण्टों को बतलाती जायेंगी तो बड़ा काम होगा।'

'बड़ी खुशी से।' कहकर वह चली गईं।

जानसन अभीतक चुप बैठा था। अब वह बोला—लेकिन आपने अपनी राय तो बतलाई नहीं?

मैं उन्हें क़ैद रखने के पक्ष में हूँ। विद्रोह दबाये जाने के बाद पार्लियामेण्ट से उनके सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार करूँगा।'

'उन्हें जिन्दा रखकर हम ज़बर्दस्त खतरा मोल ले रहे हैं।'

'उन्हें मार डालने की अपेक्षा वह खतरा कम ही है।'

'अच्छा यही कीजिये। आप जीते और मैं हारा। लेकिन एक शर्त तो मंजूर करना ही पड़ेगी। उन्हें आप अपने बंगले में नहीं रख सकते। बुर्ज में रखिये। सार्जेण्टों को और मुझे भी डर है कि वे राजशेखर की तरह भाग जाएँगी।'

'अच्छा, ऐसा ही करूँगा।'

जानसन ने जाते-जाते कहा—मेरे खयाल में ऐसा करके आप और ब्रिटिश राष्ट्र के साथ बुरा कर रहे हैं।

१७

रात होगई थी। बाग़ी फौज ने गढ़ी पर आक्रमण करने की सब तैयारियाँ करली थीं। गोला-बारूद बाँटा जाचुका था। टूटी और बेकाम तलवारों और संगीनों के बदले नयी तलवारें और संगीने दी जाचुकी थीं। कल होने वाले घमासान युद्ध और उसमें अपने मरने-जीने की चिन्ता को भुलाये बाग़ी सैनिक लेटे या बैठे हुए रामायण और महाभारत की कथा सुन रहे थे। शेखर और तात्यासाहब दोनो ही आगये थे। सवेरे बमबारी कर गढ़ी के उस बुर्ज में जहाँ प्रवेश द्वार था। एक बड़ा-सा छेद कर दिया गया था। पहरेदार वहाँ से पचास गज़ के फासले पर खड़े पहरा दे रहे थे। वे इस बात की ताक में थे कि कोई मरम्मत के लिए आये और हमला शुरू किया जासके।

शेखर एक ओर सबसे अलग चहल-कदमी कर रहा था। कल या तो माँ और सुभगा से भेंट होगी या वह वीरगति को प्राप्त होगा। लेकिन क्या माँ और सुभगा बच जाएँगी ? क्या वह और मुक्तिसेना उन्हें बचा सकेगी ? क़िला हथियाने जाकर कहीं उन्हें गँवा तो नहीं देना होगा ? क्या उन्हें किसी भी तरह नहीं बचाया जासकता ? अपना बलिदान देकर भी नहीं ?

वह यही सब सोच रहा था कि सोहनसिंह ने आकर प्रणाम किया और बोले—एक प्रार्थना है।

'कहिये।'

'कल अगली कतार में मुझे और करतार को रहने की इजाजत दीजिये।'

'आगे तो मैं रहूँगा।'

'हमें भी साथ रखिये।'

'करतार साथ रहेगा। आप पिछली पाँतों का नेतृत्व करेंगे। सीढ़ियाँ आगईं?'

'नहीं। अभी खबर मिली है कि पोलक ने उन्हें रास्ते में ही छीनकर जला दिया।'

'कल भीषण मार-काट होगी।' राजशेखर ने चहल-कदमी करते हुए कहा?'

'और रास्ता ही क्या है?'

'एक रास्ता है तो सही।'

शेखर गढ़ी के सामने वाली अन्तिम चौकी तक गया और नरसिंहा बजाने वाले से कहा—ऊपर गढ़ी के बुर्ज में जो चौकीदार है उसे बुला।

नरसिंहा बजा और उसके प्रत्युत्तर में ऊपर से गूँजती हुई आवाज़ आई—बोलो!

राजशेखर एक ऊंचे टीले पर खड़ा होगया और ज़ोर से बोला—कौन है?

'मैं कप्तान मूरहेड। तू कौन है?'

'मैं मुक्तिसेना का सेनापति।'

'भगोड़ा राजशेखर? पहचानता हूँ तुझे। बोल।'

'जनरल डेनियल के लिए एक सन्देशा है।'

'बोल।'

'तुम सिर्फ इक्कीस आदमी हो और हम पाँचहजार हैं। एक के मुक़ाबले में पूरे ढाईसौ आदमी हैं। तुम बचकर नहीं जासकते। क्यों व्यर्थ

ही रक्तपात किया जाय? तुम अब भी बच सकते हो। अपने देश से दूर इस पराये मुल्क में तुम यों मरो यह मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'बचने का तरीका?'

'कैदियों की अदला-बदली करलो। हमारी दोनों महिलाएँ हमें सौंप दो। हम तुम्हारे सब आदमियों को छोड़ देंगे।'

'फिर?'

'दो को छोड़कर बाकी सब यहाँ से जासकोगे।'

'दो कौन?'

'जनरल डेनियल और कर्नल जानसन।'

'चुप रह। हमें विश्वासघात करने को कहता है?'

'पहले मेरी पूरी बात सुनलो। बदले में मुझे लेलो। मैं राजशेखर मुक्तिसेना का सेनापति अपने मुँह से कह रहा हूँ। बेकार की मारकाट और खूनखराबी से कोई फायदा नहीं होगा। तुम में से एक भी बचने का नहीं। अपना न सही, अपने बाल-बच्चों का तो खयाल करो। मुझे उन पर दया आती है इसीलिए यह प्रस्ताव लेकर आया हूँ।'

'तेरा उपदेश नहीं चाहिये।'

'दो आदमी अधिक नहीं होते। और बदले में मुझे लेलो।'

'चला आ! तुझे जीता ही आग में जलाएँगे।' व्यङ्गपूर्ण स्वर में उत्तर आया।

'तो बोलो; मंजूर है?'

'क्यों लुभाता है हमें? हम कर्नल और जनरल को सौंप दें और अपनी जान बचाएँ? यह तू कह रहा है हमें? पर गद्दार और क्या कहेगा?'

'मैंने अपनी शर्तें तुम्हें सुना दीं। दो आदमियों को छोड़कर तुम बाक़ी सबके सब जासकोगे। हमारे दो क़ैदी और क़िला हमारे हवाले करदो और मुक्ति लेलो। यदि यह मंजूर नहीं है तो कल सवेरे क़िला तोड़ा जायगा और तुम मारे जाओगे।'

'पर पहले तेरी मां का सिर धड़ से जुदा कर दिया जायगा?'

'बोलो, मेरी बात का जवाब 'हाँ' है या 'ना'।'

'एकबार नहीं; हजारबार ना। चला जा यहाँ से।'

'एक दूसरी शर्त है।' इसबार जानसन की आवाज़ सुनाई दी

'कौनसी?'

'हम जनरल को सौंपते हैं, तुम तात्या को सौंप दो।'

'तात्यासाहब को सौंप दें! उनतक पहुँचने से पहले तो तुम्हारे जैसे कई सिर भूलुण्ठित होंगे।'

'तो हमें पकड़ने से पहले तेरी मां का सिर भी धड़ से जुदा होगया रहेगा।' मूरहेड का विषैला स्वर सुनाई दिया।

'दूध पिलानेवाली माँ का लेकिन अन्न देनेवाली मां का नहीं।' शेखर के पीछे खड़े सोहनसिंह ने धीरे से कहा।

१८

सवेरे सूर्य ने उगकर गढ़ी के आगे जो कुछ देखा वह अत्यन्त ही भयङ्कर था। बुर्ज के अन्दर जो छेद होगया था उसमें घमासान लड़ाई होरही थी। बाग़ी सेना के सिपाही घायलों और मुर्दों पर होकर पागल की तरह उस छेद में घुसे चले जारहे थे। छेद से खून के परनाले-से बहने लगे थे। अन्दर घायलों की चीखें गूँज रही थीं। मुक्तिसेना के पास सैन्यबल अधिक था तो गढ़ीवाले गोरे सैनिकों की मोर्चेबन्दी ज्यादा अच्छी थी। ठेठ कमरे तक न तो तोपें लाई जासकती थीं और न घोड़े ही सीढ़ियाँ चढ़ सकते थे। सूराख़ की राह कमरे के अन्दर पहुँच जाने के बाद तो बन्दूक का निशाना लेने की भी जगह नहीं थी। वहाँ तो केवल आमने-सामने की लड़ाई लड़ी जासकती थी। युद्ध के कोलाहल में दुश्मन और दोस्त का खयाल रख पाना भी मुश्किल था। शेखर पहली ही पाँत में अन्दर पहुँच गया था। उसकी तलवार बिजली की तरह कौंध रही थी। अचानक एक ज़ोर का धक्का लगा और वह किसी कोने में जा टकराया। पीछे मुड़कर देखा तो तात्यासाहब को खड़ा पाया।

'आप यहाँ क्यों आये ?'

'लड़ाई देखने।'

'मेहरबानी कर यहाँ से चले जाइये। यह जगह आपके लिए नहीं है।' अभी शेखर की बात भी पूरी नहीं हो पाई थी कि एक गोली सन-सनाती हुई दोनों के बीच से निकल गई। शेखर ने धक्का देकर तात्या-

साहब को बाहर कर दिया और करतार को ढूँढ़ने लगा; लेकिन वह दिखा नहीं। दुश्मन पीछे हटते हुए दूसरी मंजिल पर जारहे थे। शेखर फिर आगे बढ़ा।

उस समय सोहनसिंह अन्तिम पांत में खड़े कमरे के अन्दर और बाहर होरही घमासान लड़ाई को देख रहे थे। अभी अन्दर जाने की उनकी बारी आने में काफी देर थी। तबतक हाथ पर हाथ धरे बैठ रहना उन्हें अच्छा न लगा। झट से एक विचार दिमाग़ में आया और वह अपने सामने की पाँतों को धक्का-मुक्की करते बुर्ज की ओर बढ़ चले। बमबारी से बुर्ज का जो हिस्सा टूट गया था उसकी दरार ऊपर की ओर बढ़ती हुई पच्चीसेक हाथ चली गई थी। वहाँ से दूसरे मजले की खिड़की सिर्फ दो हाथ रह जाती थी। बमबारी की धमक से खिड़की की दो सलाखें भी निकल गई थीं। सोहनसिंह ने जूते निकाले, तलवार मुँह में पकड़ी, दो तमञ्चे कमर में खोंसे और संगीन वाली बन्दूक को नीचे ही छोड़ दिया। फिर दिवाल से चिपककर दरार के सहारे बन्दर की तरह ऊपर को चढ़ने लगे। बीसेक हाथ चढ़ने के बाद उनके हाथ-पाँव काँपने लगे। कपाल पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। दम भर आया। परन्तु दाँतों को ज़ोर से भींचे वह बिना रुके चढ़ते ही गये। आखिर खिड़की के नज़दीक पहुँच गये। हाथ बढ़ाकर खिड़की की सलाख पकड़ी और एकक्षण सुस्ताकर दूसरे हाथ से सलाख पकड़ खिड़की में चढ़ने के लिए बदन तोलने लगे।

ठीक उसी समय खिड़की में एक बेडौल चेहरा दिखलाई दिया। उसकी एक आँख निकल आई थी। जबड़ा टूट गया था। एक हाथ नदारद था। उस विकलाङ्ग ने बिना कुछ बोले-चाले सोहनसिंह के मुँह से तलवार छुड़ाली और कमर से दोनों तमञ्चे भी निकाल लिये।

अब सोहनसिंह बिलकुल निहत्थे थे। जमीन पच्चीस हाथ नीचे थी और कूदकर जीते बचना असम्भव था। दोनों तमञ्चे एक ही हाथ में लिये रहने

के कारण उनका प्रतिद्वन्दी फेर भी नहीं कर सकता था। एक हाथ से सलाखें पकड़े सोहनसिंह ने दूसरे हाथ को खाली किया और उचककर उसके मुँह पर वह हाथ मारा कि वह ज़ोर से चिल्लाता हुआ पीछे खिसक गया। सोहनसिंह झट से अन्दर कूद गये और हाँफते हुए बोले–अरे भूतनी के, अब चला गोली!

सनसनाती हुई एक गोली उनके कान के पास से निकल गई। वह सँभले-सँभले तबतक दूसरी गोली आई और कान का आधा हिस्सा उड़ाती चली गई। अब रुके रहना घातक होता। उन्होंने लपककर नीचे पड़ी तल-वार उठाली और उस विकलाङ्ग के सामने पहुँच गये। एक हाथ से उसका जबड़ा एंठते हुए ललकारा–कौन है तू, शैतान के बच्चे? और किसने तेरी यह गत की?

विकलाङ्ग ने मारे दर्द के चीखते हुए कहा– मूरहेड......

'तुझ जैसे मुर्दे को मारकर मैं अपने हाथ अपवित्र नहीं करूँगा।' यह कहकर उन्होंने हाथ का एक ज़ोर का झपट्टा मारकर उसे कोने में फेंक दिया। वह वहीं बेहोश होकर पड़ रहा। अब सोहनसिंह ने कमर में हाथ डालकर देखा तो दोनो तमञ्चे नदारद थे। 'अरे भूतनी के, तूने तो मेरे हथियार भी लेलिये और दोनो गोलियाँ भी खतम करदीं। अब मैं क्या करूँ?' उन्होंने चारों ओर निगाह डाली। एक बड़ी-सी मेज़ पर राइफलें रिवाल्वर और लम्बी नली वाली बन्दूकें रखी थीं।

उन्हें देखकर सोहनसिंह ने हर्षित होकर किकियारी की। जानसन ने ऊपर की मंजिल से लड़ने के लिए यह सब तैयारी पहले ही करवा रखी थी।

एक लम्बी नली की बन्दूक उठाकर सोहनसिंह ने सीढ़ियों पर खड़े रहकर ज़ोर का धड़ाका किया। फिर रिवाल्वरों और राइफलों से गोलियों की झड़ी लगा दी। इक्कीस फिरंगियों में से जो लड़ते-लड़ते शेष बचे थे वे इस अप्रत्याशित आक्रमण से घबरा गये और डरे हुए खरगोशों की तरह पहली मंजिल से निकलकर गढ़ी के मैदान की ओर भागे। उन सब के पीछे

जनरल डेनियल थे। वे बिना किसी घबराहट के दृढ़तापूर्वक मैदान की ओर लेजाने वाले फाटक की ओर चले जारहे थे। अपने पुराने जनरल को सामने देखकर सोहनसिंह क्षणभर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़-से रह गये और उधर जनरल डेनियल ने उनके संभलने से पहले ही दरवाज़ा बाहर से बन्द कर दिया। तुरत सार्जेंट लोग कोई भारीभरकम-सी चीज़ लुढ़काते हुए लाये और दरवाज़े से सटाकर रखदी। सोहनसिंह ने ऊपर चढ़कर देखा तो दरवाज़े के आगे पानी भरने की लोहे की टंकी रखी गई थी और एक सार्जेंट नीचे झुककर उसमें पत्थर के टेकन लगा रहा था। इक्कीस में से कुल चार आदमी बचे थे। जानसन के कन्धे में गोली लगी थी। वह जनरल और एक टामी के कन्धे पर हाथ रखे चल रहा था। डेनियल के सिर में संगीन का एक घाव लगा था। उससे खून बह रहा था और कपड़े तर होगये थे। उनके हाथ में एक लम्बी तलवार थी। वे तीनों आदमी बंगले की ओर चले जारहे थे। टंकी के नीचे टेकन लगाने वाले ने अपना काम पूरा कर ज़ोर से कहा—अब चले आना तुम लोग इत्मिनान से। इतना कहकर उसने ऊपर की ओर देखा और खिड़की में सोहनसिंह का सिर देखकर गोली चलाई। गोली से खिड़की का कठड़ा टूटकर उसके सिर पर जा गिरा और वह टॉमी उसी के नीचे दबकर मर गया।

सोहनसिंह ने नीचे आकर देखा तो लड़ाई अभीतक जारी थी। बचे-खुचे टामी बुझने वाले दीये की तरह टिमटिमा रहे थे। जनरल छिपने के लिए सुरक्षित जगह पा जायें तबतक आक्रमणकारियों को ऊपर आने से रोके रहने का उनका उद्देश्य था। सोहनसिंह सीढ़ियों पर बैठे छुट-पुट गोलियां चलाते रहे। आखिर लड़ाई का अन्त आ-लगा। 'अरे, यह तो मैं हरनामसिंह हूँ, मैं रामरतन; इधर तो एक भी फिरंगी नहीं है। गोलियाँ हमें ही चाट जाएँगी। बन्द करो! बन्द करो!' आवाजें आने लगीं। एक भी टामी खड़ा नहीं दिखलाई दिया। कमरे के अन्धेरे में अन्दर ही अन्दर तलवार शपाक्-शपाक् कर रही थी।

उस कमरे का दृश्य ऐसा भयावना था कि कड़ी से कड़ी छाती वाले के भी रोंगटे खड़े होजाते थे। घायल सिपाही कराह रहे थे। पाँव के नीचे कुचले जाने वाले असह्य वेदना से चीख़ रहे थे। कटे सिर और धड़ पड़े थे और लहू-माँस की कीचड़ होरही थी। जीवित और चल-फिर सकने वाले घायल एक दूसरे का सहारा लिये बाहर जारहे थे।

शेखर ने ऊपर आकर कुल्हाड़ों से किवाड़ तुड़वाना शुरू किया। लेकिन दुहरी चादरों के किवाड़ों को तोड़ना आसान काम नहीं था। कुल्हाड़े जैसे पत्थर पर बज रहे थे। कुछ सैनिक ऊपर बैठे देख रहे थे कि दरवाज़े के उस ओर कोई छिपकर तो नहीं बैठा है। अन्धेरा होरहा था। शेखर ने मशालें जलाने की आज्ञा दी। वह और करतार नंगी तलवारें लिये उस ओर कूदने को तैयार खड़े थे। शेखर का शिरस्त्राण कहीं उड़ गया था। उसकी जाँघ में बल्लम का फल घुस जाने से छोटा-सा घाव होगया था। करतार अक्षत था।

'जल्दी करो, जल्दी करो!' शेखर अधीर होकर चिल्ला रहा था। उसके लिए एक-एक पल भारी होरही थी।

आखिर किवाड़े टूटकर नीचे जा गिरे और सिपाही 'ज़ोर लगाओ हैयाँ, हैयाँ; हाँ-हाँ हैयाँ' करते हुए पानी की भारी-भरकम टंकी को खिसकाने लगे। उसी समय ऊपर की मंजिल में बैठे हुए सिपाहियों ने ज़ोर से चिल्ला-कर कहा—आग लगी है, आग!

शेखर, सोहनसिंह और करतार दौड़ते हुए ऊपर गये और खिड़की से देखने लगे। सामने के बारूद खाने वाले बुर्ज में जहाँ इन दिनों जनरल का पुस्तकालय था, आग लगी थी। अन्धेरे में सारा बुर्ज आग की लपलपाती लपटों में खड़ा जल रहा था।

'नीच! हत्यारे!! खूनी!!!' करतार ने दाँत पीसते हुए कहा। सोहनसिंह हाथ मलते हुए नीचे दौड़े आये।

'जल्दी करो! जल्दी करो!' उन्होंने टैंकी खिसकाने वाले सैनिकों की मदद के लिए स्वयं अपना कन्धा लगाया और उसी क्षण भारीभरकम टैंकी उलटकर उस ओर जा गिरी।

पागल की तरह 'देवकी, माँ देवकी! सुभगा, बेटी सुभगा!!' चीखते-चिल्लाते बूढ़े सोहनसिंह बुर्ज की ओर दौड़े। उनके पीछे करतार लपका और करतार के पीछे ठोकरें खाता और शराबी की तरह लड़खड़ाता हुआ शेखर भागा। उसकी आँखों के आगे अन्धेरा छारहा था। उसने जाकर देखा तो पुल के इस्पाती दरवाज़े पर बूढ़े सरदारजी 'देवकी, माँ देवकी! सुभगा, बेटी सुभगा!' की रट लगाये अपना सिर टकरा रहे थे। एक ओर घायल मूरहेड हवा में नाचती लपटों को देखकर हँस रहा था। उसने अपने वादे के अनुसार आग लगादी थी। लेकिन उसकी ओर ध्यान देने का उस समय किसी के पास वक्त नहीं था। सबके सब पुल पर खड़े चटखनी हुई आग की लपटों को और पसीने में तरबतर होकर दरवाज़ा तोड़ने वाले सिपाहियों को देख रहे थे। इस्पाती दरवाज़ों पर घन बज रहा था। और हर सैनिक के हृदय की धड़कन उसके साथ ताल दे रही थी। थके सैनिकों की जगह नये सैनिक ले लेते थे। और हर नये सैनिक को ऐसा लगता था कि उसकी बलिष्ठ भुजाएँ किवाड़ों के परखचे उड़ा देंगी और महारानी साहिबा तथा सुभगादेवी को बचाने का यश उसे मिलेगा।

लेकिन सैनिकों का मनोरथ पूरा न हुआ। उनकी शुभ कामनाओं से भी अधिक मज़बूत इस्पात का वह दरवाज़ा था। घन टूट गये। घन चलाने वालों के हाथ में फफोले पड़ गये। लेकिन दरवाज़ा न टूटा।

आग लगने की खबर सुनते ही तात्यासाहब भी आपहुँचे थे और चिल्ला रहे थे—सीढ़ी लाओ! सीढ़ी लाओ! लेकिन बुर्ज की खिड़की तक पहुँचने के लिए पचहत्तर फुट ऊँची सीढ़ी कहाँ मिलती?

करतार छिपकली की तरह बुर्ज की दीवाल पर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन दीवाल बिलकुल सीधी और पालिश की तरह चिकनी थी।

कुछ सिपाही इस आशा में तम्बूक्लाथ ताने खड़े थे कि तीसरे मजले की खिड़की में कोई दिख गया तो कूदने के लिए कहेंगे। अब आग की लपटें दूसरे मजले तक पहुँच गई थीं। महारानीजी और सुभगा अपनी पुकार सुनकर छोटे से रोशनदान की राह कमलनाल-से अपने दोनों हाथ बाहर निकालकर नीचे खड़े लोगों को नमस्कार कर लेती थीं।

शेखर कुएँ की जगत के पास संज्ञा-शून्य-सा स्तब्ध खड़ा था। नियति उसके साथ यह कैसा क्रूर व्यङ्ग कर रही थी? अन्तिम घड़ीतक उसे आशा बंधाये रख अब उसपर यह कैसा वज्रप्रहार किया जारहा था? उसके जीवनसर्वस्व को आग में भस्मीभूत कर भाग्य का देवता उसकी जीत के साथ बड़ा ही निष्ठुर व्यङ्ग कर रहा था। पता नहीं उसे उसके कौन से पाप का बदला दिया जारहा था? माथे पर विजय का मुकुट बाँधे वह अपने प्रियजनों से मिलने के लिए उत्सुक दौड़ा चला आरहा था। माँ और सुभगा को फिरंगियों की कैद से छुड़ाने की खुशी ने उसे धन्य कर दिया था। उसका जीवन सार्थक होगया था। वह बछड़े की तरह रँभाता माँ के थन में मुँह डालने के लिए दौड़ा चला आरहा था कि ठीक उसी समय नियति ने आकर उसका पथ रोक दिया। और उसने पाया कि वह कितना असहाय और परतन्त्र है! मुक्तिसेना का वीर सेनानी, फिरंगियों का काल, विजयश्री का लाड़ला शेखर नियति के सामने सिर झुकाये विवश खड़ा था। उसके शस्त्रास्त्र, उसकी समूची मुक्तिसेना और उसका बल-शौर्य अपने प्रियजनों को अग्नि की निर्दय लपटों से बचाने में असमर्थ था।

वह इन्हीं विचारों में लीन था कि हवा का एक झोंका आया और लपट को एक ओर उड़ा लेगया। छोटे से उजालदान की राह उसने दो नन्हें-नन्हें हाथों को अपनी दिशा में नमस्कार करते देखा।

उसकी आँखों में अन्धेरा छागया। बरबस मुँह से चीख निकली—सुभगा! करतार ने यदि दौड़कर उसे सँभाल न लिया होता तो वह नीचे ही गिर पड़ता। शेखर की यह दशा देखकर करतार की आँखों में भी आँसू आगये।

उसने मोहनसिंह की ओर अँगुली उठाकर कहा—कुँवर साहब, ज़रा बाबा को तो देखिये।

उस आधी घड़ी में ही सोहनसिंह अस्सी बरस बूढ़े होगये थे। चेहरे का सारा खून सूख गया था और झुर्रियाँ पड़ गई थीं। गरुड़-सी तेज़ आँखें निस्तेज होकर गड्हे में धँस गई थीं। दरवाज़े पर सिर पटकते हुए वह अब भी चीखे चले जारहे थे—बेटी सुभगा! माँ देवकी!

पास खड़े सैनिक अपने पितामह के समान वृद्ध सोहनसिंह का हृदय-भेदी रुदन सुनकर सिसकियाँ भर रहे थे और मन ही मन 'नारायण' 'नारायण' 'सत्श्री अकाल सत्श्री अकाल' का जप कर रहे थे। उसी समय किसी चीज़ के घसीटे जाने की आवाज़ हुई। लोगों ने चौंककर देखा तो दिवाल का पत्थर हट गया था और उसमें सुरङ्ग का मुँह दिखलाई पड़ रहा था। दूसरे ही क्षण 'Room please! महरबानी कर जगह दीजिये!' कहते हुए जनरल उसमें से निकलते दिखलाई दिये।

जनरल को देखते ही सिपाही पीछे हट गये। मूरहेड के शव की ओर अँगुली उठाकर जनरल ने कहा— इसे यहाँ से हटा दो! फिर पुल के दरवाज़े पर जाकर कोट की जेब से चाभी निकाल कर ताले में लगाई और सोहनसिंह से बोले—सोहनसिंह, खड़े हो जाओ! तुम्हारी और मेरी बेटियाँ बच जाएँगी।

दो बार चाभी घूमने की आवाज़ आई और चर्र-मर्र करता दरवाज़ा खुल गया। दरवाज़ा खुलते ही साँप की जीभ-सी लपलपाती लपटें बाहर की ओर लपकीं। उन्हें देख पास खड़े सिपाही तीन क़दम पीछे हट गये।

लेकिन जनरल बिना उतावलापन किये लपटों में इसतरह बढ़ते चले गये मानों सदा की तरह अपने पुस्तकालय में जारहे हों। उनके अन्दर जाते ही पुल एक भीषण धड़ाके के साथ टूटकर नीचे गिर गया। लेकिन जनरल ने मुड़कर भी नहीं देखा। वह तो उसी निश्चिन्तता के साथ सिर झुकाए बुर्ज का ताला खोलते रहे।

१६

जानसन के साथ बातचीत करने के बाद जनरल ने बिना मिले ही देवकी और सुभगा को सिपाहियों के साथ बुर्ज में रवाना कर दिया था। उनके बिस्तरे, दीया और खाने-पीने का सामान भी सिपाहियों के ही साथ वहाँ भेज दिया गया था।

बुर्ज में प्रवेश करते ही देवकी अपने वहाँ लाये जाने का कारण समझ गई। उसे जानते देर न लगी कि क़िला अब जीता ही जाने वाला था। उसने एक निगाह डालकर बुर्ज के उस कमरे को देखा।

जिस कमरे में वे रखी गई थीं वह बुर्ज के बिचले मजले पर था। ऊपर के मजले पर लेजाने वाली सीढ़ियों का दरवाज़ा मजबूत ताले से बन्द था। इस कमरे में किताबों की घोड़ियाँ (टॉड़ या रैक) थीं। अंग्रेज़ी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषाओं की सैकड़ों पुस्तकें घोड़ियों पर करीने से सजाकर रखी गई थीं। किन्हीं पुस्तकों के हासियों पर मोती से अक्षरों में कुछ टिप्पणियाँ भी लिखी हुई थीं। जब से शस्त्रागार के रूप में इस बुर्ज का उपयोग करना बन्द किया गया था तभी से जनरल इसका उपयोग अपने वाचनालय के लिए कर रहे थे। बुर्ज के तीसरे मजले में बैठकर अध्ययन करना उनके दैनिक कार्यक्रम का एक हिस्सा था। पिछले पाँच सालों से उन्होंने इसमें व्यतिक्रम नहीं होने दिया था। तीसरे मजले में दो-तीन खिड़कियाँ थीं। लेकिन बिचले मजले में तो एक भी खिड़की नहीं थी।

छत से थोड़ा नीचे एक फुट लम्बे-चौड़े दो रोशनदान थे। पहले मजले पर लेजाने वाले जीने का दर्वाज़ा भी ताले से बन्द था।

जब सिपाही ताला लगाकर चला गया तो देवकी ने कहा—अब हमें चलने की तैयारियाँ करना चाहिये।

'कहाँ चलने की ?'

'स्वर्ग में महाराजा के पास।'

'रँग-ढँग से तो ऐसा ही मालूम पड़ रहा है।'

फिर भी सुभगा सारी रात और दूसरा सारा दिन जनरल की प्रतीक्षा करती रही। बार-बार घोड़ियों पर चढ़कर रोशनदान से झाँक-झाँक कर देखती रही परन्तु उसकी अभिलाषा पूरी न हुई। उसने कभी इतनी अधीरतापूर्वक जनरल के आने की बाट नहीं देखी थी। लेकिन कल एक ऐसी घटना घट गई थी, जिसने उसकी बेचैनी को बहुत बढ़ा दिया था।

जनरल का सारा बंगला उनके कब्जे में था और वे उसका मन चाहा उपयोग करती थीं। कल सवेरे सुभगा निरुद्देश्य भटकती हुई एमिली के पढ़ने के कमरे में चली गई थी। वहाँ बाईसेक वर्ष की एक आँग्ल युवती की तसवीर रखी थी और उसके नीचे लिखा था 'एमिली'। किताबों को उलटते-पलटते सुभगा के हाथ एक चिट्ठी लगी, जो एमिली ने अपने पिता के नाम लिखी थी—

'पापा,

'कल विधना ने मेरे भाग्य का निर्णय कर दिया। मुझे गँवा कर एकाकी जीवन बिताने का आपका जो व्यर्थ का डर था वह अब निर्मूल होगया। कल मैं और शेखर सवेरे साथ घूमने गये थे। झरने के किनारे हमारी बातें हुईं।

'बचपन से ही अपना प्रेम वह एक लड़की को सौंप चुके हैं। उसका नाम है सुभगा। श्रीवासुदेव की चर्चा करते हुए आप अकसर उसका भी जिक्र करते हैं। घायल होने पर उसीने आपकी सेवा-सुश्रूषा की थी।

'आपको तो प्रसन्नता ही होगी। अब मैं सदा-सर्वदा आपके समीप ही रहूँगी और दूसरे, आप की ही एक बेटी उनके प्रेम की अधिकारिणी बनी है।

'मैं ज़रा भी दुःखी नहीं हूँ। जो दुःख था वह भी आज मिट गया है। जीवन में पहलीबार शान्ति का अनुभव कर रही हूँ। सुभगा के अधिकार को सिर-माथे चढ़ाकर ही मैंने शेखर को पाया है। इन्होंने भी हमेशा के लिए मुझे अपना बना लिया है। आज पहली और अन्तिमबार साथ बैठकर हमने भोजन किया। दो दिन बाद मैं वहाँ आजाऊँगी।

आपकी—एमिली।'

'पुनश्च—सुभगा के प्रति उनका प्रेम देखकर मैं तो दङ्ग रह गई। अभी-तक सोचती थी कि प्रेम केवल नारी ही कर सकती है। पुरुष तो छिछोरपन करता है। लेकिन उनका प्रेम देखकर मुझे अपना यह विचार बदलना पड़ा है।

सुभगा का नाम लेते ही उन्हें जो आनन्द होता है वह मेरी बरसों की सेवा-सुश्रूषा से भी न होगा इसका मुझे विश्वास होगया है।

उनकी बात मानकर मुझे जो सन्तोष हुआ है वह विश्वजीत यज्ञ करने पर भी न होता।'

पत्र पढ़कर सुभगा वहीं की वहीं बैठी रह गई। उसके हाथ-पाँव निर्जीव-से होगये। कृतज्ञता के आँसू उसकी आँखों में उमड़ आये और उसने हाथ जोड़कर, सिर नँवाकर कहा— माँ गौरी, तूने मुझे अनमोल हीरा दिया है। उसका शेखर खरा सोना था। इस खयाल के आते ही उसने परम

सन्तोष का अनुभव किया और उसकी छाती गर्व से फूलने लगी। उसने कईबार वह चिट्ठी पढ़ी। फिर एमिली की तसवीर हाथ में लेकर उसे प्रणाम किया और अस्फुटस्वर में बोली—बहिन, तू ही मेरी गौरी है। जानती हूँ कि नारी के लिए पुरुष को जीतने का मोह सबसे बड़ा मोह है। उस मोह को छोड़ना उसके लिए बड़ा कठिन होता है। नारीत्व का सारा अभिमान, अरे उसका अस्तित्व तक इसी एक बात पर निर्भर करता है! इसके सिवा उसके पास और है ही क्या? लेकिन नारी-जीवन की उस सार्थकता को तूने जिसतरह हँसते-हँसते छोड़ दिया है सो मैं कभी नहीं भूलूँगी।

पत्र पढ़ने के बाद जनरल से मिलकर एमिली के कुशल-समाचार पूछने के लिए उसका मन आकुल होरहा था। लेकिन जनरल तो आज मोर्चा सँभालने में लगे थे। उस ओर आने की तो ठीक, उन्हें दम मारने की भी फुर्सत नहीं थी। हाँ, जब कभी जेब में रखे चाभियों के गुच्छे पर हाथ पड़ जाता तो उन्हें याद हो आता था कि आज तो सुभगा बिटिया ने पोरनपोरी खिलाने का वचन दिया था!

देवकी ने वह सारा दिन ध्यान-पूजा में बिताया था। उसे खाने-पीने की भी सुध नहीं रही थी। शाम होगई थी। सुभगा रोशनदान के आगे बैठी दूर से आती गोलियाँ छूटने की आवाज़ और तलवार की झनकारों का स्वर सुन रही थी। अभीतक उस चिट्ठी ही की बात उसके मन में घुमड़ रही थी। कभी शेखर आँखों के आगे आता तो कभी एमिली; और वह निर्णय नहीं कर पारही थी कि दोनों में से किसे अधिक प्यार करे। रह-रहकर शेखर पर खीझ भी जाती थी और सोचती थी कि ज़रा, भेंट तो होने दो। लाला को वह आड़े हाथों लूँगी कि छठी का दूध याद होआयगा। जिसे देखो उसे भुरमाते फिरते हैं। इतना रूप-गुण भी किस काम का? वह इन्हीं विचारों में खोई बैठी थी कि उसे धुएँ की तीखी गन्ध आती हुई मालूम पड़ी। वह धुएँ की दिशा का निर्णय करे उससे

पहले तो सारा कमरा धुएं से भर गया था; और नीचे पुल के पास कोई पैशाचिक अट्टहास कर रहा था।

'माँ, आग लगी है।'

'हाँ, फिरङ्गियों ने लगाई है।'

'फिरङ्गियों ने जानबूझकर लगाई है?'

'हाँ, बेटी! हमें जीवित जलाना चाहते हैं।' यह कहकर देवकी ने सुभगा को छाती से लगा लिया। दोनो बड़ी देरतक वैसी ही गुम-सुम बैठी रहीं। धुआँ नाक, आँख और गले में भरने लगा था। नीचे की गरमी ऊपर आने लगी थी। जलती हुई लकड़ियों, भड़कते शोलों और चटखती लपटों की आवाज़ भी सुनाई पड़ने लगी थी। सुभगा ने चिल्लाने के लिये मुँह खोला ही था कि देवकी ने उसके मुँह पर धीरे से हाथ रखते हुए कहा—क्यों चिल्लाती है? कोई सुनने वाला नहीं है और सुन भी ले तो बचाने वाला नहीं है। चिल्लाने के बदले भगवान की प्रार्थना ही क्यों न की जाय!

और आर्तस्वर में वही प्रार्थना गाने लगी जो वह अनेकबार सुभगा को सिखला चुकी थी—

> यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्,
> तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावक॥
> यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः।
> तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावक॥

उसी समय पहले मजले का जीना टूट गया। जिसतरह ज्वालामुखी के मुँह से लावा उफनता हुआ बाहर निकलता है उसीतरह लपलपाती हुई लपटें कमरे के अन्दर घुस आईं। जीने के पास किताबों की जो घोड़ी थी वह भर्-भर् कर जलने लगी। कमरे में लपटें और धुआँ नाचने लगे थे।

देवकी अपनी प्रार्थना में लीन थी। उसी करुणस्वर में गाये चली जारही थी। आग उससे दो ही हाथ के फासले पर रह गई थी लेकिन उसे इसका ज़रा भी भान नहीं रह गया था। सुभगा उसे झकझोर कर कह रही थी—माँ, इधर उजालदान के पास खिसक आओ। परन्तु वह तो जैसे सुन ही नहीं रही थी। बाहर का शोरबकोर सुनाई पड़ रहा था। तीसरे मजले की खिड़की से नीचे कूदने की सूचनाएँ भी सुभगा को सुनाई पड़ रही थीं। लेकिन ऊपर जाने के जीने में तो ताला पड़ा था! सुभगा ने उजालदान के आगे खड़े होकर शेखर को देख लिया था। उसके चेहरे पर जो दुःख दिखलाई दिया उसके सामने आग में इसतरह जल मरना कुछ भी नहीं था और इसीलिए सुभगा को मरते हुए पीड़ा होरही थी।

लपटें धू-धू करती देवकी के पाँवों के पास रेंग आई थीं। सुभगा ने लपककर उसे उजालदान के पास खींच लिया और काँपते हाथों से उसे पकड़े बैठी रही।

बस, अब अन्तघड़ी आ पहुँची थी। सामने किताबों की घोड़ियाँ चटखती हुई जल रही थीं। लपटें तीसरे मजले के जीने पर भी पहुँच गई थीं। जीवन सिर्फ क्षण, दोक्षण शेष था। वह शेखर को भूलकर भगवान का नाम लेने का प्रयत्न कर ही रही थी कि किसीने दरवाज़े को ज़ोर से धक्का दिया और अन्दर घुस आया।

'सुभगा!' आवाज़ जनरल की थी। 'सुभगा! सुभगा!' फिर-फिर वही व्याकुल और भयमिश्रित स्वर सुनाई पड़ रहा था।

'इधर हैं जनरल, उत्तरी जँगले के पास।' आग में जलती टिटहरी-सा सुभगा का चीत्कारपूर्ण स्वर गूँज गया।

सारा कमरा धू-धू कर जलने लगा था। लपटों ने मज़बूत क़िले बन्दी करली थी।

'इधर चलो, इधर!' जनरल ने सुभगा का हाथ पकड़कर खींचते हुए कहा।

सुभगा ने देवकी का हाथ मजबूती से पकड़ रखा था; उसे डर था कि वह कहीं गिर न पड़े। फिर आगे जनरल और उसके पीछे सुभगा और देवकी तीसरे मजले के जीने पर चढ़ने लगे। जीना जल रहा था और किसी भी समय टूटकर गिर सकता था। सावधानी से पाँव बढ़ाते, लपटों में झुलसते तीनों ऊपर पहुँच गये। जनरल ने फुरती से खिड़की खोल दी।

देवकी और सुभगा को एक कोने में खड़ा कर जनरल ने छतपर लेजाने वाली निसेनी सँभाली और कसरती जवान की तरह उसे तौलकर खिड़की के बाहर लटका दिया। नीचे खड़े सिपाहियों और अर्द्ध-चैतन्य और अर्द्ध-विक्षिप्त होरहे सोहनसिंह ने बुर्ज की दीवाल पर निसैनी लटकती देखी तो खुशी के जयकारे लगाने शुरू कर दिये। पुस्तकों की सप्लाई करने और घोड़ियों से उन्हें उठाने रखने के लिये एक छोटी निसैनी तीसरी मंजिल पर और रखी थी। जनरल ने उसे बाहर वाली निसैनी से लगाकर रख दिया। अब निसैनी खिड़की से सिर्फ एक हाथ के फासले पर रह गई थी।

जनरल ने सुभगा को उतरने का संकेत किया।

धीरे-धीरे पाँव रखती वह सावधानी से उतरने लगी। नीचे सैनिक तंबूक्लाथ फैलाये खड़े थे कि कहीं पाँव फिसला तो सहेज लेंगे। जैसे ही सुभगा ने धरती पर पाँव रखा सारी सेना ने हर्षध्वनि कर आसमान गुँजा दिया। उसके बाद देवकी उतरी। शेखर ने आकर जैसे ही उसकी चरणधूलि ली वह बेहोश होगई। इतना सुख उसकी कल्पना के परे था। माँ-बेटे का वह मिलन देखकर कई सिपाही तो बालकों की तरह रोने लगे थे।

जब दोनों महिलाएँ नीचे उतर गईं तो जनरल डेनियल ने एक निगाह अपने जलते हुए पुस्तकालय की ओर डाली, फिर जलकर टूट गये पुल की ओर देखते हुए मन ही मन कुछ निर्णय किया और निसैनी की ओर पाँव

बढ़ाया । उनके उतरते ही लपटें तीसरे मजले में घुस आईं मानों इसीका इन्तज़ार था ।

उनके बोझ के नीचे निसैनी चर्रा रही थी । धरती इसतरह उन्हें टक लगाये देख रही थी मानों आसमान से कोई देवदूत उतर रहा हो । एक स्वर्गीय आभा से उनका मुखमण्डल दैदीप्यमान होरहा था । जैसे-जैसे वह नीचे आते गये धरती दूर खिसकती गई; मानों उसपर खड़े रहने वाले उनके समकक्ष न हों, मानों वह कोई फरिश्ता हो ।

जैसे ही उन्होंने धरती पर पाँव रखा तात्यासाहब ने उनके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ ।

'बड़ी खुशी से ।' उन्होंने कपाल और भौंह पर आये पसीने को पोंछते हुए कहा और फिर सुभगा, शेखर और देवकी की ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखने लगे ।

२०

स्वतन्त्रता का संग्राम अभी चल ही रहा था। नालदुर्ग की लड़ाई अभी समाप्त भी नहीं हुई थीं कि शेखर के मन में एक विकट संग्राम शुरू होगया। यह संग्राम बाहर की सभी लड़ाइयों से अधिक भयावना और निष्ठुर था।

अधिकांश सैनिक सो गये थे। कुछ अपने मृत साथियों की अन्त्येष्टि में लगे थे। दीपक के मन्द प्रकाश में उन लोगों की धीमी आवाज़ें सुनाई देरही थीं। इसके सिवा चारों ओर रात का गहरा सन्नाटा था। जहाँ कुछ समय पहले घायलों और मरने वालों की चीख-पुकार सुनाई देरही थी, तोपों और बन्दूकों की गड़गड़ाहट कान के पर्दे फाड़ रही थी, हथियारों की झनकारें दिलों को दहला रही थीं वहाँ इस समय अटूट शान्ति का राज्य था।

और शेखर इस सन्नाटे में पिंजड़े में बन्द शेर की तरह चक्कर काट रहा था। इस समय वह सेनापति की पोशाक में था। ओवरकोट पर शिरस्त्राण पहने हुए सैनिक के बंधे-संधे कदमों से चहलक़दमी कर रहा था।

माँ और सुभगा से इतने दिनों के बाद आज ही भेंट हुई थी। घायलों और मृतकों की पूरी व्यवस्था भी नहीं हो पाई थी। और तारों भरी रात में जब हवा थपकियां देरही होगी उसे शुक्रतारिका-सी उज्ज्वल और पावन सुभगा से मिलना था।

लेकिन मन में तो एक नया ही संघर्ष शुरू होगया था और जबतक उसका निपटारा न होजाय वह कहीं आ जा नहीं सकता था।

तात्यासाहब ने उसे कहला भेजा था कि कल सवेरे जनरल डेनियल का कोर्टमार्शल किया जायगा। तात्यासाहब स्वयं, महारानी देवकी और सरदार सोहनसिंह जनरल का फैसला करेंगे। इस बीच कैदी भाग न जाय इसकी सावधानी रखी जाय और दुहरे चौकी-पहरे का बन्दोबस्त किया जाय।

इस समाचार ने उसपर वज्राघात किया था। पिछले दो दिनों से एक के बाद एक भीषण आघातों ने उसकी छाती जर्जर करदी थी और इस आघात ने तो उसे तिलमिला ही दिया था।

जनरल का अपराध क्या था? सुरङ्ग की राह भागकर प्राण बचाने के बदले दो कुलीन स्त्रियों की जान बचाने के लिए प्राणों को संकट में डालना अपराध था? यदि उसने ऐसा न किया होता तो आज मजे से गोरी पलटन लेकर बाग़ीसेना से लड़ता होता। दया करना ही उसका अपराध होगया था? स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ करने जाकर उसने कोई अपराध कर डाला था? आज़ादी और मुक्ति के बदले स्वेच्छा से जलती आग में फांदकर उसने कैदी बनना स्वीकार किया था। यही क्या उसका अपराध था? और क्या इसी अपराध के लिए उसे मृत्युदण्ड दिया जाने वाला था? किसने बनाये थे ऐसे नियम कानून?

जो जनरल कलतक उसके मन सिर्फ एक सज्जन व्यक्ति था वह आज सन्त बन गया था। जिसतरह सन्त दूसरों के सुख के लिए अपने शरीर को गला डालता है उसीतरह बूढ़े जनरल ने अपने व्यक्तिगत सुख और लाभ को उन भूखी, लपलपाती लपटों में जलाकर खाक कर दिया था।

और यह सब उन्होंने किसके लिए किया था? सिर्फ दो महिलाओं के लिये जो न उनके देश की थीं, न उनकी जाति की और न उनके रंग की।

उनसे जनरल का कोई सम्बन्ध भी नहीं था। फिर भी उन्होंने उन महिलाओं को बचाने के लिये अपनी जान झोंक दी थी; क्योंकि वे असहाय निर्बल नारी थीं। उनके नारी होने के कारण ही जनरल ने सब कुछ भूलकर उनकी रक्षा की थी। वह अपराध नहीं था। वह तो युद्ध और कलह के इस भीषणकाल में विशाल मानवधर्म और मानवप्रेम की प्राण-प्रतिष्ठा थी।

और यही सबसे ऊँचा धर्म था। क्रान्ति के अनुयायियों के लिए क्रान्ति का जो धर्म होता है वही उसके विरोधियों के लिये नहीं होता। दोनों में जमीन आसमान का अन्तर होता है। लेकिन इस मानव धर्म में वैसा कोई भेद नहीं होता। वह तो बाँह पकड़ने से पहले दो ही बातें देखता है—मनुष्य और उसका दुःख।

और क्या यही जगतनियन्ता का धर्म नहीं है? नियन्ता ने अपनी इस रचना में इसतरह का कोई भेद-भाव कहाँ किया है? वह तो सर्वत्र सबको समानरूप से देता है: उसकी सृष्टि में सब कहीं भूखे को अन्न, प्यासे को पानी; नङ्गे को वस्त्र और निर्बल को शक्ति प्रदान की जाती है।

जगतनियन्ता के उस धर्म का पालन करने वाले को यदि अपना कर्तव्य निबाहते हुए मृत्युदण्ड भुगतना पड़े और परमात्मा के नाम पर खड़ी की हुई मुक्तिसेना का सेनापति यदि उसे बचा न सके तो वह सेनापति आती कल के सवेरे सूर्यदेवता को अपना मुँह किसतरह दिखला सकेगा?

और स्वयं क्रान्ति अपना बचाव किसतरह कर सकेगी? समझदार लोग तो यही कहेंगे कि जिसने क्रान्ति की अधिष्ठात्री को बचाया उसीको क्रान्ति ने मृत्युदण्ड देकर पुरस्कृत किया। इससे अधिक कृतघ्नता की बात और क्या होगी? एक फिरंगी की उदारता, बलिदानभावना और धर्म-आचरण का जवाब क्रान्ति ने निष्ठुरता, नर-हत्या और अधर्म से दिया।

यदि क्रान्तिकारी की उदारता और धार्मिकता फिरंगी से बढ़ी-चढ़ी न हों तो ऐसी क्रान्ति का मतलब ही क्या होगा?

न्याय और समानता के जिस सिद्धान्त की स्थापना करने के लिए क्रान्ति की जाती है यदि क्रान्तिकारी उन्हीं सिद्धान्तों का गला घोंटने लगें तो वह कैसी क्रान्ति होगी ?

लेकिन इस जनरल ने मुक्तिसेना का मुक़ाबला किया था। बाग़ियों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। आज़ादी के लड़ाकों के विरुद्ध हथियार उठाये थे। उसकी सजा तो उसे मिलना ही चाहिये।

लेकिन साथ ही उसने मुक्तिसेना की माँ की जान भी बचाई थी। जिसे सारी मुक्तिसेना बचाने में असमर्थ थी उसे खुद अपने प्राणों को संकट में डालकर बचाया था और उसका पारितोषक भी उसे मिलना ही चाहिये।

यह कहना कि हमने उसे गिरफ्तार किया है बिलकुल झूठ था। उस गिरफ्तारी में कोई वीरता या वाहवाही की बात नहीं थी। वह तो स्वेच्छा से गिरफ्तार हुआ था। फिर जिसे तुमने पकड़ा नहीं उसे दण्ड देने का तुम्हारा अधिकार ही क्या था? यदि अधिकार ही चाहते हो तो अपनी अधिष्ठात्री देवी की तरह आदर-मान कर उसे किसी अनमोल वस्तु की भेंट देने का ही तुम्हारा अधिकार होसकता था।

लेकिन क्या यह भी सोचा है कि छूटकर वह फिर गोरी सेना का सेनापति बनेगा, देश की आज़ादी के खिलाफ हथियार उठायेगा और सारा मुल्क फिर वीरान और गुलाम होजायगा।

इन तर्कवितर्कों के बीच शेखर क्षणभर के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ होगया। कभी झटका देकर उसका हृदय इस ओर को खींचा जाता था और कभी उस ओर को। उसे मर्मान्तिक पीड़ा होरही थी। हृदय चिर गया था और उसमें खून के परनाले बहने लगे थे परन्तु खींचातानी वैसी ही चल रही थी।

'क्या तू इस बात की गारण्टी दे सकता है कि वह फिर कभी हथियार उठायेगा ही नहीं ?'

'तेरा यह प्रश्न न्यायोचित नहीं है। वह तेरा बन्दी नहीं है कि तू ऐसा प्रश्न कर सके। उसने तुझपर उपकार किया है। तू उसका कृतज्ञ है। उसकी उदारता के बोझ के नीचे दबा हुआ है। वह उपकार करने के लिए तुम्हारे बीच में आया था और तुमने धोखा देकर उसे गिरफ्तार कर लिया। अब उसके स्वाभिमान, उसकी शूरता और उदारता का अपमान करना चाहते हो। यह कहाँ की भलमनसी है ?'

'मैं भलमनसी जैसी बात नहीं जानता। भूखे के लिए आवश्यकता ही उसका ईश्वर और परिस्थिति की अनुकूलता ही उसका धर्म है। आज वह हमारे पंजे में है; इसलिए पुराना लेन-देन ब्याजसहित बेबाक कर लेना उचित है।'

'पहले अपना देना तो बेबाक कर दे, ईमानदारी का तो यही तकाजा है।'

'मुझे तेरी ईमानदारी का तकाजा नहीं चाहिये। पहले मैं अपनी पाई-पाई वसूल करूँगा। यदि वह बच गया तो फिर देने की बात देखी जायेगी।'

'मैं तो यह कभी नहीं करने का। पहले अपना देना चुकाऊँगा उसके बाद लेने का हिसाब देखा जायगा। अभी जाता हूँ ऋणमुक्त होने। देखूँ कैसे रोकता है मुझे ? दूर हो मेरे सामने से।'

उसने धक्का देकर मन में उठते अनिष्ट विचारों को निकाल बाहर कर दिया और हलके मन से जनरल की कालकोठरी की ओर चला। उसने पाया कि रात का अँधेरा नहीं-सा होगया है। उसका पथ स्वर्गीय प्रकाश से जगमगा रहा था। मन में न दुःख था न द्विधा। न शंका थी न

...का। वहाँ तो धर्म की श्रद्धा और ज्ञान का प्रकाश हाथ में हाथ दिये खड़े थे।

'मालिक, आदाब-अर्ज !' उसने एक आवाज़ सुनी

मुड़कर देखा तो बूढ़े रहमान को खड़ा पाया। साश्चर्य पूछा—चाचा, तुम कहाँ से? एमिली कहाँ है?

'आज कहाँ होंगी कह नहीं सकता। दो महीने पहले मरी थीं। वहीं से मुझे यह चिट्ठी देकर आपके पास भेजा था। कहा था, जल्दी पहुँचाना। मैं जैसा खड़ा था वैसा ही चल पड़ा। लेकिन बदनसीबी देखिये कि लुधियाना पहुँचकर बीमार होगया। पन्द्रह दिन में चलने-फिरने काबिल हुआ कि तुरत दौड़ पड़ा। लेकिन गर्दिश के चक्कर के आगे इन्सान की क्या हस्ती? बनारस में खुदा के बन्दों ने पकड़कर हवालात में रख दिया। खुदा-खुदा कर छूटा और आपकी खिदमत में चला आरहा हूँ। यहाँ अब जैसी पड़ेगी भुगत लूँगा।'

'अब मिस साहिबा की तबियत कैसी है?' उसने लिफाफा लेते हुए पूछा।

'यों खड़े-खड़े कबतलक सुनियेगा। सिर्फ...' वह कहते-कहते रुक गया।

'ठहरो रहमान' उसने चौकीदार से दीया लेकर उसकी धीमी रोशनी में पढ़ा। चार लकीरों की छोटी-सी चिट्ठी थी। लिखा था—

'कानपुर की खबर पढ़कर मैं तो पागल ही होगई हूँ। जैसे एक दिन मुझे बचाया था उसीतरह, विश्वास है, उन मुट्ठी-भर स्त्री-पुरुषों की जान भी बचाओगे।

'बीमार पड़ी हूँ। इतना भी बड़ी मुश्किल से लिख सकी हूँ। अच्छी होते ही दौड़ी आऊँगी।

'कुशल होगे।

तुम्हारी ही—एमिली।'

ठन्-से एक अँगूठी लिफाफे के अन्दर से नीचे गिर पड़ी। शेखर एमिली के साथ बिताये उन दिनों को कभी नहीं भूल सकता। उन्हीं दिनों विज्ञान के विवेक और इतिहास की आलोचनाओं ने उसकी आँखों पर पड़े अविवेक के पर्दे को फाड़ फेंका था। उन्हीं दिनों उसने जाना था कि ज्ञान किसी एक देश की बपौती नहीं है और न अध्यात्म ही किसी एक देश की इजारेदारी है। हिन्दुस्तान के बाहर भी ऐसे कई देश हैं, जिनसे बहुत कुछ सीखा जासकता है: जिनका ज्ञान-भण्डार किसी से कम नहीं है; जहाँ की प्राकृतिक शोभा अवर्णनीय है। घर और बाहर की उस ज्ञानराशि में किसीतरह का विरोध नहीं है। एक के पाने से दूसरे के भण्डार की वृद्धि होती है। ज्ञान की ऐसी विशाल दृष्टि प्रदान करने वाले उन दिनों को वह अपने जीवन के श्रेष्ठतम दिन मानता आया था और एकान्तभाव से उनकी उपासना करता रहा था। आज उन्हीं दिनों की याद दिलाती हुई वह अँगूठी कह रही थी—अपने और पराये का भेद भले ही न मिट सके लेकिन पराये मात्र को दुश्मन समझने की भूल कभी मत करना।

शेखर चुपचाप तहखाने के आगे जाकर खड़ा होगया।

संत्री ने सेनापति को पहिचानकर सलामी दी।

'जनरल सोये हैं?'

'जी हाँ, आते ही सो गये।'

संत्री के हाथ से दीया लेकर वह अन्दर उतरा। बिस्तर सिरहाने लगाये जनरल मजे से खर्राटे लेरहे थे। उनके चेहरे पर चिन्ता और भय का नाम-निशान भी न था। वह इसतरह निश्चिन्त होकर सोये थे मानों अपने सब कर्तव्य पूरे कर लिये हों और कल की ज़राभर चिन्ता न रहगई हो। तहखाने की नङ्गी धरती पर वह ऐसी गहरी नींद सोये थे कि शेखर के अन्दर आने से भी उनकी नींद नहीं टूटी।

शेखर ने धीरे से आवाज़ दी—जनरल!

जनरल अलसाकर उठ बैठे और राजशेखर को देखकर मुस्कराते हुए बोले—बचपन के बाद आज पहलीबार ऐसी गहरी नींद सोया हूँ, कमाण्डर! बड़ी मीठी नींद आरही थी। बा तो क्यों जगाया? क्या कोर्टमार्शल अभी ही होगा?

'आप ऐसे ही सो गये?'

'ज़ोरों की नींद आरही थी। अपने सब उत्तरदायित्वों से छुट्टी पाकर बिलकुल हलका होगया था इसलिए लेटते ही ऊँघ गया। सुभगा ने बिस्तरा भेज दिया था लेकिन उसे बिछाने की भी सुध न रही। उसीपर सिर रखकर सो गया। आज ही मेरी समझ में आया है, कमाण्डर, कि धर्म का पालन मनुष्य को व्यर्थ की कितनी चिन्ताओं से छुट्टी दिला देता है! समझता तो पहले भी था लेकिन अनुभूति तो आज ही हुई है।'

काश मैं भी उसका अनुभव कर सकता—शेखर ने मन ही मन सोचा और प्रगट में पूछा— आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ?

'आते ही सो गया। तकलीफ क्या होती? हाँ, अभी सोचता हूँ कि यदि सिगार भी होती तो बड़ा मज़ा रहता। 'स्टडी' की अल्मारी...

शेखर ने संत्री को आवाज़ देकर सिगार-केस मँगवाया। जनरल ने सिगार पीते हुए कहा—एमिली वहां से चल दी होगी। हफ्ते भर में आजायेगी और आकर देखेगी कि उसका बूढ़ा बाप नहीं है। (सिगार की राख झाड़ते हुए) खैर, एक दिन तो मरना ही था। लेकिन अपनी एक बेटी की जान बचाकर मर रहा हूँ इतना सन्तोष क्या कम है? बाहर कितनी सारी परेशानियां थीं! सत्य खोजे नहीं मिल रहा था और झूठ पिण्ड नहीं छोड़ रहा था। घने अन्धेरे में बोझ से कमर टूटी जारही थी परन्तु सुस्ताने को ठौर नहीं मिल रही थी। अब तो बोझा भी गया और ठौर भी मिल गई।

शेखर ने एमिली का पत्र देते हुए कहा—एमिली का पत्र है। मेरे नाम लिखा है। लिखे तो कई दिन होगये लेकिन मुझे आज ही मिला।

पत्र पढ़कर जनरल हँसने लगे । लड़की बिलकुल पागल है । यह भी कोई लिखने की बात थी ? लेकिन शायद उसे तुम्हारे इस स्वाधीनता-संग्राम के स्वरूप और तुम्हारी परिस्थितियों की जानकारी नहीं है । अन्यथा ऐसा न लिखती । भला कोई अपने देश को भी दग़ा दे सकता है ? जो प्रेम देशद्रोह सिखलाता है वह प्रेम नहीं, सर्वनाश करने वाला अन्धा मोह है ।

'यह कैसे ? प्रेम तो मनुष्य को सर्वस्व का बलिदान करने के लिये प्रेरित करता है ।'

'नहीं । जो प्रेम देशद्रोह करवा सकता है वह लूट-पाट, चोरी, अत्याचार, खून सभी कुछ करवा सकता है । प्रेम को ही यदि सर्वस्व मान लिया जाय तो फिर इस दुनिया में और कुछ करना रह ही नहीं जायगा । धर्म का आचरण, जनता की सेवा, ईश्वर की उपासना सब कुछ बेमानी होजायेंगे । लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है । प्रेम तो जीवनयात्रा में नौका को चलाने वाले अनुकूल पवन की तरह एक साधन मात्र है । वह तो रसप्राप्ति में एकतारे के तार की तरह है । लेकिन यदि वही पवन प्रतिकूल होजाय और नौका को ग़लत राह ले जाने लगे तो उसे साधन कहना कहाँतक उचित होगा ? तुम्हीं बतलाओ एकतारे के तार का यह दावा कि रस-निष्पत्ति हृदय में नहीं उसी में है कहाँतक ठीक है !'

'फिर तो आपने भी सुभगा के स्नेह में पड़कर अपने देश के साथ द्रोह किया है ।'

'नहीं, यदि सुभगा मेरे देशप्रेम में बाधक होती तो अपने हाथों उसे गोली मार देता । असल में तो मैं ही उसके देशहित के आड़े आरहा हूँ ।'

थोड़ी देरतक चुप रहने के बाद जनरल ने फिर कहना शुरू किया—मुझे तो मेरा स्नेह ही उसके रास्ते से हट जाने के लिए कह रहा है । यदि यह स्नेह न होता तो तो संभवतः मेरी समझ में ही न आ पाता कि

मैं उसकी राह रोके खड़ा हूँ। स्नेह की यही तो सार्थकता है। वह हृदय की दीवट में दुई को मिटाने वाला तेल पूरता है। लेकिन जबतक उस दीवट का धर्म की ज्योति से सम्पर्क नहीं होता वह भरी दीवट अन्धकार को मिटाने में असमर्थ ही रहती है। धर्म की बाँह का आसरा लेकर ही प्रेम पूर्णता को प्राप्त होता है।

उन्होंने सिगार पीना बन्द कर दिया था और आँखें मूँदे इसतरह बोल रहे थे मानों मन की गहराई में घुमा-घुमाकर बात को ऊपर लारहे हों।

अन्त में उन्होंने कहा—यह मैं नहीं कह रहा हूँ। यह तो श्री वासुदेव की वाणी है।

और शेखर के मन में बार-बार एक प्रश्न टकरा रहा था और उसे व्यथित कर रहा था—कल हम इनकी हत्या कर डालेंगे! मुक्तिसेना के हम सैनिक, वासुदेव के हम अनुयायी इस महान् आत्मा की हत्या करेंगे!

थोड़ी देरतक दोनो चुप बैठे रहे। फिर जनरल ने कहा—कमाण्डर, मैं तो भूल ही गया। तुम थक गये होगे। अब जाओ, सो रहो। सबेरे फिर भेंट होगी।

'मैं तो यहीं सोने आया हूँ।'

'यहाँ सोओगे? बड़ी खुशी से। यह रहा बिस्तरा।' जनरल ने बिस्तरा खोलते हुए कहा—मुझे तो अब नींद आयेगी नहीं।

'तो आप यह कोट पहिन लीजिये। कोट पहिने हुए मुझे नींद नहीं आयेगी। उसने जनरल को खड़ाकर अपना ओवरकोट, जो गोलियों से चलनी होरहा था, पहिना दिया और शिरस्त्राण उनके सिर पर रख दिया। फिर बोला—अब मैं चैन से सो सकूँगा।

जनरल नन्हें बालक की तरह कुतूहलपूर्वक हँस रहे थे। उन्होंने कोट के बटन लगाते हुए शेखर से कहा—क्यों कमाण्डर, दुनिया में और भी कहीं दो कट्टरदुश्मन इसतरह हँस-बोल सकते हैं?

'सन्त्री दीया लेजाओ!' उसने खड़े होकर सीढ़ियों पर दीया रख दिया और जनरल को ऊपर की ओर धकेलते हुए कहा—बाहर चले जाइये! किसी की उपस्थिति में मुझे नींद नहीं आती।

और जैसे बिजली कौंध जाती है इसतरह सब कुछ जनरल के दिमाग में साफ होगया। उन्होंने शेखर का हाथ पकड़कर साश्चर्य कहा—क्या पागलपन कर रहा है तू?

फिर अन्धेरे में होती बातचीत सुनाई दी—

'धर्म का पालन। अभी ही तो आपने सिखलाया है।'

'मुझे भगा रहा है?'

'नहीं, प्रार्थना कर रहा हूँ कि हमें पाप से बचा लीजिये।'

'ऐसा भी कहीं होसकता है? रहने दे शेखर। मैं ऐसा नीच नहीं हूँ कि तुझे मुसीबत में डालकर चला जाऊँ। पागल होगया है क्या?'

'जनरल, मैं पागल नहीं हुआ हूँ। बराबर होश में हूँ। आप यहाँ से चले जाइये। आपको जाना ही होगा। अपनी खातिर न सही हमारी खातिर जाना होगा। आपने हमारी माँ को, हमारी महासेनाधिपति को बचाया है। आपको मृत्युदण्ड दिया गया तो हमें रौरव नर्क में भी स्थान नहीं मिलेगा।

'पर तू? तेरा क्या होगा?'

'कह नहीं सकता। अपने पद के कारण छोटी-मोटी सजा पाकर छूट भी सकता हूँ या जो गत सवेरे आपकी होती वही मेरी भी होसकती है। लेकिन उससे क्या? मृत्यु को जीतें या मौत हमें जीते बात तो दोनों एक ही हैं।'

'नहीं शेखर, मैं यह कभी नहीं होने दूँगा।'

यह तो होकर ही रहेगा। मुक्तिसेना के सैनिक अपने ही उद्धारकर्ता की गरदन पर छुरी फेरें इस कलंक को मैं कभी लगने नहीं दूँगा। जाइये,

चले जाइये यहाँ से। आपके पाँवों पड़ता हूँ। हमारी खातिर, हमें पाप से बचाने की खातिर चले जाइये यहाँ से।' उसने जनरल को धक्का देते हुए कहा।

'मैं कहाँ जाऊँ ? यह सुख...

'जहाँ पाँव लेजायँ चले जाइये। सुख और शान्ति तो आपके पीछे दौड़े चले आएँगे।' उसने जनरल को धक्का देकर ऊपर चढ़ाते हुए कहा।

बाहर आकर जनरल सैनिक के बँधे–सधे कदमों से चलने लगे। संत्री ने उन्हें सेनापति समझकर सलामी दी। उधर तहखाने में शेखर ने गद्-गद् होकर प्रार्थना की–हे भगवान ! मुझे अविचलित भक्ति देना, शक्ति देना और सुभगा को सहने की सामर्थ्य देना।

२१

जनरल डेनियल सूने मन से चलते ही रहे। वह कहाँ जारहे थे, किधर जारहे थे और किसलिए जारहे थे इसका कोई ध्यान नहीं था। उन्हें ऐसा लग रहा था मानों चारों ओर निविड़ अन्धकार है। पाँव में काँटे चुभ गये थे। पानी बरसने लगा था। पेट में न जाने कबसे अनाज का एक भी दाना नहीं पड़ने पाया था। प्यास लगी थी। पाँव दुखने लगे थे। लेकिन उन्हें किसी की सुध नहीं थी। बस, यन्त्रवत् चले जारहे थे।

यह क्या किया ? बड़ी प्रतीक्षा के बाद जो अपार शान्ति मिलने वाली थी उसे ठुकराकर क्यों चला आया ? माँ की गोद की तरह सुखद थी वह शान्ति ! वहाँ कम्पनी की नौकरी का छल-कपट नहीं था। अपने ही अन्नदाताओं के विरुद्ध विद्रोह करने की बात नहीं थी। परमात्मा ने दया कर इस झूठ-फरेब की दुनिया से बुला लिया था। फिर उस सबको ठुकराकर क्यों चला आया ? इस दुनिया में सिवा पशुता के क्या था ? कम्पनी की दुनिया में मूरहेड-से पशु, अभिमानी और धूर्त रिचर्डसन और झूठ को सच समझकर उसी के घमण्ड में चूर रहने वाले जानसन आदि को छोड़कर क्या था ? यहाँ थी आसुरी धनलिप्सा और विजय का झूठा अहङ्कार ! न तो ज्ञानोपासना थी न धर्मोपासना। प्रेम और स्नेह के दैवी गुणों का भी नितान्त अभाव था। आकाश की उदारता और धरती की क्षमाशीलता भी नहीं थी। फिर क्यों चले आये ?

लेकिन पाँव रुकते नहीं थे। वे पाँव जैसे थकना जानते ही नहीं थे। चले जारहे थे, चले जारहे थे।

और इसीतरह चलते-चलते वह कालपी के बाहर छावनी डाले पड़ी गोरी सेना के पड़ाव के आगे आपहुँचे। दरवाज़े के पास नोटिसबोर्ड पर एक नोटिस लग रहा था। जनरल उसके आगे खड़े रहकर पढ़ने लगे—

'इसके द्वारा बुन्देलखण्ड के समस्त ब्रिटिश सैनिकों और अफसरों को सूचित किया जाता है कि नालदुर्ग की...पलटन के जनरल डेनियल को उनके ओहदे से अलग किया जाता है, क्योंकि उन्होंने बागियों की सरगना रानी देवकी और सुभगा पांडे को सैनिक अदालत के सामने खड़ा नहीं किया; उन्हें कड़े चौकी पहरे में नहीं रखा; और, बागियों के हाथ में सौंप दिया। सरकार बहादुर ने जनरल डेनियल की लम्बी नौकरी का खयाल कर उन्हें कोर्टमार्शल की सजा देने के बदले सादी अदालत द्वारा सजा देने का निर्णय किया है। इसके द्वारा सभी सम्बन्धित लोगों को इस सम्बन्ध में सूचित किया जाता है ताकि लोग सबक ले सकें।

सर ह्यूरोज—

कमाण्डर-इन-चीफ बुन्देलखण्ड डिविजन

उसीसमय पीछे से किसीने कहा—मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ मि० डेनियल।

जनरल ने मुड़कर देखा तो आँखों में घृणा और तुच्छता का भाव लिये जानसन को खड़े पाया। सुरङ्ग की राह जान बचाकर भागते हुए जानसन ने बुर्ज जलने पर जनरल को लौटते देखा तो सोचा कि वह घायल मूरहेड को लेने जारहे हैं। इसलिए उसने आवाज़ देकर उन्हें आग में जाने से रोका भी। लेकिन यह देखकर कि जनरल दो काली औरतों को बचाने के लिए अपनी जान संकट में डाल रहे हैं, उसके गुस्से और घृणा की सीमा नहीं रह गई थी। उसके मन जनरल का यह गहरा अधःपतन

था। इस अध:पतन के लिए जनरल उसकी दया के नहीं घृणा और तिर-स्कार के पात्र थे।

'मैं सधन्यवाद इसे स्वीकार करता हूँ।' डेनियल ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

उन्हें राह नहीं सूझ रही थी लेकिन जानसन ने आकर उबार लिया था।

२२

तात्यासाहब ने दूसरे दिन सवेरे दस बजे कोर्टमार्शल का प्रबन्ध कर रखा था। अदालत जनरल के बंगले में ही बैठने वाली थी। दीवानखाने के दरवाजों पर पहरा लगा दिया गया था। अन्दर से सोफा आदि बाहर निकाल दिये गये थे। सिर्फ एक मेज़, चार-पांच कुर्सियां और एक स्टूल रहने दिया गया था। बीच की कुर्सी पर तात्यासाहब बैठे थे। उनके पीछे एक हरा और एक भगवा झंडा सजाया गया था। मेज़ की बाईं ओर महारानी देवकी और दाहिनी ओर सरदार सोहनसिंह बैठे थे। सोहन-सिंह के सिरपर पट्टी बंधी थी और खून सूखकर उसपर जम गया था। एक मराठा युवक फर्श पर पलथी मारे कागज़-कलम लिये बैठा था।

'कैदी को हाज़िर करो।' तात्यासाहब का हुक्म मिलते ही दो सैनिक शेखर को तहखाने से ले आये।

उसे देखते ही तात्यासाहब ने आश्चर्य से कहा—इन्हें क्यों लाये? मैंने क़ैदी को लाने के लिए कहा है।

'वहाँ कमाण्डरसाहब के सिवा और कोई नहीं है।'

'नहीं है तो कहां गया? जनरल डेनियल को लाओ।'

'हुजूर, वहां और कोई नहीं है।' पहरेदार ने कहा।

'तो ज़रूर भाग गया होगा। लापर्वाही क्यों की गई? सुरङ्ग की जान-कारी उसे ज़रूर होगी। ग़लती होगई। ज़बर्दस्त ग़लती होगई। रात में

पहरे पर कौन था ? हाज़िर करो उसे । कैसे भाग गया वह बदमाश, हमारी आँखों में धूल झोंककर ?'

'बदमाश को मैंने भगाया है, तात्यासाहब !' शेखर ने सिर उँचा-कर कहा ।

'तुमने ?'

'हाँ ।'

'तूने ?'

'जी हाँ, मैंने ।'

'सोहनसिंह, ज़रा वैद्यराज को बुलाओ ।'

'तात्यासाहब, मैं अपने होश-हवाश में ही हूँ । कल रात एक बजे मैंने ही तहखाने में जाकर जनरल को अपना कोट पहिनाकर और उनके सिर पर अपना शिरस्त्राण रखकर भगा दिया है । पहरेदार ने यह समझ-कर कि मैं ही हूँ, उन्हें निकल जाने दिया । अपराधी मैं हूँ ।'

शेखर का एक-एक वाक्य देवकी के कलेजे में शत-सहस्त्र भालों-सा चुभ रहा था । उसका चेहरा फक़ होगया था । क्षणभर के लिए तात्यासाहब को ऐसा लगा मानों किसी ने ज़ोर से उन्हें तमाचा मार दिया हो लेकिन दूसरे ही क्षण अपने पर काबू पाकर उन्होंने अदालत की कार्रवाई शुरू की । शेखर को स्टूल दिखलाते हुए वह बोले—बैठ जाओ ।

फिर पूछा—तुम्हारा नाम ?

'शेखर ।'

'ओहदा ?'

'सेनानायक ।'

'तुमने यह विज्ञप्ति पढ़ी है?' डेनियल को जीवित या मृत उपस्थित करने वाले को इनाम देने की घोषणा वाली विज्ञप्ति उसे दिखलाई गई।

जी हाँ।'

'जनरल डेनियल को भगाने का अपराध तुम मंजूर करते हो?'

'जी हाँ।'

'तुम्हें अपने बचाव में कुछ कहना है?'

शेखर ने गला साफकर कहना शुरू किया—

'क्रान्ति का एक महान उद्देश्य यह है कि वह समाज में मृतप्राय: मानवता की प्राण-प्रतिष्ठा करती है। जनरल डेनियल ने कल वही किया था। मानव-मन में युगों से करुणा का जो स्रोत बहता चला आरहा है कल उन्होंने अपने प्राणों को सङ्कट में डालकर उसे पुनर्जीवित किया था। इस क्षणभंगुर संसार में एक ही पुण्यकर्म पिछले हजारों पापों को धोडालने के लिये काफी होता है! यदि ऐसा न हो तो दुराचारी के लिये इस जीवन में कोई आशा नहीं रह जायगी। संभव है कि जनरल डेनियल ने पहले हजारों दुष्कर्म किये हों; लेकिन इस एक ही सत्कर्म द्वारा उन्होंने अपने को समस्त मुक्तिसेना की कृतज्ञता और पूजा का अधिकारी बना लिया है। ऐसे महान पुरुष को मृत्युदण्ड देने के महापाप से सारी मुक्तिसेना को बचा लेने के खयाल से ही मैंने उन्हें भागने में सहायता दी थी। मैंने इसके समस्त परिणामों पर विचार कर लिया था इसलिए अदालत से मेरी प्रार्थना है कि मुझपर दया न की जाय।'

शेखर के बैठ जाने पर तात्यासाहब ने खड़े होकर बोलना शुरू किया। उनका स्वर सदा की भाँति अविचलित और कठोर था।

'अदालत के दोनो सभासदो! अपने अपराधी की स्वीकृति और सफाई सुन ली है। अब आपको निर्णय करना है कि सेनानायक राजशेखर ने ऐसा

करके बाग़ीसेना का अनुशासन भङ्ग किया है या नहीं? जिसे कैदी की हिफ़ाजत का काम सौंपा गया था उसीने क़ैदी को भगा दिया है और अब कड़ा दण्ड माँग रहा है। लेकिन मैं कहूँगा कि इससे क्रान्ति को होने वाले नुक़सान की भरपाई नहीं होसकती।

'जनरल डेनियल अब जिन गाँवों को जलाएगा, जिन स्त्री; बच्चों और बूढ़ों का कत्लेआम करेगा, भविष्य में हमें जब-जब पराजित करेगा उसकी समस्त जिम्मेवारी सेनानायक राजशेखर के सिर होगी। दया और उदारता का मनमाना अर्थ लगाकर यदि क्रान्ति के सिपाही दिये हुए हुक्मों का यों उल्लंघन करने लगें तो हमारी सेना एकदिन भी टिक नहीं सकेगी।

'क्रान्तिकारी के लिये अनेक महान् अपरिहार्य आवश्यकताओं में सबसे अधिक और पहली आवश्यकता है मन से दया-माया को उखाड़ फेंकना। उसे वज्र से भी कठोर होना होता है। पापियों को दण्ड देने के लिए ही क्रान्ति का आयोजन किया जाता है। भावुक क्रान्तिकारी जब उस दण्ड का उपयोग करने में हिचकिचाने लगते हैं तो क्रान्ति अपना महत् उद्देश्य पूरा किये बिना ही नष्ट होने लगती है। इसीलिए दया-माया क्रान्तिकारी के लिए अकारथ ही नहीं अपराध भी है।

'जनरल डेनियल ने एक अच्छा काम किया। उसके लिए उसे साधुवाद! लेकिन जनरल डेनियल सिर्फ इतना ही तो नहीं है। आग की लपटों में घुसकर महारानी देवकी और सुभगा को बचाने के सिवा आग लगाने की आज्ञा देने वाले, नङ्गी तलवार से हमारा मुक़ाबला करने वाले और निर्ममतापूर्वक क्रान्ति को दबानेवाले के रूप में भी वह हमारे सामने आता है।

'यदि जनरल डेनियल के टुकड़े किये जासकते तो कोई उलझन न होती। लेकिन वही तो नहीं किया जासकता। पत्तों को जड़ से भिन्न करके नहीं देखा जाता। वैसा करना ग़लत होगा। सड़े पेड़ पर भी हरे पत्ते होते ही हैं। अब यदि सड़े पेड़ को नष्ट करना है तो पत्तों को

भी साथ में काटना होगा । उनका मोह कर जड़ों पर कुल्हाड़ा न चलाना ज़बर्दस्त भूल है । यही बात डेनियल के साथ भी लागू होती है । उसके मूल में भी कम्पनी राज की सड़ांध है । वह कितना ही भला और आदर्श-वादी क्यों न हो जड़ से सम्बन्धित होने के कारण विवश होकर उसे हमारे विरुद्ध हथियार उठाना ही पड़ता है । सड़े पेड़ के पत्ते आज नहीं तो कल खिरेंगे; फिर उनपर आघात करने से हिचकिचाने में लाभ ही क्या ? इसीलिए फिर कहता हूँ कि पत्तों को मूल से अलग कर देखना क्रान्तिकारी की ज़बर्दस्त ग़लती है; और सेनाध्यक्ष जैसे जिम्मेवार व्यक्ति के लिए तो वह अक्षम्य अपराध ही है ।

'डेनियल तो अत्याचार करने वाली मशीन का केवल एक नन्हा-सा पुर्जा है । वह चाहकर भी अपने आपको उससे अलग नहीं रख सकता । अनचाहे भी उसे अत्याचार के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है । इसे अच्छी-तरह समझ लेने के बाद उसके क्षणिक और न कुछ-से सत्कार्यों का खयाल कर उसे जीवित छोड़ देना नासमझी में क्रान्ति का विरोध करने के समान अपराध है ।

'और इस मामले में तो कैदी को दुहरे चौकी-पहरे में रखने का स्पष्ट [illegible]श सेनानायक को दिया गया था । फिर भी जान-बूझकर उस आज्ञा का जो उल्लंघन किया गया है उसकी ओर मैं आप लोगों का ध्यान खींचना आवश्यक समझता हूँ ।

'अब महारानी देवकी इस सम्बन्ध में अपना मत प्रगट करें । यह अदालत है और इसमें किसीतरह की लाग-लपेट नहीं होनी चाहिये ।'

देवकी ने खड़े होकर कभी शेखर और कभी तात्या की ओर देखते और बीच-बीच में रुकते हुए कहा—माँ का स्नेह मूल्यवान है लेकिन न्याय तो अनमोल होता है । यदि वह स्नेह न्याय को परिवेष्टित करदे तो समाज एक भी दिन नहीं चल सकेगा । इसलिए माँ के स्नेह को न्याय की बलिवेदी पर चढ़ाकर मैं यहाँ अपना अभिप्राय व्यक्त करने खड़ी हूँ । मेरी

राय में सेनानायक राजशेखर अपराधी हैं। संभव है कि उन्होंने जल्दबाजी में अपने काम के परिणामों का विचार न किया हो लेकिन अज्ञान कोई तर्क नहीं है। जान-बूझकर करें या अनजाने करें परिणाम तो एकसा ही होगा और उसका फल भी भुगतना ही पड़ेगा। इसलिए मैं सेनानायक राजशेखर को मृत्युदण्ड दिये जाने के पक्ष में अपना मत देती हूँ ताकि सैनिक सबक़ ले सकें।'

और वह धम्-से कुरसी पर बैठ गई मानों उसने अपनी सारी शक्ति इतना कहने में ही खर्च कर दी हो।

'अब कमागिडङ्ग अफ़सर सोहनसिंह अपनी राय जाहिर करें।'

सोहनसिंह ने खड़े होकर फौजी सलामी दी और कहने लगे—मेरी समझ में नहीं आरहा है कि हम लोगों को हो क्या गया है? कहीं हमारे दिमाग़ तो नहीं फिर गये हैं? मैं चालीस साल से सिपाहीगिरी कर रहा हूँ। अनुशासन का मैंने भी पालन किया है और दूसरों से करवाया भी है। और मैं अपने हथियार की सौगन्ध खाकर सच-सच कहता हूँ कि यदि मैं अपने सेनानायक के स्थान पर होता तो मैं भी वही करता जो उन्होंने किया है। जब जनरल डेनियल निसैनी से उतर रहे थे, मैंने सबकी आँखें बचाकर उनकी चरणधूलि माथे पर चढ़ाई थी। हममें से एक भी जो काम करने में असमर्थ था वह उन्होंने पूरा कर दिखाया था। हम अपनी माँ और बेटी की रक्षा करने में असमर्थ थे। हाथ पर हाथ धरे उन्हें आग की लपटों में भस्मीभूत होते देख रहे थे। तब लपटों के मुँह में कूदकर जिसने उन्हें बचाया वह व्यक्ति जनरल डेनियल था और सो भी भागने का अवसर होते हुए भी उसने भागने की अपेक्षा उनकी जान बचाकर हमारा बन्दी बनना ज्यादा ठीक समझा। उसके इस महान कार्य के बदले में हम उसका सिर उतार लेना चाहते थे। मेरे सेनानायक ने उसे भागने का अवसर देकर उचित ही किया। जो सज्जन हैं वे एक की जगह दस देकर अपना ऋण चुकाते हैं। फिर यहाँ तो सिर्फ उन्हें छोड़ा ही गया है। जनरल ने एक

अच्छा काम किया था, सेनानायक ने उसके बदले में एक अच्छा काम किया। अब अच्छे काम करने वाले को यदि हम यम के हवाले करना चाहें तो सिवा इसके क्या कहूँ कि हमारे दिमाग़ फिर गये हैं?

'लेकिन तुम्हारी राय क्या है?'

'मैं कहता हूँ कि मेरे सेनानायक को समस्त बाग़ी सेनाओं का सेनापति नियुक्त किया जाय।'

'सोहनसिंह, मैं पूछता हूँ, तुम मृत्युदण्ड के पक्ष में हो या विपक्ष में?'

'यदि सिर ही चाहिये तो उनके बदले में मेरा हाज़िर है।'

'लिखो, सोहनसिंह मृत्युदण्ड के विरुद्ध।'

'एक पक्ष में, एक विपक्ष में। प्रमुख का अभिप्राय बाक़ी।' कारकून ने खड़े होकर जाहिर किया।

तात्यासाहब ने खड़े होकर कहा–सेनाध्यक्ष राजशेखर अदालत तुम्हें एक के विरुद्ध दो मत से...

'मुक्ति या मृत्युदण्ड?' सब साँस रोके सुनने लगे।

'मृत्युदण्ड देती है।'

'अदालत का निर्णय सिर-आँखों पर चढ़ाता हूँ।' राजशेखर ने हँसकर जवाब दिया।

घण्टेभर में देवकी तो मानो अस्सी बरस की बुढ़िया होगई थी। हृदय की सारी शक्ति बटोरकर वह धीरे-धीरे चलती हुई शेखर के पास आई और उसे छाती से लगाकर उसका माथा सूँघा–मानों कह रही हो। तूने आज मुझे महापाप से उबार लिया। मेरा परमात्मा ही जानता है कि कल की रात कैसी बीती है?

२३

अदालत की सजा सुनकर सोहनसिंह तो हक्का-बक्का ही रह गये। उन्होंने तो स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि चांद के उस टुकड़े को भी कोई मृत्युदण्ड सुना सकता है! एक तो कुमार का कोई अपराध नहीं था और मानलो कि अपराध हुआ ही हो तो क्या अदालत को उनकी सेवाओं का खयाल नहीं करना चाहिये था? यह कैसी क्रान्ति है कि सारे उपकारों को भुलाकर एक ज़रा-सी भूल के लिए निर्ममता और धृष्टतापूर्वक इतनी बड़ी सजा दे डाली!

और कुछ नहीं तो कम से कम बुन्देलखण्ड की विजय-परम्परा का विचार तो किया होता? देवकी और देवकीपुत्र राजशेखर ही तो उसके प्रणेता थे।

लेकिन जब तात्यासाहब के मुँह से उन्होंने फैसला सुना तो विश्वास होगया कि अब कोई निस्तार नहीं है।

सेना के सिपाही और प्रत्येक नागरिक की तरह सोहनसिंह भी तात्या-साहब से घबराते थे। उन्हें अच्छीतरह मालूम था कि तात्या के फैसले बदले नहीं जाते। उनके किये निर्णय पत्थर की लकीर होते थे।

लेकिन उन्हें सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात पर होरहा था कि स्वयं महारानी देवकी ने मृत्युदण्ड के पक्ष में अपना मत दिया था। यदि माँ ही अपने उस कुलदीपक को अपराधी समझे तो तात्या बेचारे

का क्या दोष था ? अब समझाने-बुझाने का प्रयत्न भी कोई क्या करे और कैसे करे ?

हठात् उन्हें सुभगा की याद हो आई। मारे डर के उनके रोंगटे खड़े होगये। अदालत ने यह क्या कर डाला ? वह जानते थे कि सुभगा राजशेखर को चाहती है। पता नहीं कब से चाहती थी ? सोहनसिंह की स्मृति में तो दोनों हमेशा से साथ ही खड़े थे। दो टिमटिमाते दीपकों-सी उस जोड़ी को खंडित करने की धीरज तो शायद यम में भी न थी। वह भी जीवनदान देकर वापिस लौट जाता। परन्तु क्या तात्या का पत्थर-दिल पिघल सकता था ?

पिघले या न पिघले उन्होंने निश्चय कर लिया कि इस जोड़ी को नहीं टूटने देंगे। और वह सीधे देवकी के पास पहुँचे। देवकी उससमय पूजा कर रही थी। उसके सामने एक आसन पर बैठकर उन्होंने कहा—आपने मुझे एकसमय सीख दी थी कि सिपाहीगिरी ईश्वर के सिवा और किसी-की न करना। याद है न ?

'हाँ।' देवकी ने छह महीने के बीमार की-सी आवाज़ में कहा।

'फिर आप लोगों ने ईश्वर की सिपाहीगिरी करने वाले राजशेखर को मृत्युदण्ड क्यों दिया है ?'

'उसने ईश्वर की सिपाहीगिरी की हो या न की हो लेकिन क्रान्ति का विरोध तो किया ही है।'

'तो क्या आपका यह कहना है कि वह डेनियलसाहब को मर जाने देता ?'

देवकी कोई जवाब न दे सकी।

'जिस डेनियलसाहब ने हमारे लिए अपने प्राणों को सङ्कट में डाला उसे फांसी चढ़ाना कहाँतक उचित होता ?'

सोहनसिंह, मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता । अच्छा हो कि तुम तात्यासाहब के पास जाओ ।'

'मैं तो आपकी राय जानना चाहता हूँ । पहली सिपाहीगिरी किसकी ? आपकी और तात्यासाहब की या परमात्मा की ?'

'यदि परमात्मा देशद्रोह करने के लिए कहे तो सिपाही का पहला कर्त्तव्य अपने देश के प्रति है ।'

तात्यासाहब ने, जो उधर ही चले आरहे थे, कहा । उनके साथ करतारसिंह आदि बाग़ीसेना के कुछ दूसरे नायक भी थे । राजशेखर को मृत्युदण्ड दिये जाने की खबर सुनते ही सारी सेना में तहलका मच गया था । सबने ऐसा महसूस किया मानों ज्वालामुखी फट पड़ा हो । अनुशासन का भङ्ग किये जाने पर सैनिकों को गोली से उड़ाना या फाँसी लटकाना बाग़ीसेना के लिए अनहोनी बात नहीं थी । लेकिन अपने ही सेनाध्यक्ष को मृत्युदण्ड दिया जाना उनके लिए सर्वथा अनहोनी-सी बात थी और इसीलिए सारी फौज में तहलका मच गया था ।

जिस सेना-नायक ने विकट से विकट परिस्थितियों में उनका नेतृत्व कर अपनी निष्ठा और सूझ-बूझ से उन्हें यशस्वी बनाया था; जिसकी बदौलत वे इस महान्‌क्रान्ति का सच्चा रूप देख और समझ सके थे; जिसने उन्हें घायलों की सार-सँभाल करने, शरणागत और निहत्थों की रक्षा करने और अन्याय से डरने की सीख दी थी उसी सेनाध्यक्ष को बिना किसी अपराध के वे मृत्युदण्ड जैसी कड़ी सजा कैसे दे सकते थे ?

उस सेनानायक ने ऐसा अपराध ही कौनसा किया था ? डेनियल को मुक्त कर देना भी कोई अपराध था ? जिसने गिरफ्तार किया वह छोड़ भी तो सकता था ? वही फिर उसे पकड़ भी लायेगा । ऐसे तो उसने कितने ही फिरङ्गी जनरलों और कर्नलों को पकड़ा था और जीवित छोड़ भी दिया था । यदि उसे इतना-सा भी अधिकार न हो तो फिर वह सेना-नायक ही कैसा ?

लेकिन तात्यासाहब के हुक्म की उदूली कौन कर सकता था ? जिस-तरह ग्रहण की छाया सूर्य, चाँद और तारों के प्रकाश को आच्छादित कर लेती है उसीतरह अकेले तात्यासाहब ने सारी बागीसेना को अभिभूत कर रखा था ।

और यही तात्यासाहब की विशेषता थी । वह क्रान्ति के विनाशक रूप थे, जिसकी डरते हुए भी लोगबाग पूजा करते और झुकते हैं ।

फिर भी राजशेखर की सजा कम करवाने के लिए बागीसेना ने चार-पाँच प्रतिनिधियों को तात्यासाहब के पास भेजने का निश्चय किया और दम साधे उनके निर्णय की प्रतीक्षा की जाने लगी ।

सैनिक-प्रतिनिधियों की बात सुनने के बाद तात्यासाहब ने कहा—तुम लोग मुझे सेना की ओर से आज्ञा देने के लिए आये हो तो मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ ।

'जी नहीं, हम तो आप से यही निवेदन करने आये हैं कि आप सेना की भावनाओं का भी खयाल करें ।'

'तुम इसतरह कह रहे हो मानो मुझे सेना की, देवकी की और स्वयं अपनी भावनाओं का कोई खयाल ही न हो। मैं स्वयं कितना चाहता था कि शेखर छूट जाय । कितना चाहता था कि वह कह दे, उसने जो कुछ किया नासमझी से किया। लेकिन एक बात अच्छी तरह से समझ लो । निरी भावुकता को लिए बैठ रहना सिपाही का काम नहीं है । वैसा कर वह अपने कर्तव्य के साथ विश्वासघात करता है । सिपाही अपने लक्ष्य से बँधा है । और जबतक वह सिपाही है उसकी कोई स्वतंत्र हस्ती, स्वतंत्र राय और भावना नहीं होती । तुम जनरल डेनियल को खुशी से हीरे-मोती भेंट में दे सकते हो: लेकिन जबतक वह कम्पनी का सिपाही है और तलवार हाथ में लिये तुम्हारे खिलाफ लड़ रहा है तुम्हारा सिर्फ एक ही धर्म और एक ही कर्त्तव्य है और वह यह कि उसे गिरफ्तार कर सजा दी जाय ।'

'लेकिन सेना को कैसे समझाएँ ? आप तो जानते ही हैं कि सैनिक कुमार को कितना अधिक चाहते हैं ?'

'यदि सैनिक कुमार को इतना अधिक चाहते हैं तो जाकर छुड़ा सकते हैं। मैं न तो देवकी को जानता हूँ, न कुमार को ही। मैं तो जानता हूँ अपनी क्रान्ति को। कुमार ने भावुकतावश क्रान्ति का विरोध किया है और क्रान्ति के नेता की हैसियत से मैं उसके तहखाने के आगे खड़ा होकर अकेला सारी सेना का सामना करूँगा। देखूँ, कौन उसे छुड़ाने आता है ?'

तात्यासाहब उठकर खड़े होगये। उनके विकराल रूप को देखकर सभी मन ही मन डर गये और सबने महसूस किया कि साक्षात् प्रलयङ्कर ही अपने भयङ्कर रूप में उनके आगे खड़ा है। उनका मुकाबला करना तो दूर रहा कोई सामने देख भी नहीं सकता था।

'मैं देवकी को शत-सहस्रबार धन्यवाद देता हूँ। माँ के प्रेम की समता तीनों लोकों में खोजे नहीं मिलेगी। फिर भी वह प्रेम उसके कर्त्तव्य के आड़े नहीं आ पाया। चलो, वही तुम्हें ज्यादा अच्छीतरह समझा सकेगी।'

करतार आदि सैनिक प्रतिनिधियों को लेकर वह देवकी की ओर चले आरहे थे। कमरे में प्रवेश करते ही उन्होंने सोहनसिंह की बात सुनी और उपर्युक्त वाक्य बोलकर उसका विरोध किया।

सोहनसिंह और देवकी उन्हें देखते ही अपनी-अपनी जगहों पर खड़े होगये।

'इन लोगों की भी यही माँग है कि अदालत राजशेखर की सजा कम करदे।'

देवकी ने फीकी हँसी हँसकर कहा—मैं अभी सोहनसिंह से यही कह रही थी कि अदालत का काम किसी व्यक्तिविशेष का खयाल कर निर्णय देने का नहीं है। उसे तो क्रान्ति को ध्यान में रखकर ही निर्णय करना होता है।

'लेकिन सोहनसिंह तो क्रान्ति का नहीं; ईश्वर का सिपाही जो है।' तात्यासाहब ने हँसकर कहा।

'आप महान हैं। क्रान्ति महान है। परन्तु मैं अब भी यही मानता हूँ कि मेरे सेनानायक ने कल रात जो कुछ किया वह महत्तर है।'

'सोहनसिंह, एक बात का जवाब दो : यदि तुम्हारा करतार कम्पनी का सैनिक हो और पकड़ा जाय तो तुम उसे गोली मारोगे या नहीं ?'

सोहनसिंह ने क्षणभर चुप रहने के बाद कहा—यदि आज से कुछ महीने पहले मुझसे यह प्रश्न पूछा जाता तो बिना किसी हिचकिचाहट के 'हाँ' कहता, लेकिन आज एकदम 'हाँ' नहीं कह सकता। और यही मेरे सेनानायक का मुझपर किया हुआ जादू है। मैं करतार को निहत्था कर गिरफ्तार कर लूँगा; लेकिन यह नहीं कह सकता कि गोली मार ही दूँगा।

तात्यासाहब, देवकी और दूसरे सब सैनिक प्रतिनिधि यह सुनकर सोहनसिंह के सामने देखते ही रह गये। यह उत्तर उनके लिए कल्पनातीत था।

'लेकिन बाबा, यदि सेना मुझे मृत्युदण्ड देने का आदेश तुम्हें दे ?' करतार ने पूछा।

तात्यासाहब ने विस्मित होकर करतार की ओर देखा। इसतरह के सवाल की तो उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

'यदि मुझे सेनापति बने रहना होगा तो सेना का आदेश सिर-आँखों पर चढ़ाऊँगा अन्यथा सेनापति पद से इस्तिफ़ा देकर चला जाऊँगा।'

'मूर्खता है, केवल मूर्खता; और कुछ नहीं।' तात्यासाहब बोल उठे और पूछा—क्या समूची क्रान्ति की अपेक्षा एक आदमी का जीवन अधिक मूल्यवान है ?

'हाँ, महाराज ! यदि बिना किसी आवश्यकता के आदमी के खून की एक बूँद भी माँगी जाय तो मैं कहूँगा कि वह बूँद समूची क्रान्ति से भी ज्यादा मूल्यवान है ।'

सोहनसिंह ने यह बात कुछ ऐसे जोश और दृढ़ता से कही थी कि तात्यासाहब को धक्का-सा लगा । उनकी वज्र-कठोर दृढ़ता इसके आगे क्षण-भर के लिए लड़खड़ा-सी गई । जो दृष्टिकोण खून की नदियों, नरमुण्ड के अम्बारों और खण्डहरों के बीच भी स्थिर रहता आया था वह डग-मगाने लगा । इस्पात का वह आदमी विचलित होगया । उन्हें सोहनसिंह की बात का कोई जवाब खोजे नहीं मिला । और वह जवाब दें उसके पहले देवकी ने कहना शुरू किया । उसके स्वर की दुर्बलता मिट गई थी । उसमें पहले-सी शक्ति और मिठास आगई थी । वह बोली—सोहनसिंह, महाभारत में एक कथा है । कुरुक्षेत्र में पाँडवों और कौरवों की अट्ठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध के लिए तत्पर खड़ी थी । एक ओर भीष्म ने और दूसरी ओर अर्जुन ने अपने आयुध सँभाले । शंखनाद और धनुष की टंकारों से सारा रणक्षेत्र गूँज उठा । उसीसमय भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान रथ के आगे विह्वल होकर टिटियाती हुई एक टिटहरी की ओर गया । उसने कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर अण्डे दिये थे और उस भीषण मार-काट में उसे अपने बच्चों के मर जाने का डर था । उसी डर से विह्वल होकर वह टिटिया रही थी । भगवान श्रीकृष्ण ने एक सैनिक का शिरस्त्राण लेकर उसके घोंसले पर औंधा रख दिया । शाम को जब युद्ध समाप्त हुआ तो वह टिटहरी और उसके बच्चों को सुरक्षित स्थान पर रख आये ।

कहते-कहते देवकी की आँखों में आँसू उमड़ आये और उसने गद्-गद् स्वर में कहा—

गोविंद द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।
कौरवै परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥

सोहनसिंह और सैनिक प्रतिनिधियों की आँखें भी भीग गईं। कमरे में काफी देरतक शान्ति छाई रही। कोई कुछ न बोला। मानों सभी मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे—

श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।

तात्यासाहब इस बीच सारा समय कमरे में चहलक़दमी करते रहे। आखिर उन्होंने मौन भङ्ग किया—यदि राजशेखर यह मंजूर करलें कि उन्होंने अनुशासन का भङ्ग किया है तो अदालत उनकी सजा रद्द करने को तैयार होजायेगी। वह अपनी ग़लती मानलें। बस, इतना ही काफी है।

यह सुन करतार आदि सैनिक खुशी से उछल पड़े। उनके चेहरे प्रसन्नता से दमकने लगे। जाते-जाते उन्होंने कहा—इसमें क्या मुश्किल है? हम अभी जाकर उन्हें राज़ी करते हैं।

'मेरा विश्वास है कि वह कभी राज़ी न होंगे।' सुभगा, जो अभीतक चुप थी, धीरे से बोली। लेकिन करतार और उसके साथी तो पहले ही जा चुके थे।

२४

पर्वत की तरह अडिग रहने वाले तात्यासाहब को झुकाने की खुशी ने करतार और उसके साथियों को बावला-सा कर दिया था। शेखर को छुड़ाने की शर्त भी कितनी मामूली थी? ग़लती मंजूर कर लेना कुछ बहुत बड़ी बात नहीं थी। सिर्फ यही तो कहना था कि तात्यासाहब के स्पष्ट आदेश का उल्लँघन कर ग़लती की! ओह, इसमें क्या था?

अपने सेनानायक को बचाने के आनन्द ने उनके पाँवों में पर-से लगा दिये थे। रास्ते में जिससे भी भेंट हुई उसे खुशखबरी सुनाते हुए वे क्षणभर में शेखर की काल-कोठरी के आगे पहुँच गये।

शेखर तहखाने में बैठा सफेद शंखों की वह माला पिरो रहा था। करतार आदि को देखकर मुस्करा दिया और अधूरी माला एक ओर रखकर पूछा—अन्तिम भेंट करने आये हो?

अन्तिम क्यों? अन्तिम भेंट तो उससमय करेंगे जब यह महाभारत पूरा होचुका होगा। तबतक तो साथ जियेंगे, साथ मरेंगे।' उनमें से एक ने कहा।

शेखर की प्रश्नसूचक मुद्रा को देखकर करतार ने कहा—हम सेना की ओर से आपको दी गई सजा माफ़ करवाने के लिए तात्यासाहब के पास गये थे। पहले तो उन्होंने साफ़ 'ना' कह दी लेकिन अन्त में कहा कि

यदि शेखर अपनी ग़लती मंजूर करले यानी यह कह दे कि उसने अनुशासन का भंग कर ग़लती की है तो सजा माफ़ की जासकती है। उसी की सूचना देने हम लोग आये हैं। सेना आपके छुटकारे का रास्ता देख रही है और माँजो भी बैठी प्रतीक्षा कर रही हैं।

शेखर उनका प्रेम देखकर गद्गद् होगया। उसने अपने आपको बहुत रोका लेकिन फिर भी उसकी आखों में आँसू भर ही आये।

'करतार, तुम्हारा प्रेम अपार है। तात्यासाहब की उदारता भी 'न भूतो न भविष्यति' है। मैं यह तो मानता हूँ कि मैंने अनुशासन का भँग किया है; लेकिन यह नहीं मान सकता कि वैसा करके मैंने कोई ग़लती की है।

शेखर की बात सुनकर करतार और उसके साथियों की सारी आशा पर पानी ही फिर गया। फिर भी करतार ने कहा—दुहरे पहरे में क़ैदी को रखने की तात्यासाहब की स्पष्ट आज्ञा के उल्लंघन को क्या आप अपनी ग़लती नहीं मानते ?

'उसे मैं अनुशासन भङ्ग करना कहता हूँ। लेकिन अनुशासन का भङ्ग करना और ग़लती करना दोनो एक ही बात नहीं हैं। अनुशासन का भङ्ग करके ही मैं अपने धर्म का पालन कर सका हूँ। यदि अनुशासन बनाये रख जनरल़ को मुक्त न किया होता तो वह मेरी ग़लती होती।'

'अनुशासन का उल्लंघन क्या अपराध नहीं है ?'

'यह मेरे नहीं, तात्यासाहब के स़ोचने की बात है।'

'आप मानते हैं या नहीं ?'

'तुम मानते हो या नहीं ?'

'हम तो मानते हैं। सिपाही के लिए दो ही अक्षम्य अपराध हैं—एक तो अनुशासन न मानना और दूसरा लड़ाई के मैदान से भाग खड़े होना।

'फिर अपराध तो हुआ ही।'

'फिर आप ग़लती मंजूर क्यों नहीं कर लेते ?'

'क्योंकि मैंने ग़लती की ही नहीं।'

'महासेनाधिपति की आज्ञा का उल्लंघन ग़लती नहीं तो और क्या है ?'

'महासेनाधिपति की अनुचित आज्ञा के उल्लंघन में कोई ग़लती नहीं।'

'आप सैनिक हैं। आपका काम उस आज्ञा का औचित्य या अनौचित्य देखने का नहीं, उसका अक्षरशः पालन करने का था।'

'फिर तो 'मैं हूँ या नहीं,' 'यह धरती है या नहीं' आदि का निश्चय करने वाला भी कोई नहीं रह जायगा। जो इन बातों का निश्चय करने वाला है वही इस बात का भी; इसके उचित और अनुचित होने का भी निश्चय करता है।'

'तब तो अनुशासन का कोई अर्थ ही नहीं रह जायगा।'

'रहेगा, ज़रूर रहेगा! मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने अनुशासन का भङ्ग किया है। उसकी सजा भी माँगता हूँ। अदालत से दया की भीख मैंने नहीं माँगी है, न माँगूँगा। यदि धर्म की खातिर सैनिक सेनापति की आज्ञा का उल्लंघन कर स्वेच्छापूर्वक मृत्युदण्ड स्वीकार करले तो अनुशासन का उल्लंघन कदापि नहीं होता। घबराने की ज़रूरत नहीं है करतार। मैं जानता हूँ कि हर किसी को इसतरह धर्म के लिए बलिदान होने की प्रेरणा नहीं मिलती। जिन्हें मिलती है उनमें से भी सभी यों हँसते-हँसते मौत को गले नहीं लगा सकते। फिर भी मैं कहूँगा कि जिस दिन मनुष्य के इस पवित्रतम अधिकार को तुम छोड़ दोगे निश्चय जानना कि उसी दिन तुम्हारा सत्यानाश होजायगा। परतंत्रता से भी अधिक भयानक और हानिकारक इसतरह का अन्धा अनुशासन है। यदि मुझे दो में से किसी एक को चुनने के लिए विवश होना पड़े तो मैं गुलामी को पसन्द करूँगा। क्योंकि उसमें विद्रोह कर स्वतंत्र होने की गुँजाइश तो रहती है लेकिन अनुशासनबद्ध व्यक्ति तो आदमी के बदलले निर्जीव यन्त्र

ही बन जाता है और उसके उद्धार की कोई आशा नहीं रह जाती। इसीलिए मैं कहता हूँ कि दण्ड स्वीकार कर अनुशासन का भङ्ग करने का अधिकार सिपाही को है और रहेगा! अनुशासन का भङ्ग कर वह हमेशा ग़लती ही करता है यह कहना ठीक नहीं है। मेरा विश्वास है और पक्का विश्वास है कि जनरल को मुक्त कर मैंने मुक्तिधर्म का अनुसरण किया है। लड़ते-लड़ते जनरल का वध करने का मुझे पूरा अधिकार था। यदि अपने बाहुबल से हमने उन्हें पराजित कर बन्दी बनाया होता तो उन्हें जेल में रखने और मौत की सजा देने का भी हमें पूरा अधिकार था। परन्तु आज की परिस्थिति में उन्हें मुक्त कर उनका सन्मान करने के सिवा हमारा और कोई धर्म हो ही नहीं सकता। वही मैंने किया। मुक्तिधर्म का अनुसरण करना नितान्त आवश्यक था। और आज मृत्युदण्ड को सिर-माथे चढ़ाकर मेरी मान्यता है कि मैं अपनी मुक्तिसेना के सिपाहियों की सेवा ही कर रहा हूँ। क्रान्ति का सैनिक निर्जीव यन्त्र नहीं होता। वह जीवित मनुष्य होता है।

शेखर ने उक्त बात जिस दृढ़ता से कही थी उसे देखकर करतार और उसके साथियों की रही-सही आशा भी जाती रही। वे उसे सलाम कर उठ खड़े हुए।

'ज़रा सुभगा से यह तो कह देना कि क्या आज उसका इरादा मुझे भूखों ही मार डालने का है?'

यह कहकर शेखर फिर माला पिरोने में तल्लीन होगया।

२५

सुभगा 'अँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी' गीत गुनगुनाती हुई जनरल के लिए भोजन बना रही थी। बुर्ज में जाने से पहले उसने जनरल को केशरिया भात (मीठा पुलाव) खिलाने का वचन दिया था। अपनी गिरफ्तारी के वक्त जनरल उसे उसकी याद दिलाना न भूले थे।

शेखर रात का गया अभीतक लौटकर नहीं आया था। उसने दोबार आदमी भी भेजा लेकिन शेखर का कोई पता न चला। इसलिए उसे इस समय शेखर की आवारागर्दी पर बड़ा गुस्सा आरहा था। आने तो दो, फिर लाला की वह खबर लूँगी कि सिटी गुम न होजाय तो मेरा नाम ! यहाँ पेट में आग लग रही है और उन्हें कुछ पर्वाह ही नहीं है। सेना-नायक क्या होगये, दूसरों का खाना-पीना भी हराम कर दिया !'

तभी सिपाहियों का सहारा लिए हुए देवकी अन्दर आई और टूटे-फूटे शब्दों में सारी बात कह सुनाई। शेखर के उस महान कार्य की बात सुनकर सुभगा की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे? हँसे या रोये? साँस रोके सारी बात सुनती रही।

'सुभगा, मैं उसे कैसे समझाऊँ कि आज उसने मुझे एक महान पाप से बचा लिया है? कल की सारी रात मैंने कैसे बिताई, इसे मेरा अन्तर्यामी ही जानता है। मुझे इस महान धर्मसङ्कट से उबार लेने के लिए ईश्वर ने ही उसे यह सद्बुद्धि दी। नहीं तो मैं जनरल को किस मुँह से मृत्युदण्ड देती? सारी रात परमात्मा से प्रार्थना करती रही कि सवेरा

होने से पहले ही मुझे उठाले । जनरल ने हमारे लि[illegible] कुछ किया उसे कोई दूसरा क्या कभी कर सकता था ? तीर्थस्थलों [illegible] [illegible]धुसन्त तो अनेकों देखे थे लेकिन ऐसा परदुःखकातर तो कोई [illegible] है । उसकी हत्या का पाप अपने सिर लेकर मैं कौनसा देशहित [illegible] [illegible] कहकर वह सोफे पर निर्जीव की तरह लुढ़क गई ।

× × ×

एक हाथ में भोजन का थाल और दूसरे में लोटा लेकर [illegible] आती सुभगा को शेखर आश्चर्यचकित होकर देखता ही रह गया । आज से पहले अनेकोंबार उसने सुभगा को देखा था । हिम-धवल चाँदनी में, [illegible]च्छादित आकाश में चमकती बिजली के क्षणिक प्रकाश में, रात्रि के निविड़ [illegible] में टिमटिमाते तारों के उजाले में, स्नानपूत ऋषिकन्या सी स्वर्णि[illegible] उषा की सप्तरंगी आभा में, और ग्रीष्म की दुपहरिया में जब आलस्य से आँखें मुँदी जारही हों उसने अघ्राणकुसुम-सा सुभगा का अनिन्द्य रूप देखा था । लेकिन आज वह सुभगा के जिस रूप और सौन्दर्य के दर्शन कर रहा था वह सर्वथः अभूतपूर्व था ।

मानों विदा की अन्तिम घड़ी आपहुँची हो और अन्तिम मिलनबेला की उन विरल पलों में जिस प्रेमप्रदीप को जन्म-जन्मान्तर से केवल उसी के लिए आँधी-पानी के अगणित झोंकों से सुरक्षित रखती आई थी, उसे परमभक्ति भाव से थाल में सँजोये पूजा-विसर्जन कर लुप्त होने के संकल्प-सहित सुभगा अपने युगोंसंचित कौमार्य-धन को लिये चली आरही हो ।

उसमें बसन्त की मादकता, ग्रीष्म का विरह, और प्रावृट् का आलुलायित करने वाला आनन्द नहीं था । उसमें तो था शिशिर का मौन[illegible] अचञ्चल सौन्दर्य !

और सुभगा को भी शेखर में आज जो अतुलित रूप-सौन्दर्य दिखलाई पड़ रहा था वह कल्पनातीत था । मानों पर्वत की अचल श्रद्धा लिये वह

बैठा उसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। ठण्ड, धूप और वर्षा कुछ भी उसे विचलित नहीं कर सकते। वह तो, चांदनी रात में बाँसों के निकुंज से गूँजती आती बँसी की ध्वनि को साक्षी बनाकर जो मिलन हुआ था, उसीका ध्यानावस्थित योगी की तरह बैठा एकाग्र मन से चिन्तन कर रहा था। न तो पृथ्वी की नूतन रंगों वाली चूनरी उसे दिखलाई पड़ रही थी और न वनराजि का हरित अम्बर ही। सफेद पाड़ वाली आसमानी साड़ी और रत्न-आभूषणों से सुशोभित सागर-सुता का निमन्त्रण भी वह नहीं सुन पारहा था। उसके कानों में तो वंशी की वही ध्वनि गूँज रही थी और आँखों में नाच रही थी अपरूप-सौन्दर्य की स्वामिनी सुभगा।

दो मूक हृदयों से उद्भूत होने वाला प्रेम आज विसर्जन की वेला में पुनः मौन, निःशब्द होगया था; मानों मनुष्य के समस्त भाषा-भण्डार में उसकी अभिव्यक्ति के लिए कोई शब्द ही न हो।

बार-बार हृदय के दर्पण-सी चार आँखें आपस में मिलतीं और मधुर मुस्कान के साथ नत होजाती थीं। अनन्त वर्षों से द्यावा और पृथ्वी के बीच तारों की जो आँख-मिचौली चलती आरही थी आज उस तहखाने में उसी का प्रत्यावर्तन होरहा था। वहाँ से दुःख-शोक अपने सन्ताप और विह्वलता सहित विदा होचुके थे। शेष बची थी केवल माँगल्य की कृतार्थता।

× × ×

'लाओ, वह माला!' शेखर हरसिंगार की जो माला गूँथ रहा था सुभगा ने उसे माँगते हुए कहा।

'अभी थोड़ी बाकी है। कल दूँगा।'

उपसंहार

दूसरे दिन जब सूर्योदय हुआ समस्त मुक्तिसेना क़िले के पिछले हिस्से में कतार बाँधे खड़ी थी। एक ओर मेज़ के आगे सैनिकअदालत के तीनों सदस्य गंभीर मुद्रा धारण किये बैठे थे। देवकी का चेहरा शव की तरह निस्तेज और निष्प्राण था। तात्यासाहब का चेहरा लोहे की मूरत-सा मालूम पड़ रहा था।

सिपाही शेखर को लेकर आये। उसकी कमर में सेना-नायक की तलवार झूल रही थी। सिर खुला था और लम्बे केश कन्धों पर लहरा रहे थे। चेहरे पर दुःख या पश्चाताप का चिह्न तक न था। वह इस-तरह जल्दी-जल्दी क़दम उठा रहा था मानों युगों पुराने किसी प्रियजन से मिलने के लिए उतावला होरहा हो।

जब सैनिकों की पंक्ति के बीच होकर शेखर चलने लगा तो करतार ने सलामी का हुक्म दिया।

मुक्तिसेना के सैनिकों ने अमरधाम के यात्री अपने सेनानायक को हथियार झुकाकर अन्तिम अभिवादन किया। शेखर ने भी सेनानायक की तरह सलाम का जवाब दिया। फिर कमर से बँधी तलवार खोल उसे दोनों हाथों में लेकर सिर से लगाया और आदरपूर्वक करतार के आगे कर दिया। फिर बार-बार सबके अभिवादन का उत्तर देता हुआ आगे बढ़ गया। मेज़ के आगे पहुँचकर तात्यासाहब को प्रणाम किया। देवकी के आगे झुककर उसकी चरणधूलि माथे से लगाई।

देवकी आँसू भरी आँखों से अपने गौरवर्ण, महाप्रतापी पुत्र को देख रही थी। एकदिन इसीतरह लक्ष्मण जैसे उसके देवर अर्जुनदेव ने प्रणाम कर आशीर्वाद माँगते हुए कहा था–भाभी रोती क्यों हो ? रोना तुम्हें शोभा नहीं देता। अभी तो तुम्हें अपने शेखर को भी देना होगा।

और उसने कहा था–शेखर को तो मैं अपने हाथों चढ़ा दूँगी।

आज शेखर को अपने हाथों फाँसी चढ़ाने का हुक्म देकर वह देवर को दिये अपने वचन का पालन कर रही थी। अर्जुन को उसने झूठा वचन तो नहीं दिया था।

उसने मन ही मन प्रार्थना की-

अद्य मे सफला जन्मम्
अद्य मे सफला क्रिया

और यन्त्रवत् शेखर के सिर पर हाथ रख दिया।

शेखर ने एकबार चारों ओर निगाह डालकर सुभगा को खोजा। लेकिन वह नहीं दिखलाई दी। फिर सोहनसिंह को अखाड़िया सलाम किया लेकिन सोहनसिंह उसका प्रत्युत्तर न दे सके।

'आप भी बिल्कुल कमज़ोर आदमी निकले।' उसने हँसकर सोहनसिंह से कहा और फाँसी की टिखटी की ओर बढ़ गया। सीढ़ियाँ चढ़कर एक-बार फिर चारों ओर दूर-दूर तक देखा। एक छोटी-सी साँस उसके गले से निकल गई और भगवान का नाम लेते हुए उसने फन्दा गले में डाल लिया।

चारों ओर से 'क्षमा-क्षमा' की हृदयभेदी आवाज़ उठने लगी। सैनिक तात्यासाहब के आगे अपने हथियार डालकर सेनानायक को क्षमा करने की प्रार्थना कर रहे थे।

भावहीन, अकंपित कठोर वाणी में आज्ञा सुनाई दी–जल्लाद, अपना काम शुरू करो।

शेखर ने जल्लाद को दूर हटने का संकेत किया। एकबार फिर चारों ओर देखकर जेब से पारिजात की माला निकाली और अपने गले में डाल ली। फिर जिसतरह काका पटिये को लात मारकर भूल गया था उसीतरह पटिये को ज़ोर से लात मारी। उसीक्षण बन्दूक का धड़ाका हुआ।

देवकी ने अपनी छाती में गोली मार ली थी।

और दूर से 'ठहरो-ठहरो' की आवाज़ आती सुनाई दी। सद्य-स्नाता सुभगा पूर्व दिशा में शोभापाती कुंकुमवर्णी उषा की तरह दौड़ी चली आरही थी। उसके कपाल में लाल बिंदी थी। हाथ के हेमकंकण सूरज की किरनों में जगमगा रहे थे। उसे सिंगार करने में देर होगई थी।